पद्यव्याकरणम्

(पद्यकौमुदी)

तच्च

श्रीमत्सकलशास्त्रपारावारीण पंडित
प्रवररामदत्तात्मज
वृहत्कवि, विद्याभास्कर, वैयाकरणकेसरि, पण्डित

गुरुलालचन्द्रशर्मणा

भाषाभाष्यभूषितम्

दाधीच आसोपा पण्डितबलदेवात्मजपण्डित

रामकर्ण–श्यामकर्ण शर्मणोः

प्रतापप्रेसयन्त्रालये
मुद्रापितम्

संवत् १९५६ जोधपुर मारवाड़

मूल्य रु० १) कलदार डाकव्यय अलग

पद्यव्याकरणम्

(पद्यकौमुदी)

तच्च

श्रीमत्सकलशास्त्रपारावारीण पंडित
प्रवररामदत्तात्मज
वृहत्कवि, विद्याभास्कर, वैयाकरणकेसरि, पण्डित
गुरुलालचन्द्रशर्मणा
विरचितम्

भाषाभाष्यभूषितम्

दाधीच आसोपा पण्डितबलदेवात्मजपण्डित
रामकर्ण-श्यामकर्ण शर्मणो:

प्रतापप्रेसयन्त्रालये
मुद्रापितम्

संवत् १९५९ जोधपुर मारवाड़

मूल्य रु० १) कलदार डाकव्यय अलग

निवेदन

सर्व व्याकरणवेत्ताओं तथा काव्यकर्त्ताओं से सविनय निवेदन है, कि यद्यपि इस विविध विद्यामृतमहोदधि भारतवर्ष में व्याकरण के प्राचीन और नवीन अनेक ग्रंथरत्न प्रकाशमान हैं; तथापि उन सब के गद्यात्मक होने से याद करने में विद्यार्थियों को विशेष कष्ट उठाना पड़ता है और याद होने पर भी अधिक समय बीतने पर भूल जाने से उक्त अन्तेवासियों को सभाओं में लज्जित होना पड़ता है. उक्त छात्रगण के इस असाध्य शोक को देख कर उनके सुविधा के अर्थ 'महाभाष्य, सिद्धान्तकौमुदी, मनोरमा और उभयशेखर'' जो के मुनिमान्य ग्रंथ हैं उनके अर्थ दुग्ध में से सार नवनीत को पृथक् करके यह ग्रंथ, जैसाकि योरप् के मतिमानों ने अभी नवीन यंत्र, निर्माण किया है इस ग्रंथ में जिसका कि नाम "पद्यव्याकरण" अर्थात् "पद्यकौमुदी" रखकर वसन्ततिलका छंदोबद्ध संस्कृत तीन सौ अड़तीस ३३८ श्लोकों में चार वर्ष पूर्ण परिश्रम करके समुच्चय किया है और इसमें यह विशेषता रक्खीगई है कि भाषा टीका उदाहरण सहित श्लोक २ के साथ दीगई है, जिससे प्रत्येक पाठक सहज ही में व्याकरण के विद्वान् बनसकते हैं; क्योंकि गद्यरचना को जितने समय में कंठस्थ कर सकता है उससे चतुर्थांश परिश्रम से पद्यरचना को अर्थात् श्लोकबद्ध को कंठगत कर लेता है. गद्यरचना को परिश्रम से याद कर भी लेता है परंतु समयान्तर से विस्मृत भी होजाता है इसीलिये व्याकरण को त्रिप-

की विद्या बतलाते हैं. दूसरे सहस्रशः गद्यात्मक सूत्र वृत्ति वार्त्तिक परिभाषापद आदि यथास्थित अर्थ सहित साधनिका को कै वर्षों के परिश्रम से करता है. इस पद्यव्याकरण के तीन सौ अडतीस श्लोकों को याद करके उनकी भाषा टीका को स्वयं समुझ कर बहुत अल्प परिश्रम से शब्दशास्त्र में निष्णात होजायगा तौ यह एक उत्तम उपकार हमारे पवित्र पिताजी श्रीमान् राजमान्य वृहत्कवि विद्याभास्कर पण्डितजी महाराज श्रीगुरु लालचन्द्रजी वैयाकरणकेसरी के हस्तगत श्रीमान् परमेश्वर सत्यस्वरूप ने किया है, इसलिये शब्दशास्त्र के विद्वानों को उचित है कि निर्मत्सर होकर, क्यों कि भर्तृहरि ने कहा है (बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः) आप उनमें से नहीं हैं इसलिये किसी प्राचीन मुनि ने कहा है.

विद्वांसः परमुत्सुकेन वचसा वृत्तं परेणोदितं
न्यूनं चापि गुणैकगण्यमिव तत्कुर्वन्ति संतस्त्वमी ॥

आप उनमें से हैं इसलिये मेरे पिताजी के अल्प लेख को भी आदर संप्रदान करके उनको और भी अधिक उत्साही करेंगे. इस ग्रन्थ में संस्कृत श्लोक और भाषा टीका के साथ निम्न लिखित विषय रक्खेगये हैं. यद्यपि उक्तग्रंथ के १० विषयों को प्रथम ही विज्ञापन द्वारा विदित करदियाथा परन्तु वे सर्व विषय इन विषयों के अंतर्भूत रख कर स्पष्ट प्रसिद्ध करने के अर्थ यहां क्रमशः मेरे, पिताजी ने प्रकाशित किये हैं वे दिखाये जाते हैं.

१ श्रीमान् अखंडप्रतापी सर्व ब्रह्मांड के राजराजेश्वर श्रीसत्यरूप नारायण का ध्यानवर्णन.

२ ग्रन्थकार के वंश का वर्णन किया है और उसके साथ श्रीभगवत्प्रार्थना भी की है.

३ विद्यार्थियों के उत्साहदायक पद्यव्याकरण का अल्प

नौका (डूंडा) इति प्रसिद्ध वर्णन किया है.

४ महाभाष्य में अधिकार सहित कहेहुए शब्दशास्त्र के पांच प्रयोजन रक्षादिक और शब्द कौनसा है.

५ श्रीशंभुमहाराज के तांडव नृत्य के अन्तीर में डमरू के शब्द रूपी १४ सूत्रों की प्राप्ति का वर्णन.

६ सिद्धांतकौमुदी की समग्र संधियां अर्थात् संज्ञाप्रकरण, अच्संधि, हल्संधि, विसर्गसंधि, स्वादिसंधि और परिभाषाप्रकरण का समग्र वर्णन.

७ अजन्तपुल्लिंग, अजन्तस्त्रीलिंग, अजन्तनपुंसकलिंग, हलन्तपुल्लिंग, हलन्तस्त्रीलिंग, हलन्तनपुंसकलिंग, अव्यय, स्त्रीप्रत्यय, विभक्त्यर्थ अर्थात् कारक, समास अर्थात् अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वन्द्व, द्विगु और कर्मधारय, समासान्त, तद्धित प्रत्यय.

८ भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादिगण, दिवादिगण, स्वादिगण, तुदादिगण, रुधादिगण, तनादिगण, क्र्यादिगण और चुरादिगण इन के धातुओं और रूपों सहित उदाहरण.

९ ण्यन्तप्रक्रिया, सन्नन्तप्रक्रिया, यङन्तप्रक्रिया, यङ्लुगन्तप्रक्रिया, नामधातुप्रक्रिया, आत्मनपदप्रक्रिया परस्मैपदप्रक्रिया, भावकर्मप्रक्रिया, भावकर्तृप्रक्रिया, लकारार्थप्रक्रिया इनके विषय सहित उदाहरण पूर्वक वर्णन.

१० कृदन्तमें कृत्यप्रक्रिया, कृत्प्रक्रिया, उणादि प्रकरण इन सबका अजन्तपुल्लिंगसेलेकर उणादिप्रकरणतकसिद्धान्तकौमुदी आदि पूर्वोक्त ग्रंथों से आवश्यक विषय लिया है

११ सिद्धान्तकौमुदी के समग्र लिंगानुशासन का वर्णन किया है.

१२ और जहां २ पर संदेह युक्त वाक्य अर्थात् 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' इसकी वृत्ति में प्रत्ययांत

कोभी वर्जा है उसका परिहार मनोरमा के मतसे लिखा है. फिर निंदावाचक संप्रदान की चतुर्थी में तृतीया होती है. संबंध में षष्ठी का त्याग कारक में क्यों किया गया इत्यादि बहुत जगह पर विषयों को शेखर, शब्द कौस्तुभ, मनोरमा आदि के प्रमाण देकर दरसा कर सरल रूप से दिखाया गया है.

१२ ग्रन्थ सम्पूर्ण होने का दिन तथा विद्वानों से प्रार्थना ग्रंथकार ने की है. और ग्रंथरचना करने का देश पुर वर्णन किया है.

इत्यादि विषय ऐसी स्पष्ट रीति से संस्कृत श्लोकबद्ध और भाषा टीका उदाहरण सहित रक्खेगये हैं कि पाठकगण विना गुरु के व्याकरण के विषयों में विद्वान् होकर सब शास्त्रों का प्रचार कर सकेगा. अब काव्यकर्त्ताओं से प्रार्थना करता हूं कि प्रथम तौ मेरे पिताजी ने १५ वर्ष पर्यंत काशीपुरी में निवास करके व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, भैषज्य, साहित्य प्रभृति विद्याध्ययन किया उस परिश्रमके हेतु से तथा श्रीपरमेश्वर की कृपा से उन्होंनेसंस्कृत के ग्रंथ जुबिलीप्रमोदिका, सेनापतिकीर्तिचन्द्रोदय, मणियशोदीपिका, रदान्योक्तिकल्पद्रुम, मोक्षमूलरयशोदीपिका, कच्छनरेशकीर्तिचन्द्रोदय, भास्करयशोदीपिका, जगद्भूषण, कपूरथला विठ्ठलयशोदीपिका, यशवन्तयशोदीपिका, विटनीयशोदीपिका, छत्रपतियशोदीपिका, न्यायसमुच्चय, पद्यव्याकरण, भोजनविवेक और आमिषसमीक्षा आदि बनाये हैं. उनमें कितनेक प्रसिद्ध भी हुए हैं. और प्राकृतकविता में "रामचंद्रोदय, अर्जुनपर्व, प्रतापपचीशी, पोलोशतक, सुखदेवबहत्तरी, हरजीवत्तीशी, प्रतापगुणचंद्रोदय, हनुमान् करुणाबत्तीशी, सीता करुणाबत्तीशी, रामचंद्र करुणा-

वत्तीशी, पाबू अष्टक, रणजीत पचीशी, नाहरगुणपंचाशिका, ईश्वरप्रार्थना, यशवंतयशोदीपिका और तख्तयशोदीपिका भावनगर आदि वहुत से ग्रंथ रचे हैं. और वे अच्छी तरह से साहित्य के विषयों से विज्ञ हैं. उक्त पिताजी की विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर श्रीमान् अनेक शुभगुणसम्पन्न राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री वैकुंठवासी वडे महाराजाजी श्री १०८ श्रीयशवंतसिंहजी वहादुर जी. सी. ऐस्. आई. मरुधर इंद्र ने इनको पग में सुवर्ण पहनने को, पालखी आदि इज्जत दो दफे इनायत फरमायी. और साम्प्रति श्रीमान् अखंडप्रतापी राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाजी श्री १०८ श्री सिरदारसिंहजी वहादुर भी उसी तरह अनुग्रह फरमाते हैं. और श्रीमन्महाराजाधिराज सर कर्नल प्रतापसिंहजी वहादुर जी.सी.ऐस्.आई.,एल्.एल्.डी., सी.वी. ऐडी. सी. श्रीमान् हिज् रायल हाईनेश दि प्रिंस आफ् वेल्स वहादुर मुसाहिव आला राजमारवाड़. भी विद्या की कदर फरमाते हैं. और इस विद्या ही की कदर फरमाने से श्रीमान् भारतदिवाकर श्री १०८ श्री महाराजाधिराज सर फतेसिंहजी वहादुर जी.सी. ऐस्. आई. मेवाड़ के अधिपति ने दो दफै खिल्लत इनायत फरमाई. और श्रीमान् १०८ श्री महाराजा वहादुर भावनगर, तथा श्रीमान् महाराजा साहिव वहादुर मैसोर वंगलोर, तथा श्रीमान् १०८ श्री महाराजा वहादुर साहू छत्रपति वहादुर जी. सी.ऐस्.आई.कोल्हापुर, तथा श्रीमान् १०८श्री सर वीभाजी जामसाहेव वहादुर के.सी.ऐस्. आई. जामनगर, तथा श्रीमान् सवाई महाराव सर खेंगारजी वहादुर जी.सी.आई.ई.,तथा श्रीमान् दीवाण वहादुर मणिभाई जशभाई सी.ऐस्.आई. प्राइम् मिनि-

ष्टर वडोदा राज्य ने, तथा श्रीमान् महाराजा स्वर्गवासी श्री १०८ श्रीरणजीतसिंहजी वहादुर के. सी. ऐस्. आई. रतलाम, तथा श्रीमान् स्वर्गवासी महाराजा श्रीवलदेवसिंहजी वहादुर अवागढ, तथा श्रीमान् महाराजा श्री सवाई महेन्द्र महाराजा श्री १०८ श्री प्रतापसिंहजूदेव वहादुर के. सी. आई. ई. ओडछा टीकमगढ, तथा श्रीमान् आनरेबिल् महाराजा श्री १०८ श्रीप्रतापनारायणसिंह वहादुर के. सी. आई. ई. अयोध्यानरेश, तथा श्रीमन्महाराजाधिराज महाराजा सर श्री १०८ श्री हीरासिंहजी वहादुर जी. सी. ऐस्. आई. नाभा आदि वहुत से महाराजाओं ने मेरे पिताजी को खिलतें इनायत फरमाई हैं. तथा श्रीमान् महारावसाहेव वहादुर श्री-१०८ श्री कोटा, तालभोपाल, टूंक, सवाईजयपुर, लूनावाडा, सुहावल्, मंडी, नयपाल आदि ४८ रियासतों से मानपत्र मिले हैं. और काशी के महापंडितों से मानपत्र तथा सुवर्णपदक अर्थात् प्रतिष्ठामुद्रा मिली हैं. और वरेली इंष्टीट्यूट से तथा लिटरेरी सोसाईटी कलकत्ता से तथा श्रीमान् राववहादुर गोपालराय हरि देशमुक् फर्ष्ट क्लाश सरदार दक्खन, फैलो युनिवार्सिटी वांवे और लेट् मैंवर कोशिल वांवे से और श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी महाराज भास्करानंद सरस्वतीजी आदि से भी चार सुवर्ण के पदक मिले हैं. और गवर्नमेंट कालेज फरुखावाद के हैडमाष्टरों से तथा आसिष्टंट कमिस्नर कमाऊं आदि से चार पदक रूपे के मिले हैं. और अभी इस पुस्तक की योग्यता पर उक्त स्वामी महाराज श्रीभास्करानंदसरस्वतीजी ने सर्व राजकीय कर्मचारियों की सभा में वैयाकरणकेसरी का विशेषण नाम पूर्वक स्वर्णपदक मय मानपत्र के दिया है. और श्री

महानीतिमती राजराजेश्वरी भारतेश्वरी श्रीमलिका-महाराणी अखंड ऐश्वर्यवती की प्रशंसा अर्थात् उक्त श्रीमती के कियेहुए प्रजा के उपकारों को संस्कृत श्लोकबद्ध जुबिलिप्रमोदिका आदि पुस्तकें जो मेरे पिताजी ने बनाईं और उसकी हकीकत तार द्वारा श्रीमान् वाइसराय लार्ड डफरिन् आवा बहादुर के मुलाहिजे की तौ उक्त श्रीमान् ने एक हुक्म पुस्तक के बारे में मार्फत एजंट गवर्नर जनरल राजपूताना की ष्टेट् जोधपुर में भेजा और फिर ४ पुस्तकें मार्फत राज्य के होकर रसिडेंट के तथा ए.जी.जी. के द्वारा श्रीमान् वाइसराय के मुलाहिजा गुजरीं. जवाब में एक खलीता उक्त श्रीमान् का ष्टेट् के नाम आया उसमें हिंदुस्थान की गवर्नमेंट ने मेरे पिताजी को धन्यवाद दिया है. और फिर वे पुस्तकें हिंदुस्तान में तथा लंदन, अमेरिका, फ्रांस, जरमन् आदि देशों के महाशयों को भेजी गईं उनके जवाब में श्रीमती भारतेश्वरी के चिरजीव बडे प्रिंस, श्रीमान् हिज़ रायल् हाईनेश दी प्रिंस आफ वेल्स से तथा द्वितीयप्रिंस श्रीमान् ड्यूक आफ़ एडिंबरा से तथा तृतीय कुमार ड्यूक आफ़ कनाट महोदय से धन्यवाद पत्र मिले हैं। तथा श्रीमान् लार्ड रिपिन्, तथा लार्ड क्रास, तथा लार्ड सालस्वरी, लार्ड नार्थ ब्रुक्, लार्ड लिटिल्, लार्ड डफरिन् आवा, लार्ड लेंसडोन्, लार्ड रावर्ट, लार्ड रे आदि महाशयों से मानपत्र मिले हैं। तथा सरकारी विद्याविभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर मोक्षमूलर भट्ट ऑक्सफोर्ड तथा डाक्टर फिसिल् जरमन्, अर्थर वेनिश, ग्रिफिथ्, विदौन अमेरिका आदि विद्वानों से मानपत्र मिले हैं ; और भी वंबै, कच्छ, देहली,

अजमेर आदि शहरों के विद्वानों ने सभाओं करके मान पत्र दिये हैं ; इसलिये इस ग्रंथ को अवलोकन करके इस की कविता जोके व्याकरण सूत्रादिकों के न विगड़ते छंद को भी सही रक्खा है, परन्तु बहुत ही कठिनता शब्द और छंद कायम रखने में पड़ी हुई देख कर किसी२ स्थल में लघु को दीर्घ और दीर्घ को लघु मान कर निर्वाह किया है. किसी२ स्थल में सस्वर को निस्वर और निस्वर को सस्वर मान कर विशल्य किया है. इसलिये काव्यकर्ताओं से मेरा विनय है कि जिस समय इस ग्रंथ को देखते २ आनंदित होते २ कहीं२ पूर्वोक्त विषय देखने में आजावे तो प्रथम शुद्धि पत्र को देखकर फिर उस समय कालिदास महाकवि कृत कुमारसंभव के इस श्लोक का ध्यान करलेंगे.

"एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥"

मैं आशा है कि आप महोदय इस ग्रन्थ को अवश्य ही आदर संप्रदान करेंगे, कि विद्यार्थी बालकों से लेकर वृद्ध तक जोके पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के रसिक हैं उनके अर्थ कैसा लाभदायी यह ग्रंथ बनायागया है. जोके अति अल्प परिश्रम से व्याकरण का विद्वान् वनजाना कितने हर्ष का स्थान है. अब मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि मेरे पवित्र पिताजी की कृति का सुकृत सदा सर्वदा स्थिर रहे।

सर्व वैयाकरण महाशयों का तथा काव्यकर्ताओं का

दीन शुभचिन्तक किङ्कर
पंडित—रामदान.
जोधपुर मारवाड़

॥ ओंतत्सत् ॥

पद्यव्याकरणम् ॥
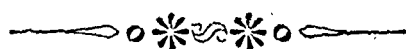
वसन्ततिलकावृत्तम् ॥

जन्मादयोऽस्य जगतोऽपि भवन्ति यस्मा,
द्योऽनेकधा निगमवर्त्मनि वर्णनीयः ॥
श्रीशाब्दबोधनकृते कृतिकृत्यतुष्ट,
स्तं सत्यरूपमहमत्र सदा दधामि ॥ १ ॥

अर्थ—जिस परमेश्वर से जगत् के जीवों के जन्म, स्थिति, संहार होते हैं, और जो वेद के मार्ग में अनेक प्रकार से वर्णनीय है और सुकृति लोगों के काम से प्रसन्न है उस सत्यस्वरूप प्रभु को, इस शाब्दबोधन ग्रन्थ अर्थात् पद्यव्याकरण को निर्माण करने के लिये मैं सदैव धारण करता हूं ॥ १ ॥

(कविवंशवर्णनम्)

षट्शास्त्रवित्सकलसद्गुणसंघजुष्टः,
श्रीरामदत्तमतिमान् नृपमाननीयः ॥
सत्पात्रपुण्यपुरुषेष्विह दर्शनीयो,
विप्रस्त्वभूत्प्रवरपुष्टिकराद्द्विजेषु ॥ २ ॥

सन्मान्यपर्वतमुनेर्बुधसंततौ यः ,
श्रीवल्लसंज्ञकपुरोहितजातिजीनः ॥
श्रीतख्तसिंहनृपतेरिह शिष्टदेव्या ,
व्यासो बभूव हरिभावुकसत्यशीलः ॥ ३ ॥
तस्यात्मजास्त्रय उदात्तगुणा बभूवु ,
ज्येष्ठौ च तेषु शिवशंकरनामधेयौ ॥
ताभ्यां कनिष्ठ इह पद्यविधौ प्रवृत्तो ,
विद्वत्पदाम्बुजजनो द्विजलालचन्द्रः ॥४॥
आशान्वितोऽस्मि निजचित्त उताहमीशात्,
नित्यं श्रमः सफलतां मम चैष्यतीह ॥
शाब्दीयशिष्यसुकृतेऽखिलसंस्कृतीये ,
स्वल्पश्रमेण पठनाय सुपुस्तकेऽयम् ॥ ५ ॥

[कविवंशवर्णनम्]

षट्शास्त्र के वेत्ता और संपूर्ण सद्गुण समू कर के युक्त और महाराजों के माननीय और सज्जन और पुण्य वान् पुरुषों में दर्शनीय पंडितवर श्रीयुत रामदत्तजी शास्त्री बडे बुद्धिमान् पुष्करणा द्विजों में वेदपाठी बिद्वान् हुए थे ॥ २ ॥ उक्त पंडितजी अपने पूर्वज पर्वत मुनि की विज्ञ संतति में वल्ला पुरोहितों की जाति में प्रतिष्ठित थे और श्रीमान् राजराजेश्वर महाराजाधिराज स्वर्गवासी महाराजाजी श्री १०८ श्री तखतसिंहजी बहादुर- जी.सी.ऐस्.आई. मरुधरानरेंद्र की पाटवी श्रीमती महाराणी जी श्री १०५ श्री बड़ा राणावतजी

साहित्यों के व्यासजी थे और प्रभु के सदा परायण और सत्यशील थे ॥ ३ ॥ उक्त पण्डित जी के उत्तम गुणोंवाले सज्जन तीन पुत्र हुए उन में श्रीयुत शिवदत्त जी शास्त्री और श्रीयुत शंकरजी ये दो बड़े पुत्र और इन दोनों से छोटा पुत्र जो कि इस व्याकरण शास्त्र की पद्य रचना करने में प्रवृत्त हुआ और सब विद्वानों के चरण कमल का दास लालचन्द्र नाम का मैं हूं ॥४॥ मैं परमेश्वर से नित्य आशावान् हूं कि इस पुस्तक में जो मेरा परिश्रम है वह संपूर्ण संस्कृत विषयक पुस्तकों में अत्यल्प परिश्रम से पढ़ने पूर्वक जो व्याकरण शास्त्र के शिष्यों का सुकृत है उसके अर्थ सफल होजायगा ॥५॥

गद्यात्मकेषु किल दीर्घतरेषु सत्सु ,
श्रीशाब्दबोधनपरेष्वमितेषु भूम्याम् ।
शब्दार्णवप्रतरणे पिहितोद्यमानां ,
पद्यप्लवं विरचयामि मुदे शिशूनाम् ॥ ६ ॥

यद्यपि इस भारत भूमि में बड़े बड़े लंबे चौड़े व्याकरण शास्त्र बहुत हैं तथापि उनके गद्यात्मक होने से शब्द समुद्र को तरने में उद्यम हीन होजानेवाले विद्यार्थियों के हर्ष के वास्ते पद्य अर्थात् श्लोकबद्ध व्याकरण रूपी प्लव (अल्प नौका) रचता हूं ॥ ६ ॥

[महाभाष्योदितानि शब्दप्रयोजनानि]

शब्दोऽप्यथेत्पयमलं त्वधिकारवाची,
शब्दानुशासनमिदं खलु वेदितव्यम् ॥
शास्त्रं ह्यधिकृतमलं नितरां च शाब्दे,
केषां तु लौकिकसुवैदिकभावभाजाम् । ७ ।

अथ इति इस शब्द का प्रयोग अधिकार के वास्ते किया जाता है क्योंकि ओ३म् और अथ ये दोनों शब्द विधि के कंठ को भेद कर प्रथम ही प्रथम प्रादुर्भूत हुए हैं इसलिये दोनों मांगलिक हैं और शब्दों की शिक्षा का शास्त्र सर्व शास्त्रों के प्रथम में अधिकारी होना आवश्यकीय है।

[प्रश्न] कौन से शब्दों का अनुशासन
(उत्तर) लौकिक और वैदिक शब्दों का ॥ ७ ॥

गौरश्व एव पुरुषः शकुनिर्मृगोऽपि,
हस्ती च विप्र इति लौकिकनामधेयाः ॥
देवीरभिष्टय इतीह यथैव शंनो,
चेषे तथा किल पुरोहितमग्निमीले ॥ ८ ॥
आयाहि वीतय इतीह किलाग्न एवं,
ये वैदिकास्त्वखिलशब्दविधौ प्रयुक्ताः ।
अस्मिंश्च गौरिति पदे किमु यत्तदेवं,
सास्नाविषाणखुरपुच्छमयस्तु शब्दः ॥ ९ ॥

गौः अश्वः पुरुषः हस्ती शकुनिः मृगः ब्राह्मणः । ये लौकिक शब्द हैं और इनकी सिद्धि लौकिक व्याकरण से होती है । शं नो देवीरभिष्टये । इषे त्वोर्जे त्वा । अग्निमीले पुरोहितम् । अग्न आयाहि वीतय इति । ये वैदिक शब्द हैं वे वैदिक व्याकरण से सिद्ध होते हैं तो शब्दानुशासन शास्त्र को अवश्य ही पढ़ना चाहिये क्योंकि (मुखं व्याकरणं स्मृतम्) संपूर्ण शास्त्रों का मुख व्याकरण शास्त्र है अब पाणिनि मुनि कहते हैं कि गौः इस

पद में शब्द कौनसा है क्या सास्ना अर्थात् गलकंबल लांगूल अर्थात् पुच्छ, ककुद, खुर, विषाणी अर्थात् शृंगवालों के अर्थ रूपी शब्द है ॥ ९ ॥

नेत्याह नाम तदिदं द्रवितुं च योग्यं,
यत्तर्हि चेष्टितमुतेङ्गितमत्र शब्दः ।
नेत्याह तत्र किल नामविधौ क्रिया सा,
यत्तर्हि शुक्लकपिलादिभिरत्र शब्दः ॥ १० ॥

नहीं । तब क्यावह शब्द द्रव्य नाम है । तब वह उसका इंगित, चेष्टित, निमिषित रूपी शब्द है. नहीं, वह क्रिया नाम है. तब वह शुक्ल, नील, कृष्ण, कपिल, कपोत रूपी शब्द है ॥ १० ॥

नेत्याह नाम गुण इत्यपि शब्द आस्ते,
यस्तर्ह्यभिन्नमिति भिन्नमयेषु तद्वत् ।
छिन्नेषु शब्द इति चात्र समानभूतं,
नेत्याह चाकृतिरपीह तु नाम शब्दः ॥ ११ ॥

नहीं, वह गुण नाम रूपी शब्द है तब वह भिन्न होने से अभिन्न वा छिन्न होने से अछिन्न सामान्य भूत वह शब्द है, नहीं, वह आकृति नाम शब्द है ॥ ११ ॥

प्रोच्चारितेन गलकम्बलपुच्छभाजां,
संप्रत्ययो भवति येन स एव शब्दः ।
लोकेऽथवा किल प्रतीतपदार्थकोऽसौ,
शब्दो ध्वनिः खलु विभाति सदैव शब्दे ।१२

जिस करके उच्चारित हुए हुए सास्नादि धारण

करनेवालों की सम्यक् प्रकार से प्रतीति होवे वह शब्द है अथवा प्रतीत पदार्थक ध्वनि शब्द है ॥ १२ ॥

ज्ञेयं ह्युदाहरणमत्र च तद्यथैव
शब्दं कुरु त्विह तथैव हि मा च कार्षीः ।
बालोयमत्र विदितः किल शब्दकारी
कुर्वन् ध्वनिं तदिति चेद्ध्वनिरत्र शब्दः । १३ ।

इसका उदाहरण देते हैं कि शब्द कर, शब्द मत कर यह बालक शब्द करनेवाला है तो ध्वनि करता हुआ ऐसा बोलता है इसलिये ध्वनि ही शब्द कहलाता है ॥ १३ ॥

शब्दानुशासनमयस्य प्रयोजनानि
कानीह चागमलघूहसुरक्षणानि ॥
निःसंशयार्थमिति हेतुविधायकानि
शास्त्रस्य सम्यगवलोकनबोधदानि ॥१४।

शब्दानुशासन अर्थात् व्याकरण शास्त्र के कितने वा कौनसे प्रयोजन हैं ? रक्षा अर्थात् वेदों की रक्षा के वास्ते, ऊहः अर्थात् वितर्क कोर्थः वेदों के मंत्रों की विभक्ति वा लिंग का यथायोग्य विपरिणाम करने के लिये, आगमः अर्थात् षडंगवेद पढने में लघु अर्थात् अल्पोपाय से शब्दज्ञान होने के लिये, असंदेहार्थ अर्थात् प्रत्येक पद के संदेह दूर करने के लिये अवश्य ही प्रथम में शब्दानुशासन शास्त्र पढने का प्रयोजन है; इसलिये इन कारणों के विधायक और अच्छी तरह से व्याकरण अवलोकन करनेवालों को सर्व शास्त्र में बोधदायक प्रयोजन

महाभाष्य में गिनाये गये हैं॥ १४॥

रक्षादयोऽपि किल पाणिनिनाऽत्र पञ्च
संबोधिताः सकलशास्त्रविदा च भाष्ये।
ग्रन्थस्य भूरिभयतो मयका त एव
संक्षिप्तसारसरला विहिताः सुपद्ये ॥१५॥

रक्षादिक पांच प्रयोजनों को संपूर्णशास्त्रों के विद्वान् पाणिनि मुनि ने और पतञ्जलि मुनि ने स्वोदित महा भाष्य में सविशेष वर्णन किये हैं परंतु इस पद्यव्याकरण के बढ जाने के भय से संक्षेप सार पूर्वक सरल रीति से मैंने उक्त ग्रंथ में दिखाये हैं॥ १५॥

नृत्यावसानसमयेऽपि ननाद ढक्कां
शंभुश्चतुर्दशविधं श्रुतिसूत्रसंघैः॥
तेभ्योऽत्र बोधनकृतेऽखिलशास्त्रमूल
शब्दानुशासनमभूत्तदिदं च शास्त्रम्॥१६॥

तांडव नृत्य के अखीर में वैदिक सूत्रों करके सहित चौदह बेर शंभु महाराज ने डमरू बजाया उन चौदह आवाजों रूपी १४ सूत्रों से शब्द ज्ञान होने के अर्थ संपूर्ण शास्त्रों का मूल रूप शब्दानुशासन शास्त्र प्रकट हुआ. तद्यथा—अ इ उ ण्। १। ऋ लृ क्। २। ए ओङ्। ३। ऐ औच्। ४। ह य व र ट्। ५। लण्। ६। ञ म ङ ण न म्। ७। झ भ ञ्। ८। घ ढ ध ष्। ९। ज ब ग ड द श्। १०। ख फ छ ठ थ च ट त व्। ११। क प य्। १२। श ष स र्। १३। ह ल्॥ १४॥

माहेश्वराणि किल सूत्रचयान्यणादि

संज्ञामयानि कथितानि बुधैस्तदेषाम् ॥
अन्त्या इतश्च लणि सूत्रविधावकार
उच्चारणार्थ इति हादिषु चाऽप्यकारः ॥१७॥

माहेश्वराणि अर्थात् महेश्वर के द्वारा मिलेहुए सू.
त्र समूह अणादि संज्ञार्थ कहे हैं इन सूत्रों के अंत्य इत्
संज्ञक हैं और लण् सूत्र में अकार और हकारादिक
सूत्रों में अकार उच्चारणार्थ है ॥ १७ ॥

स्यादन्त्यमिद्धलिति सूत्रविधौ सदैव
अन्त्येन चादिरिति मध्यभृतां सहेता ॥
संज्ञा भवेत्तदुपदेशविधौ हलित्स्या
दन्त्यं तथैव तदजिन्मय एव लोके ॥१८॥
ज्ञेयोऽनुनासिक इहाप्युपदेश एव
वां कालको भवति योऽच् लघुपूर्वसंज्ञः ॥
उच्चैरुदात्त इति नीचगिराऽनुदात्तो
द्वाभ्यां समाहित इह स्वरितो विधेयः ॥ १९ ॥

हल् सूत्र में अंत्य इत्संज्ञक होता है इत् संज्ञक अं
त्य करके सहित आदि वर्ण है सो मध्यस्थों की तथा
निज की संज्ञा होती है जैसा कि संधियों के प्रयोजन
भूत सर्व प्रत्याहारों को लिखता हूं.

अच् —अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ
झल् —झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च
ट त क प श ष स ह
जश् —ज ब ग ड द
झष् —झ भ घ ढ ध

यण् —य व र ल

मय् —म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ
छ ठ थ च ट त क प

हल् —ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग
ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह्

एच् —ए ओ ऐ औ

झर् —झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च
ट त क प श ष स

खर् —ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स

इक् —इ उ ऋ ऌ

अण् —अ इ उ (अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल)

यर् —य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग
ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स

झय् —झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च
ट त क प

अट् —अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र

यय् —य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब
ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प

शर् —श ष स

ङम् —ङ ण न

खय् —ख फ छ ठ थ च ट त क प

अम् —अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ
म ङ ण न

छव् —छ ठ थ च ट त

इण् —इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल

अक् —अ इ उ ऋ ऌ

हश् —ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब

ग ड द
वश् —उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण
न झ भ

इत्यादि प्रत्याहार जान लेना और आगे काम पड़े वहां काम में लाना. उपदेश अर्थात् आद्योच्चारण में अन्त्य हल् इत् संज्ञक होता है. उपदेश में अनुनासिक अच् इत्संज्ञक होता है. उ, ऊ और ऊ ३ ये मिल कर "वः" होता है "वां काल इव कालो यस्य" अर्थात् उन उकारों के काल सदृश काल है जिसका वह अच् क्रम से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञक होता है. भाग सहित ताल्वादि स्थानों के ऊर्ध्वभाग में प्रकट हुआ जो अच् वह उदात्त संज्ञक होता है. नीचे के स्थानों में प्रकट हुआ जो अच् वह अनुदात्त है, उदात्त अनुदात्तपन में वर्णधर्म का समाहार होवे वह स्वरित संज्ञक है।१८-१९।

आदावुदात्तमपि चार्द्धमयं लघुत्वं
चोच्चारितो मुखनसाऽप्यनुनासिकोऽर्णः ॥
ज्ञेयं सवर्णमिति तुल्यमुखप्रयत्न
मश्वाऽस्त्वितीह विहितं मुनिभिः प्रणीतम् ॥२०॥

स्वरित के आदि में अर्द्ध उदात्त है और उत्तरार्द्ध में अर्द्ध अनुदात्त है. मुख और नासिका से बोला हुआ वर्ण अनुनासिक संज्ञक होता है जैसा कि अ, इ, उ, ऋ इन वर्णों में प्रत्येक वर्ण के अठारह भेद होते हैं और ऌ वर्ण के बारह भेद होते हैं क्योंकि दीर्घ का अभाव है और एच् प्रत्याहार के भी बारह भेद होंगे क्योंकि ह्रस्व का अभाव है। ताल्वादि स्थान और आभ्यंतर प्रयत्न ये दोनों जिस के जिस करके तुल्य होवें वह

परस्पर सवर्ण संज्ञक होता है। जैसा कि "अ, क वर्ग, ह, (:) विसर्ग,, इन सब का कंठ स्थान है। इ, चवर्ग, य, श,, इन का तालु स्थान है। "ऋ, टवर्ग र, ष,, इन का मूर्द्धा स्थान है। लृ,तवर्ग,ल,स,,इन का दंत स्थान है " उ, पवर्ग, उपध्मानीय अर्थात् प, फ, के पहले जो अर्ध विसर्ग है इन का ओष्ठ स्थान है। " ञ, म,ङ, ण,न,, इन का नासिका स्थान है। " ए ऐ ,, इन का कंठतालु स्थान है। " ओ, औ ,, इन का कंठओष्ठ। " व ,, इसका दंतओष्ठ। जिन्हामूलीय अर्थात् क, ख के पहले अर्ध विसर्ग है उसका जिन्हामूल स्थान है। अनुस्वार का नासिका स्थान है। यत्न दो प्रकार का है। आभ्यंतर और बाह्य। आभ्यंतर चार प्रकार का होता है स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत और संवृत। स्पृष्टप्रयत्न स्पर्श अक्षरों का। ईषत्स्पृष्ट अंतस्थों का। विवृत ऊष्मों का और स्वरों का। ह्रस्व अवर्ण के प्रयोग में संवृत और प्रक्रिया दशा में वही विवृत. अ-अ इस सूत्र से संवृत संज्ञा शास्त्रकारों ने लिखी है ॥ २० ॥

पूर्वत्र चैव किल सूत्रविधावसिद्धं
यत्नाऽऽज्झलाविति सवर्णमयौ च न स्तः॥
चाऽप्रत्ययोऽणुदिदसौ हि सवर्णकस्य
यस्तात्परस्तपर इत्यपि एककालः॥२१॥

यह अधिकार वाचक है इस से सपादसप्ताध्यायी प्रति त्रिपादी असिद्ध है और त्रिपादी के विषे पूर्व प्रति पर शास्त्र असिद्ध है बाह्य प्रयत्न एकादश प्रकार का है यथा--विवार १ संवार २ श्वास ३ नाद ४ घोष ५ अ-

घोष ६ अल्पप्राण ७ महाप्राण ८ उदात्त ९ अनुदात्त १० स्वरित ११ ॥ आकार सहित अच् आच् वह और हल् ये परस्पर सवर्णी नहीं हैं. और नहीं विधान किया हुआ अण् और उदित इन की सवर्ण संज्ञा है [ऋ और ऌ की परस्पर सवर्ण संज्ञा होने से ऋ और ऌ के भी ३० भेद होते हैं] 'त' परे है जिस से वा 'त' से परे होवे वे दोनों समकालीन हैं ॥ २१ ॥

आदैच् तु वृद्धिरिति तत्र गुणोऽप्यदेङ्वै
भूवादयः प्रचुरधातव एव लोके ॥
प्राग्रीश्वरात्किल भवन्ति निपातसंज्ञा
ये प्रादयोऽवसुमया किल चादयोपि ॥२२॥

दीर्घ अकार और एच् प्रत्याहार ये वृद्धि संज्ञक हैं ह्रस्व अकार और एङ् प्रत्याहार ये गुण संज्ञक हैं क्रियावाची भ्वादिक धातु संज्ञक हैं प्राग्रीश्वरान्निपाताः यह अधिकार करके चादिक अद्रव्यार्थ अर्थात् लिंग संख्या विहीन अर्थ में निपात अव्यय होते हैं इसी तरह पर प्रादिक भी निपात होते हैं यथा-- प्र परा अप सम अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप इति ॥ २२ ॥

अत्रोपसर्गविषये क्रियया च योगे
ख्याता गतिः खलु निषेधविकल्पयोर्वै ॥
संज्ञेयमेव सुबुधैरुदिता विभाषा
स्वंरूपमत्र किल संज्ञि भवेद्धि नाम्नः ॥ २३ ॥

प्रादिक, क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञक तथा गति संज्ञक होते हैं। निषेध और विकल्प की विभाषा

संज्ञा है शब्द का आत्मीय रूप है सो संज्ञि है शब्द शास्त्र के विषय जो संज्ञा है उसके विना ॥ २३ ॥

लोके विधिः किल तदन्तभवस्य येन
वर्णावसानमिति चापि विरामकालः ॥
या संहिता पर इतीह च संनिकर्षः
स्याद्वै पदं खलु तिङन्तसुबन्तसंज्ञम् ॥ २४ ॥

जिस करके विधि होवे वह विशेषण अपने स्वरूप की और तदंत की संज्ञा होता है. वर्णों का अभाव वह अवसान संज्ञक है.वर्णों की अतिशय करके सन्निधि होवे उसे संहिता कहते हैं.सुबन्त और तिङन्त ये दोनों पद संज्ञक होते हैं ॥ २४ ॥

चानन्तरा हल इतीह बुधैः प्रणीतिः
संयोग आस लघुरेव गुरुः परेऽस्मिन् ॥
संयोग उक्तलघु दीर्घमितीह संज्ञं
भट्टोजिदीक्षितमतेन कृतेति संज्ञा ॥ २५ ॥

अचों करके हीन जो हल् हैं उनको संयोग कहते हैं ह्रस्व और लघु तुल्य हैं. संयोग पर होवे तौ ह्रस्व भी गुरु संज्ञक और दीर्घ संज्ञक होता है यह श्रीमान् भट्टो जी दीक्षित के मत से मैंने संज्ञा प्रकरण बनाया है ॥ २५ ॥

शाब्दे तु संधय इतीह चतुर्विधाः स्यु
रचूहल्विसर्गसुमुखा मुनिभिः प्रणीताः ॥
अत्रोच्यते सकलसंधिजबोधसिद्ध्यै
संत्यक्तसाधनकृतिर्नितरां शिशूनाम् ॥ २६ ॥

शब्द शास्त्र में चार प्रकार से मुनि प्रणीत संधि क-
ही है यथा- अच्सन्धि, हल्संधि, विसर्गसन्धि, स्वादिसं
धि इस ग्रंथ में विद्यार्थियों के लिये प्रतिदिन संपूर्ण सं
धिज ज्ञान के अर्थ प्रकट साधनिका को मैं कहता हूं २६

इकुस्थानके यणचि यत्र हि संहितायां
तस्याप्युदाहृतिविधौ किल सुध्युपास्यः ॥
द्वे वा यरस्त्वचि न चाऽच इतीह विद्यात्
स्याद्वै झलां झशि परे तु जशेव नित्यम् ॥२७॥

इकु प्रत्याहार के स्थान में यथाक्रम से यण् प्रत्याहार
होता है अच् प्रत्याहार पर होवे तौ संहिता विषय में॥
इस के उदाहरण में सुधी उपास्यः इसका सुध्युपास्यः
हुआ. और अच् से पर यर् प्रत्याहार को विकल्प करके
द्वित्व होता है परंतु अच् पर होने से नहीं होता है इस
से पूर्वोक्त उदाहरण के धकार को द्वित्व हुआ और झ
लों को झश् पर होने से जश् होता है इससे धकार
को दकार हुआ ॥ २७ ॥

चादर्शनं भवति लोप इतीह शास्त्रे
आक्रोश इत्यपि सुतस्य किलादिनीह ॥
वा द्वित्वमत्र शिवनेत्रमुखाऽर्गजेषु
श्रीशाकटायनमतेन सुलोकरीत्या॥२८॥

प्रसक्त का अदर्शन होना ही लोप कहलाता है. पुत्र
शब्द के आदिनि शब्द पर होने से आक्रोश गम्यमान
अर्थ में द्वित्व नहीं होता है यथा-- पुत्रादिनीत्वमसि-
पापे। इसमें द्वित्व नहीं हुआ. तीन से लेकर वर्ण संयोगी

होने से विकल्पेन द्वित्व होता है जैसाकि-इन्न्द्रः इन्द्रः। यह शाकटायन मुनि का मत है इसलिये शास्त्र रीति में माना गया है ॥ २८ ॥

शाकल्यसज्जनमते प्रतिषेध एव
त्वाचार्यजे किल निषेध इतीह दीर्घात् ॥
द्वे वाऽप्यचः पररहात्परतो यरोपि
स्याद्वा हलः परयमो यमि लोपसंज्ञः ॥ २९ ॥

शाकल्य ऋषि के मत से सर्वत्र ही द्वित्व का निषेध माना है जैसाकि अर्कः। ब्रह्मा। और आचार्यों के मत से दीर्घ में द्वित्व निषेध किया है जैसाकि दात्रम्। पात्रम्। अच् से पर जो रेफ और हकार हैं उनसे पर यर् को विकल्प से द्वित्व किया है जैसाकि-हरि अनुभवः। हर्य्यनुभवः। हर्यनुभवः। हल् प्रत्याहार से पर यम् का लोप विकल्प से होता है यम् पर होने से. अब लोप और द्वित्वाभाव पक्ष में अेक यकार का रूप होता है. लोपारंभफल आदित्यं हविः। इसमें जान लेना ॥ २९ ॥

एचः क्रमादचि परेऽयऽवचाऽयूकिलाऽवूस्युः
ओदौदयावूभवति चापि परे तु यादौ ॥
यादौ परे प्रचुरधातुमयैच एव
यत्तान्निमित्तविषयस्य न चान्यजस्य ॥ ३० ॥

एच् प्रत्याहार के अच् प्रत्याहार परे होने से यथाक्रम से अय् अव् आय् आव् होते हैं यथा- हरये विष्णवे नायकः पावकः। यकारादिक प्रत्यय पर होने से ओत्, औत् को अव् आव् होवे जैसा गव्यम् नाव्यम्। यकारादि

प्रत्यय पर होने से धातु का जो एच् है उसको तिसीके निमित्त ही वांतादेश होता है और को नहीं जैसा कि लव्यम् । अवश्यलाव्यम् ॥ ३० ॥

क्षय्यं च जय्यमिति शक्यविधौ निपातात्
क्रय्यं तदर्थ इति यान्तमयेपि तद्वत् ॥
वाऽवर्णपूर्वपदयोर्यवयोः परेऽशि
लोपोऽप्यवर्णपरतोऽचिगुणो युगैक्यः ॥ ३१ ॥

शक्य अर्थ में क्षय्य शब्द और जय्य शब्द को यान्तादेश निपात होता है जैसाकि–क्षेतुं शक्यं क्षय्यं जेतुं शक्यं जय्यं.और क्रय्य शब्द निज अर्थ में उसी तरह होता है यथा-- क्रयार्थे प्रसारितं क्रय्यं. अवर्ण पूर्वक पदान्त संज्ञक यकार वकार का लोप विकल्प से होता है अश् प्रत्याहार परे होने से. और अवर्ण से अच् परे होने से पूर्व पर के स्थान में एक गुणादेश होता है।३१।

ऋलृस्थलेऽण् स रपरः सदृशः सदैव
लोपो हलः परझरो झरि वा सवर्णे ॥
आदेचि वृद्धिरिति चैकगुणापवाद
स्त्वेजाद्यवर्णपर एव विभावनीयः ॥ ३२ ॥

ऋकार लृकार के स्थान में रपर अण् होता है यहां अतिशयकरके अंतरतम होने से ऋके स्थान में र और लृके स्थान ल् में होता है यथा-कृष्णर्द्धिः तवल्कारः । और हल् से परे झर् प्रत्याहार का लोप विकल्प से होता है सवर्ण झर् परे होने से. अब द्वित्व के अभाव पक्ष में लोप होने से एक ध, और लोप के अभाव में द्वित्व और लोपके विषै दो ध,और द्वित्व होने में लोपाभाव से तीन ध. कृष्णर्द्धिः के तीन

रूप होते हैं. अ और आ से परे एच प्रत्याहार होने से वृद्धि रूप एकादेश होता है यह गुण का अपवाद है जैसा-कृष्ण एकत्वम् कृष्णैकत्वम् । गंगा ओघः गंगौघः। अवर्ण से एजादिक एति एधति और ऊठ् परे होने से वृद्धि रूप एकादेश होता है. यहां भी गुण का अपवाद समझ लेना यथा-- उप एति उपैति। उप एधते उपैधते। प्रष्ठ ऊहः प्रष्ठौहः। इत्यादि जानलेना ॥ ३२ ॥

चावर्णतस्तदुपसर्गत एव रादौ
वृद्धिस्त्ववर्णत इतीह च सुब्विधौ वा ॥
रादौ परे प्रचुरधातुमये तदन्ते
एङादिधातुविषये पररूपमेव ॥ ३३ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु परे होने से वृद्धि रूप एकादेश होता है जैसाकि-- उप ऋच्छति । उपार्छति। अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि सुप् धातु परे होने से वृद्धि विकल्प से होती है. प्र ऋषभीयति प्रार्षभीयति प्रर्षभीयति। और अकार से एङादिक धातु पर होने से पररूप एकादेश होता है यथा-- प्र एजते प्रेजते उप ओषति उपोषति ॥ ३३ ॥

चाचां किलोऽत्य इह यस्य स आदिरास्ते
तद्धै टिसंज्ञकमिति प्रथितं तु शास्त्रे ॥
ओमाङि चात्पर इहैकपरं विधेयं
ध्वन्यर्थजोऽदितिपरे पररूपसंज्ञः ॥ ३४ ॥

अचों के मध्य में जो अंत्य रूप है वह है आदि में जिसके वह टि संज्ञक है. अवर्णांत शब्द से ओम् और

आङ् शब्द परे होने से पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एका देश होता है. और इति शब्द परे होने से अव्यक्त शब्द का जो अनुकरण उस के अत् भाग को पररूप एकादे- श होता है. ॥ ३४ ॥

द्वेधोक्तरूपकविधस्य तु वापि तस्य
नाम्रेडितस्य पररूपमयं तथैव ।
स्युर्वै जशः किल झलां च पदान्तमध्ये
दीर्घोऽचि चाक इह शास्त्रविधौ सवर्णे॥३५॥

द्विरुक्त शब्द अर्थात् एक शब्द दो वेर कहागया हो उस के दूसरे भाग की आम्रेडित संज्ञा है उस आ म्रेडित के अत् भाग को पर रूप एकादेश न होगा कि न्तु उस के अंत के तकार को विकल्प से पररूपं एका देश होगा जैसा कि-पटत् पटत् इति पटत्पटेति । पट- त्पटदिति । पदांत में झल् प्रत्याहार को जश् होता है. अक् के सवर्णी अच् पर होने से दीर्घ एकादेश होता है जैसा कि-दैत्य अरिः दैत्यारिः। श्री ईशः श्रीशः। विष्णु उ दयः विष्णूदयः ॥ ३५ ॥

एङः पदान्तविषयादति पूर्वरूपं
लोकार्षयोर्भवति गोरति वा प्रकृत्या ।
स्फोटायनस्य विषयेऽचि परे पदान्ते
गोर्वाप्यवङ् भवति चेन्द्रपरे च नित्यम् ॥ ३६ ॥

पदान्त एङ् के अति परे होने से पूर्वरूप एकादेश होता है जैसा कि-हरे अव हरेऽव। विष्णो अव, विष्णो ऽव ।शास्त्र और वेद में एङ् है अंत में जिसके ऐसे गो शब्द के ह्रस्व अकार परे होने से विकल्पकरके प्रकृति भावहोता

है स्फोटायन मुनि के मत से एङन्त गो शब्द के अच् प्रत्याहार परे हो तो अवङ् आदेश विकल्प से होगा जैसा कि-गो अग्रम्। गवाग्रम्। गोऽग्रम्। और इंद्र पद परे हो तो अवङ् आदेश नित्य होता है गो इन्द्रः गवेन्द्रः। इत्यादिक जान लेना

नित्यं प्रकृत्यभिमुखाः प्लुतजाः प्रगृह्याः
स्युर्वै प्रकृत्याधिचरास्तदिकोऽच्यतुल्ये।
तेऽमी पदान्तविहिताश्च तथा लघुर्वा
प्राग्वद्भवेद्दतिपरेऽक इहैव शास्त्रे ॥ ३७ ॥

प्लुत संज्ञक और प्रगृह्य संज्ञक अच् परे होने से नित्य ही प्रकृति भाव होता हैं जैसा कि एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति। असवर्ण अच् परे होने से पद के अंत में विद्यमान इक् को विकल्प करके ह्रस्व होगा और वह प्रकृति भाव होगा जैसा कि-चक्रि अत्र।चक्र्यत्र।ह्रस्व ऋकार परे होने से पदान्त अक् को विकल्प करके ह्रस्व होगा। यथा-ब्रह्मा ऋषिः ब्रह्म ऋषिः। ब्रह्मर्षिः।३७।

वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्त इहापि तद्वत्
चाशूद्रजे पदविधावभिवादने यत् ॥
वाक्यस्य टेः प्लुत इतीह भवेत्तथैव
संबोधने खलु तथोदितदूरवाक्यात् ॥ ३८ ॥

वर्त्तमान वाक्य की टि को प्लुतोदात्त होता है प्रणाम आदि करने के बदले में जो किया जाता है उसको प्रत्याभिवाद कहते हैं उस अशूद्र विषयक प्रत्यभिवाद में जो वाक्य है उस के टि को प्लुतोदात्त होता है. यथा अभिवादये ३ देवदत्तोहम्। भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३

जो दूर से पुकारने में वर्तमान वाक्य है उस की टि को प्लुतोदात्त होता है यथा सक्तून् पिब देवदत्त३ ॥ ३८ ॥

हैहेप्रयोगविषयेऽपि सुदूरवाक्ये
तद्धैहयोः प्लुत इति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
ऋद्भिन्नसंज्ञदतनन्त्यविधौ गुरौ वा
संबोधने प्लुत इतीह भवेच्च दूरात् ॥ ३९ ॥

है और हे के प्रयोग में जो दूर से पुकारने पूर्वक वाक्य होता है उसकी टि को छोड़कर केवल है और हे को प्लुत होता है यह बात पूर्व के आचार्यों ने कही है जैसा कि हे ३ राम । राम है ३ इत्यादि. और ऋकार को छोड़कर अनंत्य गुरु वर्ण है उस के संबोधन वाक्य में एक एक को विकल्प करके प्लुतोदात्त होता है, परंतु अंत्यवर्ण गुरु हो वा लघु हो उसको भी प्लुतोदात्त होगा जैसा कि दे३वदत्त । देवद३त्त । देवदत्त३ ।

योऽनार्षशब्द उपसंस्थित एव तस्मिन्
नित्यं परे प्लुतवदप्लुत इत्त्वणीयः ।
ई३चाक्रवर्मणमतेऽचि परेऽप्लुतो वा ।
ख्वेदन्तवाक्यविषये द्विवचः प्रगृह्यम् ॥४०॥

उपस्थित अनार्ष शब्द परे होने से प्लुत भी अप्लुतवत् हो जाता है जैसा कि–शुश्लोक ३ इति । शुश्लोकेति. इ३ जो प्लुत है वह अच् परे होने से चाक्रवर्मणकेमत में अप्लुतवत् विकल्प से होता है जैसाकि-चिनुहि३इति चिनुहीति । ई, ऊ और ए जिन के अंतवर्त्ति हो ऐसा जो द्विवचन सो प्रगृह्य संज्ञक होता है जैसाकि- हरी एतौ

विष्णू इमौ। गंगे अमू। इत्यादि जान लेना॥ ४०॥

ईदूदचौ किल तथैव पराविहाऽस्मा
दाङ्वर्ज्य एककनिपातमयोऽच् नितान्तम्।
ओदन्त एव हि निपात उत प्रगृह्यः
संबोधनार्थितपदे किल वा प्रगृह्यः॥ ४१॥
ओकार एव तदितौ च परेऽप्यनार्षे
प्रागुक्तमत्र विषयेऽप्युञ एव वेतौ।
दीर्घानुनासिकसमोपि प्रगृह्यसंज्ञः
ऊँ त्वित्ययं भवति चोञ इहापि तद्वत्॥ ४२॥

अदस् शब्द के मकार के परे ई और ऊ प्रगृह्य संज्ञक होते हैं जैसा कि अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। आङ् को छोड कर जो एक अच् निपात सो प्रगृह्य संज्ञक है यथा-अ अपेहि इ इंद्रः। उउमेशः। ओकारांत जो निपात है वह प्रगृह्य संज्ञक है यथा अहो ईशाः। लौकिक इति शब्द पर होने से जो संबोधन निमित्तक ओकार वह शाकल्य मुनि के मत से विकल्प करके प्रगृह्य संज्ञक होगा जैसा कि विष्णो इति। विष्णविति। इति शब्द परे होने से उञ् विकल्प करके प्रगृह्य होगा जैसा कि-उ इति। विति। इति शब्द परे होने से उञ को दीर्घ अनुनासिक और प्रगृह्य संज्ञक ऊँ होता है यथा-उ इति। ऊँ इति॥ ४१। ४२॥

वो वाऽप्युञो ह्यचि परे च मयः परस्य
त्वीदूदजन्तसहिते मुनिभाग्विभक्तौ॥
स्यादै प्रगृह्यमिति पर्यवसन्नमत्र

वान्तेऽप्रगृह्यविषयाणा इहानुनासः ॥४३।

मय् प्रत्याहार से परे ञञ् को वकार विकल्प से होता है जैसाकि किमु उक्तम्। किम्वुक्तम्। सप्तमी के अर्थ में जो इकारान्त और उकारान्त शब्द हैं सो प्रगृह्य संज्ञक होते हैं यथा सोमो गौरी अधिश्रितः। मामकी तनू इति। अप्रगृह्य अण् के अंत का विकल्प से अनुनासिक होता है। यथा दधिँ। दधि। इत्यादि जान लेना ॥ ४३ ॥

श्चुः स्यात्सदैव शतवर्गनियोगपक्षे
स्तोर्वै न शात्परतवर्गपदस्य चुत्वम्॥
योगे ष्टुना किल सकारतवर्गयोश्च
ष्टुः स्यात्किलात्र मुनिभिः सततं प्रणीतः ॥ ४४

सकार और तवर्ग को शकार और चवर्ग का योग होने से स, को शकार और तवर्ग को चवर्ग होता है। जैसाकि हरिस् शेते हरिश्शेते। सत् चित्। सच्चित्। शकार से परे तवर्ग को चवर्ग नहीं होता है। यथा-विश्नः। प्रश्नः। सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग का योग होने से षकार और टवर्ग होता है। जैसा कि रामस् षष्ठः रामष्षष्ठः। तत् टीकते। तट्टीकते। इत्यादि जान लेना ॥ ४४ ॥

टोर्वै पदान्तविषयाच्च परस्य न स्यात्
ष्टुःस्तोरनाम्विषयकस्य मुनिप्रयुक्तः।
तोश्चेत् षकारपर एव तथैव रीत्या
चान्ते झलां जश इति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥४५।

पदान्त टवर्ग से परे नाम् रहित सकार तवर्ग को षकार टवर्ग नहीं होता है। जैसा कि षट्सन्तः। षट्ते। तवर्ग के षकार परे होने से षकार टवर्ग नहीं होता है। जैसा कि सन्षष्ठः। पद के अंत में झल् प्रत्याहार के जो वर्ण उन के स्थानमें जश् आदेश होने का शास्त्र कहते हैं। यथा-वाक्ईशः। वागीशः। इत्यादि जान लेना ॥ ४९ ॥

वा स्यात्पदान्तविषयस्ययरश्च तस्मिन्
ज्ञेयोऽनुनासिक इहापि तवर्गजस्य ॥
स्याल्ले परे परसवर्ण उदः परे वै
स्थास्तम्भुधातुजपदे तु सवर्णपूर्वः ॥ ४६॥

यर् प्रत्याहार पदान्त को अनुनासिक परे होने से विकल्प से अनुनासिक होताहै। जैसा कि एतन्मुरारिः। एतद्मुरारिः ॥ तवर्ग को लकार परे होने से परसवर्ण होता है। जैसाकि-तत् लयः तल्लयः। विद्वान् लिखति विद्वाँल्लिखति। उद् उपसर्ग से परे जो स्था और स्तम्भु धातु उन को पूर्वसवर्ण होय। जैसा कि-उद् स्थानम्। यहां स्था के सकार को पूर्वसवर्ण करके थकार हुआ क्योंकि सकार के विवार श्वास अघोष (४२) महाप्राण (४९) प्रयत्न हैं तो विवार श्वास अघोष महाप्राण प्रयत्नवान् थकार आदेश हुआ, तब उद्थ् थानम् ऐसा हुआ ॥ ४६ ॥

हस्यापि वा भवति तत्र झयः परस्य
पूर्वः सवर्ण इति शस्य तथा भवेच्छः
तद्वत्पदान्तझय एव विकल्पतोऽटि

नित्यं सदा खरि परेऽपि झलां चरः स्युः ॥४७॥

झय् प्रत्याहार से परे हकार को पूर्वसवर्ण विकल्प से होता है। जैसाकि-वाक् हरिः। यहां पूर्वसवर्ण करके हकार को घकार हुआ क्योंकि हकार के संवार, नाद, घोष (४३) और महाप्राण [४५] प्रयत्न हैं इस लिये संवार नाद, घोष, महाप्राण प्रयत्नवान् घकार होने से वाग्घरिः हुआ। पदान्त झय् प्रत्याहार से परे जो शकार उसको छकार आदेश विकल्प से होता है अट् प्रत्याहार परे होने से। खर् प्रत्याहार परे होने से झल् प्रत्याहार को चर् होता है। जैसा कि तद्शिवः। तच्शिवः। तच्छिवः॥ ४७॥

मान्तस्य यद्धलि परेऽपि पदस्य मध्ये
ऽनुस्वार एव तदलोऽन्त्यस्तेन तत्र।
ज्ञेयोऽपदान्तयुतयोर्नमयोर्झलीहा
नुस्वार एव ययि तस्य परः सवर्णः ॥४८॥

हल् प्रत्याहार परे होने से मकारान्त पद के मकार के स्थान में अनुस्वार आदेश होता है। अलोन्तस्य इस करके षष्ठीनिर्दिष्ट आदेश अंत को होता है, जैसा कि हरिम् वन्दे। हरिंवन्दे। झल् परे होने से अपदान्त नकार और मकार के स्थान में अनुस्वार आदेश होता है। जैसा कि यशान् सि। यशांसि। यय् प्रत्याहार परे होने से अनुस्वार को परसवर्ण होता है। जैसा कि शां-तः। शान्तः। अं-कितः अङ्कितः। अं-चितः। अञ्चितः। कुं-ठितः। कुण्ठितः। गुं-फितः। गुम्फितः इत्यादि जान लेना ४८

स्याद्वा पदान्तविषयस्य परे यरीहा
नुस्वारकस्य परसंज्ञसवर्ण एव ।
चेद्वै क्विबन्तयुतराजतिधातुपद्ये
सम्मस्य मो भवति चाथ विकल्पतोऽपि ४९
हे वा भवेच्च मपरे किल मस्य मस्तु
नादौ हकार इति मस्य न एव वा स्यात् ।
ङ्णोः कुक्टुकौ शरि च डात्परसस्य धुड्वा
चच्छे परे किल पदान्तजनस्य तुग्वा ।५०

पदान्त अनुस्वार को यर् प्रत्याहार परे होने से पर सवर्ण विकल्प से होता है। जैसा कि-त्वं करोषि । त्वङ्करोषि । संवत्सरः । सँव्वत्सरः । क्विप्प्रत्ययान्त राजति धातु परे होने से सम् के मकार को मकार ही होता है। जैसा कि सम्-राट् । सम्राट् । जिस मकार के परे हकार हो ऐसा हकार परे रहने से विकल्प करके मकार को मकार ही होता है. जैसा कि किम्-ह्मलयति । किम्ह्मलयति। वार्त्तिक कहता है कि जिस हकार से परे य,व, ल हो ऐसा हकार परे होने से म के स्थान में क्रम से य-व-ल आदेश होता है यथा किम्-ह्यः। कियँह्यः। किंह्यः । किम्-ह्वलयति । किव्ँह्वलयति । किम्ह्लादयति। किलँह्लादयति । नकार जिससे परे हो ऐसा हकार परे होने से मकार के स्थान में विकल्प करके नकार आदेश होगा। यथा किम्-ह्नुते। किन्ह्नुते। शर् प्रत्याहार परे होने से ङ और ण को क्रमसे विकल्प करके कुक् और टुक् आगम होता है । जैसा कि प्राङ् षष्ठः । प्राङ्क्षष्ठः। सुगण्षष्ठः । सुगण्ट्षष्ठः । डकार से परे जो सकार

तिसको धुट् का आगम विकल्प से होता है॥ यथा षट्-सन्तः॥ सट्त्सन्तः। सकार परे होने से पदान्त नकार को विकल्प करके तुक् का आगम होगा. जैसा कि सन्-शम्भुः। सन्त्शम्भुः। सञ्छम्भुः सञ्च्छम्भुः। सञ्-शम्भुः। सञ्च्शम्भुः॥ ४९। ५०।

ह्रस्वात्परो ङमिति तत्र पदान्तपद्यं
तस्मात्परस्य तदचस्सततं ङमुड्वै।
स्याद्रुस्समस्सुटि च वाऽप्यनुनासिको रोः
पूर्वस्य रोर्यदि च पूर्वत एव तत्रा-
नुस्वारकागमकृतेऽप्यनुनासिकाच्च
सः स्यात्परे खरि तथैव विसर्जनीयः।
खय्यम्परे पुमिति शब्दविधौ च रुस्यात्
छव्यम्परे भवति नान्तपदस्य रुर्वै ॥५१॥ ५२॥

ह्रस्व से परे जो ङम् प्रत्याहार तदन्त जो पद तिस से परे जो अच् प्रत्याहार उसको क्रमसे ङुट्, णुट्, और नुट् आगम होते हैं। यथा प्रत्यङ्-आत्मा। प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्-ईशः। सुगण्णीशः सन्-अच्युतः। सन्नच्युतः। सम् शब्द के मकार के स्थान में रु आदेश होता है सुट् परे होने से। यथा सम्-स्कर्ता। सरुस्कर्ता। रु के प्रकरण में रु के पूर्व जो स्वर उसको विकल्प करके अनुनासिक होता है। यथा सरु-स्कर्ता। सँरुस्कर्ता। जिस पक्ष में अनुनासिक होता है उस से भिन्न पक्ष में रु से पूर्व जो स्वर उस से पर अनुस्वार का आगम होता है। यथा-सरु-स्कर्ता। संरुस्कर्ता। खर् प्रत्याहार परे

होने से विसर्ग के स्थान में स् आदेश होता है। यथा विष्णुः त्राता विष्णुस्त्राता। अम् है परे जिसके ऐसा खय् परे होने से पुम् शब्द को रु होता है॥ यथा-पुम् कोकिलः। पुँस्कोकिलः। पुंस्कोकिलः। अम् है परे जिसके ऐसा छव् प्रत्याहार परे होने से नकारान्त पद को रु होता है प्रशान् शब्द को छोड़कर। यथा चक्रिन्-त्रायस्व। चक्रिँस्त्रायस्व॥ ५१। ५२॥

नॄन्वा परेऽपि किल पद्यविधौ तु रुर्वं
कुप्वोः परे रसनमूलसुपध्मसंज्ञम्।
द्वौ वै क्रमाद्भवत इत्यपि चाद्विसर्ग
आम्रेडिते हरिह नस्य तथैव कानः।५३।

पकार परे होने से नॄन् शब्द के नकार के स्थान में विकल्प से रु होता है। यथा-नॄन् पाहि। नॄ रु पाहि। कवर्ग या पवर्ग परे होने से विसर्ग को क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश होते हैं और पक्ष में विसर्ग भी होता है। जैसा कि नॄँ ⌓ पाहि। नॄं ⌓ पाहि। वा। नॄँः पाहि। नॄंः पाहि जब रु नहीं हुआ तब नॄन्पाहि। कान् शब्द के नकार को रु होता है आम्रेडित परे होने से। जैसा कि कान् कान्। का रु कान्। काँस्कान्। कांस्कान्। इत्यादि जान लेना॥ ५३॥

षस्त्वेऽथ्विशुत्तरविसर्ग ऋते तु सः स्यात्
ह्रस्वस्य तुग्भवति चापि परे यदा छे
चेत्संहितामयपदे च तुगाङ्माङो
श्छे वै परे भवति तुक् च तथैव दीर्घात् ५४

कस्कादि गण में इण् प्रत्याहार से परे जो विसर्ग तिसको षकार आदेश हो। इस से भिन्न स्थलमें सकार आदेश होता है। यथा धनुः-कपालम्। धनुष्कपालम्। ह्रस्व के छकार परे होवे तो तुक् का आगम होता है संहिता के विषै। यथा। स्व-छाया। स्वच्छाया। शिव-छाया। शिवच्छाया। आङ् और माङ् से परे जो छकार तिसको तुक् आगम होता है। जैसा कि आ-छादयति। आच्छादयति। मा-छिदत्। माच्छिदत्। दीर्घ से परे छकार होने से तुक् होता है। यथा सेनासुरा-छाया। सेनासुराच्छाया॥ ५४॥

दीर्घात्पदान्तविषयाच्च तुगेव वा छे
सः स्यात्सदैव च पदेपि विसर्जनीयः।
यच्छर्परे खरि च तस्य विसर्जनीय
स्तद्वद्विकल्पत इहैव परे शरीति॥ ५५॥

दीर्घ पदान्त से परे जो छकार उसको तुक् विकल्प से होता है यथा लक्ष्मीच्छाया। लक्ष्मीछाया॥ खर् परे होने से विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होता है शर् है परे जिसके ऐसा खर् परे हो तो विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही होय। यथा कः त्सरुः। घनाघनः क्षोभणः। शर् परे होने से विसर्ग को विसर्ग विकल्प से होता है। यथा हरिः शेते हरिश्शेते॥ ५६॥

वा खर्परे शरि च लोपमयो विसर्गः
कुप्वोः पदेतरजुषोः परयोश्च सः स्यात्॥
यत्पाशकल्पयुतकाम्यपदोष्वितीह

वाच्यं तदेव मुनिवार्त्तिकतो नितान्तम् ॥५६॥

स्वर् है परे जिसके ऐसा शर् परे होने से विसर्ग का विकल्प से लोप होता है। यथा। रामस्थाता। रामःस्थाता। अपदादि कवर्ग वा पवर्ग परे होने से विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होता है परंतु वृत्तिकार कहता है कि पास, कल्प और काम्य इन्हीके अपदादि कवर्ग और पवर्ग मिलते हैं। यथा पयः पाशम्। पयस्पाशम्। यशः कल्पम् यशस्कल्पम्। यशःकम्। यशस्कम्। यशः काम्यति। यशस्काम्यति॥ ५६॥

षः स्याच्च पूर्वविषये तदिणः परस्य
सस्स्यात्तयोश्च परयोर्गतिसंज्ञयोर्वै॥
अप्रत्ययस्य ष इतीह च यूपधस्य
संधौ सदेति मुनयः प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥५७॥

पदभिन्न कवर्ग वा पवर्ग परे होने से इण् प्रत्याहार से परे जो विसर्ग तिस के स्थान में षकार आदेश होता है सर्पिः-पाशम्। सर्पिष्पाशम् इत्यादि। कवर्ग और पवर्ग परे होने से गति संज्ञक जो नमस् और पुरस् इन दोनों के विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होता है। यथानमः-करोति। नमस्करोति। पुरः-करोति। पुरस्करोति। कवर्ग और पवर्ग है परे जिसके, इकार वा उकार है उपधा में जिसके ऐसा जो प्रत्यय भिन्न विसर्ग तिसके स्थान में षकार आदेश होता है। जैसाकि, निः- पीतम्॥ निष्पीतम्। दुः-कृतम् दुष्कृतम्। इस तरह संधि विषय में व्याकरणज्ञ मुनि कहते हैं॥ ५७॥

कुप्वोस्तथा तिरस एव भवेच्च सो वा

कृत्वोर्थ एति द्वित्रि वा ष इहापि कुप्वोः ॥
षो वा तयोस्तदिसुसोश्च परेपि कुप्वो
र्नित्यं समासविषये ष इतीसुसोः स्यात्॥ ५८ ॥

कवर्ग और पवर्ग परे होने से तिरस् शब्द का जो विसर्ग तिसके स्थान में सकार आदेश विकल्प करके होताहै। यथा- तिरस्कर्त्ता तिरःकर्त्ता। कृत्वोर्थ में वर्त्तमान द्वि, त्रि वा चतुर् का जो विसर्ग तिसके स्थान में षकार आदेश विकल्प से होता है कवर्ग और पवर्ग परे होने से। यथा द्विः करोति द्विष्करोति इत्यादि। सामर्थ्य में वर्त्तमान जो इस् और उस् तिनके विसर्ग के स्थान में षकार आदेश विकल्प से होता है कवर्ग पवर्ग परे रहने से। यथा सर्पिःकरोति सर्पिष्करोति वा सर्पिःकरोति। उत्तर पद में स्थित नहीं ऐसा जो इस् और उस् का विसर्ग तिसके स्थान में नित्य ही षकार आदेश होता है समास विषय कवर्ग और पवर्ग परे होने से। यथा सर्पिः कुण्डिका सर्पिष्कुण्डिका इत्यादिक जान लेना॥५९॥

आदुत्तरस्थपदजस्य विसर्गकस्य
कुप्वोस्समासविषये तदनव्ययस्य ॥
नित्यं स एव च करोति मुखे परेऽत्र
सादेश एव पदशब्दपरे तथैव ॥ ५९ ॥
तस्यैतयोः परगतस्य विसर्गकस्य
संजायते च तदधःशिरसोस्तु नित्यम् ॥
रुस्स्यात्तथा सस्सजुषोः पदयोः पदान्ते
स्यादप्लुतादत इतः परतस्तु रोरुः ॥६०॥

अकार से परे जो अव्यय रहित विसर्ग तिसके स्थान में नित्य ही सकार आदेश होता है करोति पद से आदि लेकर ७ पद परे होने से । यथा अयः-कारः । अयस्कारः । अयस्कामः अयस्कंसः । अयस्कुंभः । अयस्पात्रम् । अयस्कुशाः । अयस्कर्णी । पद शब्द परे होने से अधस् और शिरस् शब्द के विसर्ग के स्थान में सकार आदेश नित्य हो समास के विषय में । यथा अधः-पदम् । अधस्पदम् । शिरः-पदम् । शिरस्पदम् । पदान्त सकार को और सजुष् शब्द के षकार को रु आदेश होता है । और अप्लुत अकार से परे जो रु तिसके स्थान में उकार आदेश होता है अप्लुत अकार परे होने से । यथा शिवस् अर्च्यः । शिवरुअर्च्यः । शिवउअर्च्यः शिवोअर्च्यः शिवोऽर्च्यः ॥ ६० ॥

चाको द्वयोरचि च पूर्वसवर्णदीर्घो
ऽवर्णादचीह न हि पूर्वसवर्णदीर्घः ॥
ह्रस्वप्लुतादत इतीह परस्य रोरु
रोरित्युकारविधिनेह कृतो निषेधः ॥६१॥

प्रथमा द्वितीया के अक् से अच् परे होने से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होता है इसकी प्राप्ति होने से अवर्ण से अच् परे होने से पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है इस से एङःपदान्तादति करके शिवोऽर्च्यः होता है । अप्लुत अकार से परे जो रु उसको रु ही होता है हश् प्रत्याहार परे होने से । यथा शिवो वंद्यः । रु के उकारानुबंध ग्रहण से यहां नहीं होता है यथा प्रातः-अत्र । प्रातरत्र । धातर्गच्छ । इत्यादि जानलेना ॥ ६१ ॥

भोऽघोभगोसादितिपूर्वकरोश्च नित्यं

यादेश एव च किलाशिपरेऽप्यथो वै ॥
वा स्तो वयावशिपरे वययोः पदान्ते
तौ वै लघूदितवयौ मुनिमानमान्यौ ॥ ६२ ॥

जिस रु से पूर्व भो, भगो, अघो, वा अवर्ण होवे तिसके स्थान में यकार आदेश होता है अश् प्रत्याहार परे होने से। यथा देवास्-इह। देवारुइह। देवाय्-इह। देवा इह। देवायिह। पदान्त यकार और वकार को लघु उच्चारण यकार और वकार आदेश विकल्प से होता है। जिसके उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग, उपाग्र, मध्य और मूल शिथिल होवें उसे लघु उच्चारण बोलते हैं। यथा भोय्-अच्युत। भोयच्युत ॥ ६२ ॥

ओकारतः परपदान्तयकारकस्या
ऽलघ्वर्थजस्य नितरां भवतीह लोपः ॥
चावर्णपूर्वयवयोरुञि लोप एव
चेद्वै पदान्तगतयोरथ यस्य लोपः ॥ ६३ ॥
भोऽघोभगोसदितिलघ्वलघूदितस्य
पूर्वस्य चैव हलि नात्र सुपीतिरेफः ॥
अह्नस्सदैव रपरस्य तु रस्य लोपो
द्रेफात्मकेऽण इति पूर्वभवस्य दीर्घः ।६४।

ओकार से परे जो पदान्त अलघु प्रयत्नवान् यकार तिसका नित्य ही लोप होता है गार्ग्य ग्रहण पूजार्थ है। यथा भोय्-अच्युत। भो अच्युत। अवर्ण के आगे पदान्त में वर्त्तमान जो यकार और वकार तिनका लोप होता है उञ् प्रत्याहार परे होने से। यथा सय्-उ एकाग्निः

सउएकाग्निः । सर्व आचार्यों के मत के विषै जिस य कार से पूर्व भो भगो अघो वा अवर्ण रहे तो उस यकार का लोप होता है हल् प्रत्याहार परे होने से। यथा भोय्-देवाः भोदेवाः । भगोस्-नमस्ते भगोरुनमस्ते । भगोय्नमस्ते । भगोनमस्ते । अघोस्-याहि । अघोरुयाहि अघोय्-याहि । अघोयाहि । देवास्-नमस्याः । देवारु-नमस्याः । देवाय्-नमस्याः। देवा नमस्याः । अहन् शब्द के नकार को रेफ आदेश होता है सुप् परे होने से नहीं होता है । यथा अहन्-अहन् । अहरहः । अहन्-गणः । अहर्गणः । रेफ परे होने से रेफ का लोप होता है । यथा पुनर्-रमते । पुन-रमते । लोपनिमित्तक ढकार-वा-रेफ पर होवे तो पूर्व अण को दीर्घ होता है । यथा पुन-रमते पुनारमते । हरिस्-रायः । हरिर्-रायः । हरि-रायः । हरी रायः ॥ ६३ । ६४ ॥

कार्यं परं समवलस्य विरोधकाले
प्राप्ते च लोपविषये तदसिद्धमत्र ।
पूर्वत्रसूत्रविधिना किल रोरिसूत्र
मुत्वे कृते सफल एव मनोरथश्च ॥ ६५ ॥

तुल्यबल सूत्रों के विरोध के विषै अष्टाध्यायी के क्रमानुसार जो परे हो सो कार्य करता है जैसा कि मनस्-रथः और मनर्-रथः। यहां हशिच और रोरि इन दोनों सूत्रों से उत्व और लोप की प्राप्ति होने से तुल्यवलविरोध में पर कार्य करता है इस से लोप पाया क्योंकि हशिच षष्ठ अध्याय का सूत्र है और रोरि अष्टम अध्याय का है इस वास्ते यह पर है परन्तु पूर्वत्रासिद्ध इससे रोरि करके लोप विधि असिद्ध है

लोप करते समय (ससजुषोरुः) से जो रु किया हुआ है वह असिद्ध होगा तब रेफ मिटकर सकार प्राप्त होगा इस कारण से लोप का निषेध होकर (हशि च) इस करके उकार आदेश होकर मनउ-रथः मनोरथः। अर्थात् मनोरथ सफल भया ॥ ६५ ॥

एतत्तदोस्तदकयोर्न तु नञ्समासे
सोर्लोप एव हलि सस्य च सस्तथैव ।
चेत्पादपूरणमचीति कृते तदा स्या
दित्येव सन्धिविषयो मुनिना प्रणीतः ॥६६॥

ककार भिन्न जो एतद् शब्द और तद् शब्द उनके सु का लोप होता है हल् प्रत्याहार परे होने से परन्तु नञ् समास में नहीं होता है। यथा एषस्-विष्णुः। एषविष्णुः। सस्-शंभुः। सशंभुः। यदि श्लोक वा मंत्र का पाद अर्थात् चतुर्थांश बिगड़ता हुआ उससे ठीक होसके तो तद् शब्द का जो सः है उसके सु का लोप होता है अच् प्रत्याहार परे होने से। यथा। सस्-इमामविड्ढि प्रभृतिम्। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सस्- एषदाशरथीरामः। सैषदाशरथीरामः। इस प्रकार से मुनि प्रणीत संधि विषय इतना ही है ॥६६॥

अथ परिभाषाप्रकरणम्

षष्ठ्यन्तमत्र गुणवृद्धिविधाविकः स्यात्
र्हस्वादिभिश्च कथितो भवतीह तद्वत् ॥
आद्यन्तकौ क्रमत इत्यपि टित्कितौ चे
दन्त्याचूपरो मिदिति वै वदतीह लोकः ॥ ६७ ॥

गुण वृद्धि शब्दों करके जहां पर गुण और वृद्धि का विधान किया जाता है उस जगह पर इकः ऐसा पद ष

ष्ठी विभक्ति का होगा। ह्रस्व दीर्घ प्लुत शब्दों करके जहां पर अच् का विधान किया जाता है वहां पर अचः यह षष्ठ्यन्तपद उपस्थित होता है। जिसके टित् और कित् कहते हैं क्रमसे उसके पूर्वके आदि और अंत में अर्थात् टित् आदिमें और कित् अंतमें होते हैं। मित् अन्त्य अच् से परे होता है ॥ ६७ ॥

षष्ठी प्रसङ्गसमये प्रभवेत्प्रयुक्ता
स्याद्धै प्रसङ्ग इति तुल्यतमस्सदैव ॥
आदेश एव तदनेकविधं बलीय
श्चान्तर्यमत्र किल गेहत इत्यपीदम् ॥६८ ॥

अनिर्धारित संबन्धविशेषा षष्ठी विभक्ति प्रसंग में प्रयुक्त की जाती है। प्रसंग होने से अतिशय करके तुल्य आदेश होगा और जहां पर अनेक प्रकार का आन्तर्य होता है वहां स्थान से आन्तर्य बलवान् होता है ॥ ६८ ॥

स्यात् सप्तमीविधिवशेन विधीयमानं
वर्णान्तरेण वियुतस्य च पूर्वकस्य ॥
तत्पञ्चमीविधिमतेन कृते तु कार्ये
वर्णान्तरेण वियुतस्य परस्य बोध्यम् ॥६९॥

सप्तमी विभक्ति के निर्देश करके विधान किया जो कार्य, वह दूसरे वर्ण से रहित पूर्व को होता है। पंचमी विभक्ति के निर्देश करके विधान किया हुआ कार्य, वह दूसरे वर्ण से रहित पर को होगा ॥ ६९ ॥

षष्ठ्योदितश्च विहितोऽन्त्यवतोऽल एव

चादेश इत्यपि भवेदिह वै नितान्तम् ॥
ङिच्चेति तद्वदिह सर्वपदाऽपवादो
प्यादेः परस्य तदलोन्त्यमतेतरः स्यात्॥७०॥

षष्ठयन्त शब्द के निर्देश से जो कार्य विधान कियाजाय वह अन्त्य अल् के स्थान में होता है। ङित् आदेश अन्त्य अल् के स्थान में होवे। यह सर्वादेश का अपवाद है। पर को जो कार्य होता है वह उसके आदि को होता है यह अलोन्त्यस्य इसका अपवाद है ॥ ७० ॥

सर्वस्य शिद्भवति शब्दविधावनेकाल्
तत्राऽप्यलोन्त्यजमतस्य सदाऽपवादः।
शास्त्रेऽप्यधिकृतमिति स्वरितत्वमुक्तं
स्यादुत्तरोत्तरमिहैव बलीय एतत् ॥ ७१ ॥

जो अनेकाल् और शित् आदेश है वह संपूर्ण के स्थान में होता है यह भी अलोन्त्यस्य इसका अपवाद है। इस शास्त्र में स्वरितत्व करके युक्त जो शब्द स्वरूप है वह अधिकार रूप होता हैं। पर, नित्य, अन्तरंग, अपवाद इन के मध्य में उत्तरोत्तर बलवान् होता है ॥ ७२ ॥

स्यादन्तरङ्ग इति वै बहिरङ्गमस्मिन्
कार्येऽप्यसिद्धमिह तत् क्रियमाणमेव ॥
इत्थं सदैव परिभाषितयुक्तियोगात्
शब्दक्रियाकुशलतां शिशवः प्रयान्ति ॥ ७२ ॥

अन्तरङ्ग कार्य क्रियमाण होने से बहिरंग कार्य असिद्ध होता है। इसी प्रकार सर्वदा परिभाषाओं के नियम योग से विद्यार्थी बालक शब्दों की सिद्धि के कृत्य की कुशलता को प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥

अप्रत्ययोर्थवदधातुरिति प्रयोगे
ज्ञेयं च प्रातिपदिकं मुनिना प्रणीतम् ॥
शब्दस्वरूपमिह शास्त्रविधौ विधेयं
कृत्तद्धितान्तजसमासमयास्तु तद्वत् ॥७३॥

धातु, प्रत्यय और प्रत्ययांत करके वर्जित अर्थवत् शब्द स्वरूप प्रातिपदिक संज्ञक होता है। यह पाणिनि मुनि के कहे हुए व्याकरण शास्त्र की विधि में विधान होता है। कृदन्त, तद्धितान्त और समास प्रातिपदिक संज्ञक होते हैं ॥ ७३ ॥

चेत्प्रत्ययस्तु किल नैव तदन्तसंज्ञ
स्तंत्रादिनोभयमिहेति विवक्षितं स्यात् ॥
कृत्तद्धितेतिकथने च तदाऽन्ततेति
व्यर्था भवेदुदितमत्र मनोरमायाम् ॥७४॥

प्रत्यय और प्रत्ययान्त ये दो शब्द यदि तंत्रादि से नहीं लिखते तो कृत्तद्धितसमासाश्च इसके अर्थ में भी तद्धितान्त यह अर्थ झूठा हो जाता, इसलिये तंत्रादि से निर्वाह करके सत्य रक्खा है. यह परिहार प्रौढमनोरमा में भट्टोजी दीक्षित ने लिखा है ॥

ख्याता विभक्तय इमा मुनिसंख्यकास्ता
एकद्विभूरिवचनान्युदितानि तेषु ॥
ङ्यन्ताच्च प्रातिपदिकान्महिलाऽऽप एवं
स्वाद्याः परे क्रमत इत्यपि प्रत्ययाः स्युः ॥७५॥

सु-औ-जस्। यह प्रथमा विभक्ति है। अम्-औ-शस्। यह द्वितीया विभक्ति है। टा-भ्याम्-भिस्। यह तृती-

या है। ङे-भ्याम्-भ्यस्। यह चतुर्थी है। ङसि-भ्याम् भ्यस्। यह पंचमी है। ङस्-ओस्-आम्। यह षष्ठी है। और ङि-ओस्-सुप्। यह सप्तमी विभक्ति है। प्रत्येक विभक्ति के एकवचन, द्विवचन, बहुवचन होते हैं। ङ्यंत और आबन्त प्रातिपदिक से परे सु आदिक प्रत्यय अनुक्रम से आते हैं॥ ७५॥

यद्द्व्येकयोर्द्विवचनैकसुभाषिते च
ख्यातं बहुष्विति बहूदितमत्र विज्ञैः॥
एकस्तु शेष इह चैकविभक्तिपद्ये
नित्यं सरूपविषये प्रविचिन्तनीयः॥ ७६॥

द्वित्व और एकत्व की विवक्षा होने से द्विवचन और एक वचन होते हैं। बहुत्व की कांक्षा में बहुवचन होता है एक विभक्ति में जो सरूप अर्थात् तुल्यरूप प्रतीत होवें उन में से एक ही शेष रहता है इसी प्रकार सरूप विषय में यही विचार नित्य समझ लेना॥ ७६॥

एवं सरूपवति पूर्वसवर्णसंज्ञे
तत्रादिचोह नहि पूर्वसवर्णदीर्घः॥
चुट्वत्र प्रत्ययमुखौ सततं त्वितौ वै
ज्ञेयौ तथा सुप्तिङौ तु विभक्तिसंज्ञौ॥ ७७॥

अक् से प्रथमा द्वितीया सम्बन्धी अच् परे होने से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होवे। यहां इस सूत्र की प्राप्ति होने पर यह परिहार हुआ कि अवर्ण से इच् परे होतो पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होगा। प्रत्यय की आदि के चवर्ग और टवर्ग इत् संज्ञक होते हैं। सुबन्त और तिङन्त पद संज्ञक होते हैं॥ ७७॥

नेतो विभक्तिजतवर्गसमा नितान्तं
संबोधने भवति तत्प्रथमैकवाक्यम् ॥
सम्बुद्धिसंज्ञकमिदं कथितं च विज्ञैः
शब्दानुशासनविधौ मुनिभिर्मनोज्ञैः॥ ७८ ॥

विभक्ति में स्थित जो तवर्ग सकार और मकार वेइत् संज्ञक नहीं होते हैं. इस प्रकार से इत् संज्ञा न होने से राम राम राम जस् ऐसी स्थिति में एकशेष रह के पीछे सवर्ण दीर्घ रुत्व और विसर्ग होने से रामाः यह रूप सिद्ध हुआ। संबोधन में प्रथमा का एक वचन संबुद्धि संज्ञक होता है। यह शब्दानुशासन शास्त्र में विद्वान् मुनियों ने कहा है ॥ ७८ ॥

यस्मात्तु प्रत्ययविधिर्हि तदादिपद्ये
शब्दस्वरूप इति तस्य किलाङ्गसंज्ञा ॥
एङ्ह्रस्वशब्दपरहल् खलु लोपमेति
सम्बोधनस्य यदि चेत्प्रथमाविभक्तेः॥ ७९ ।

जिस से जो प्रत्यय किया जाता है वह प्रत्यय है आदि में जिसके ऐसा जो शब्द स्वरूप उस की अंग संज्ञा होती है. एङन्त और ह्रस्वांत अंग से परे हल् लोप को प्राप्त होता है परन्तु वह हल् यदि सम्बुद्धि का अर्थात् प्रथमा का एक वचन हो तो ॥ ७९ ॥

चाकोम्यचीति भवतीह च पूर्वरूपं
रामं तथैव किल देवमिति क्रमेण ॥
ये तद्धितादियुतबोधकप्रत्ययाद्या
श्चेत्संज्ञका लशकवर्गमयाः सदैव॥ ८० ॥

अक् प्रत्याहार से अम् और अच् परे होने से पूर्व रूप एकादेश होता है. जैसे राम अम् ऐसी अवस्था में पूर्वरूप होने से रामम् यह रूप हुआ। इसी तरह देव-अम् देवम् यह सिद्ध हुआ। तद्धित वर्जित प्रत्यय के आदि के कवर्ग, ल और श ये सदैव इत्संज्ञक होते हैं।८०।

नः सस्य वै भवति पूर्वसवर्णदीर्घात्
नित्यं परस्य खलु पुंसि शसस्तथैव।
कुप्वाङ्नुमट्विमिलितैर्मिलितैश्च तत्र
चान्तर्हितेऽपि यदि तत्र भवेद्रषाभ्याम्॥ ८१ ॥
ताभ्यां परस्य किल नस्य समानपद्ये
णास्स्यादनेन तु पदान्तविधौ हि नो णः॥
चादन्तशब्दत इनादय एव तेषा
शश्वद्भवन्ति किल पुंसि च टादिकानाम्॥८२।

पुल्लिंग में पूर्वसवर्ण दीर्घ से परे जो शस् का सकार उस को नकार आदेश होवे। तब न होने से, अट् कवर्ग पवर्ग आङ् और नुम् ये सब पृथक् २ अथवा जैसा संभव हो उसके अनुसार मिलित होवें तथा इन कर के व्यवधान होने से भी रेफ और षकार से परे नकार को णकार होता है. समान पद में इस व्यवस्था में न को ण होना चाहिये, परंतु पदान्त नकार को णकार नहीं होवे. इस से रामान् यह रूप सिद्ध हुआ। पुल्लिंग में अदंत शब्द से परे जो टा, ङसि, और ङस् इन को इन, आत् और स्य ये आदेश होते हैं जैसा कि राम-टा ऐसी स्थिति में टा को इन हुआ पीछे अट्कुप्वाङ् इस करके इन के नकार को णकार होने से रामेण यह

रूप सिद्ध हुआ ॥ ८१—८२ ॥

सुप्प्रत्यये यञि परे भवतीह दीर्घ
इ त्राऽतोभिसास्त्विति किलैसिह शब्दशास्त्रे ॥
अङ्गादतः पर इतार्ह च ङेर्य्यकारो:
यः स्थान्यलाश्रयविधौ न तु सोपि तत्र ॥८३॥
आदेश एव निजवद्विहितो बुधैर्य
स्तस्माच्च दीर्घ इह चेत् सुपिचेत्यनेन ॥
विद्याज्झलादिबहुवाक्यपरे सुपीति
चाऽदन्तशब्दत इहैत्वमितीहशास्त्रे ॥ ८४ ॥

यञ् है आदि में जिसके ऐसा सुप् परे होनेसे अदंत अंगको दीर्घ होता है। जैसा कि राम-भ्याम् ऐसी स्थिति में अ को आ होने से रामाभ्याम् यह रूप होता है। अकार से परे भिस् को ऐस् होवे। अनेकाल् और शित् सर्व को होता है। जैसा कि राम-भिस् यहां भिस् को संपूर्ण ऐस् हुआ फिर वृद्धिरेचि से वृद्धि होकर ससजुषोरुः इस से रु हुआ फिर विसर्ग होने से रामैः यह रूप हुआ। आदेश स्थानी के सदृश होता है और स्थानी की अलाश्रय विधि में नहीं होता है। इस करके स्थानिवत् हुआ जैसा कि राम-ङे ऐसी अवस्था में ङे को य हुआ पीछे स्थानिवद्भाव मानने से सुपिच इस से दीर्घ हुआ तो रामाय यह रूप हुआ। झल् है आदि में जिसके ऐसा बहुवचन सुप् परे होनेसे अदन्त अंग को एकार होता है। जैसाकि, रामभ्यस् इसमें राम के अकार को एकार हुआ तो रामेभ्यस् ऐसी अवस्था में सकार को रु होकर विसर्ग होने से, रामेभ्यः यह रूपसिद्ध हुआ।८३-८४।

वा स्याच्चरः किल झलां यदि चावसाने
ओस्ये भवेदत इतीह तथैव रीत्या ॥
ह्रस्वापूनदीयुतपदाद्धि परस्य चामो
नुट् स्यादजन्तविषयस्य तु दीर्घ एव॥ ८५ ॥

अवसान में विकल्प से झलों को चर् होवे। जैसाकि राम-ङस् इसमें पूर्वसूत्र से आत् होकर पीछे विकल्प से चर् होने से रामात् रामाद् ये दो रूप हुए। रामाभ्याम्। रामेभ्यः। अब रामङस् इसमें ङस् को स्य आदेश होकर रामस्य ऐसा हुआ। अदन्त अंग को एकार हो ओस् परे होने से यथा राम ओस् इसमें एकार होकर एचोय वायावः इससे अय् होकर रु और विसर्ग होने से रामयोः हुआ। ह्रस्वान्त नद्यन्त और आबन्त अंग से परे आम् को नुट् का आगम हो। और नाम् परे होने से अजंत पुल्लिंग के दीर्घ होय जैसाकि रामाणाम् ॥ ८५ ॥

आदेशप्रत्ययकृत स्य तु सस्य षत्वं
सर्वादयः खलु भवन्ति च सर्वसंज्ञाः ॥
चादन्तसर्वत इतीह भवेज्जसः शी
स्मै सर्वनाम्न इति ङेरत एव नित्यम् ॥८६॥

इण्प्रत्याहार और कवर्ग से परे अपदान्त आदेश के और प्रत्यय के अवयव का जो सकार उसको मूर्द्धन्य षकार होवे। ईषद्विवृत प्रयत्न सकार को उसी प्रकार का षकार होने से रामेषु यह रूप सिद्ध हुआ। सर्व, विश्व, उभ, उभय डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम,। ये सर्व से लेकर सिम, पर्यंत सर्वनाम संज्ञक होते हैं। पूर्व, पर, अवर, दाक्षिण, उत्तर,

अपर, और अधर, ये शब्द व्यवस्था में और असंज्ञा में सर्व नाम संज्ञक होते हैं। स्वशब्द अज्ञाति में और धनाख्या में सर्वनाम होता है। अन्तर शब्द बहिर्योग में और उपसंख्यान में अर्थात् परिधानीय अर्थ में सर्वनाम संज्ञक होता है। त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस् एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद् भवतु और किम् ये सब सर्वनाम संज्ञक हैं। अदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी होवे। अनेकाल् और शित् आदेश संपूर्ण को होता है तौ संपूर्ण जस् को शी होने से शकार इत्संज्ञक हुआ और आद्गुणः इस करके सर्वे ऐसा रूप हुआ। अदन्त सर्वनाम से परे ङे को स्मै होता है तब सर्व ङे ऐसी स्थिति में ङे को स्मै होगया तब सर्वस्मै यह रूप सिद्ध हुआ ॥ ८६ ॥

यौ स्मात्स्मिनौ भवत इत्थमतो ङसिङ्यो
रामीह सुड्भवति यत्किल सर्वनाम्नः ॥
पूर्वादिकेषु जासिवेत्युभयार्थयोर्वै
तद्वत्स्व एव खलु जातिधनान्यवाची ॥ ८७ ॥

अदन्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि के स्थान में स्मात् और स्मिन् होते हैं। जैसाकि सर्व ङसि, सर्वस्मात्। सर्व ङि, सर्वस्मिन्। अदन्त सर्वनाम से परे जो आम् उसको सुट् का आगम होता है। जैसाकि सर्व आम् इसमें सुट् होकर अकार को एकार हुआ पीछे सकार को षकार हुआ तौ सर्वेषाम्। पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, और अधर इन शब्दों को गण सूत्र से व्यवस्था में और असंज्ञा में प्राप्त सर्वनाम संज्ञा जस् परे होने से विकल्प से होती है. जैसे पूर्वे पक्षे पूर्वाः स्व जो पूर्वादि शब्द उनके अभिधेय की अवधि का जो नियम उसको व्यवस्था कहते

ते हैं। ज्ञाति और धन से भिन्न अर्थ वाची स्वशब्द की जस् परे होने से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है जैसा कि स्वे पक्ष में स्वाः। जहां स्वाः ऐसा रूप होता है वहां ज्ञाति और धन वाचक अर्थ जान लेना ॥ ८७॥

तद्वच्च बाह्यपरिधानभृतोन्तरस्य
पूर्वादयो नवमिताः खलु वा ङसिङ्योः ॥
जस्येव वा मुनिमिताः प्रथमादयोऽपि
वाऽजादिके पर इतीह जरस् जरायाः ।८८।

बाह्य और परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द के जस् परे होने से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है जैसा कि अन्तरे पक्ष में अन्तराः। दोनों अर्थ में जानलेना। पूर्व आदिक नव शब्दों से परे ङसि और ङि को स्मात् और स्मिन् विकल्प से होते हैं जैसाकि पूर्वस्मात् पक्ष में पूर्वात्। और जहां स्मिन् हुआ वहां पूर्वस्मिन् पक्षे पूर्वे। इसी तरह अन्य आठ शब्दों के रूप जानलेना। प्रथम, चरम, तय प्रत्ययान्त, अल्प, अर्ध, कतिपय, और नेम इन शब्दों से जस् परे होने से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसाकि प्रथमे पक्ष में प्रथमाः। तय प्रत्ययान्त द्वितये। द्वितयाः। शेष रामवत्। और नेमे नेमाः। शेष सर्ववत्। तीय प्रत्ययांत शब्द के ङित् परे होने से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसाकि द्वितीयस्मै द्वितीयाय। द्वितीयस्मात् द्वितीयात्। द्वितीयस्मिन्। द्वितीये। ये रूप हुए। अजादिक विभक्ति परे होने से जरा शब्द को विकल्प से जरस् आदेश होता है। और पद और अंग के अधिकार में भी उसको और उसके अन्त को जरस् होता है एकदेशविकृत शब्द दूसरे के समान नहीं

होता है निर्दिश्यमान कहे हुए आदेश ही होते हैं, जैसा कि निर्जर शब्द को भी अजादिक विभक्ति परे होने से निर्जरसौ। पक्ष में निर्जरौ। इसीतरह से सर्व रूप जानलेना। पक्ष में राम शब्द तुल्य रूप होते हैं ॥ अब विश्वपा शब्द कहते हैं ॥ विश्वपा सु का। विश्वपाः रूप हुआ ॥ ८८ ॥

दीर्घाज्जसीचि किल सर्वमतानि चाथ
सुट्स्वादिपंचवचनान्यनपुंसकस्य ॥
स्वादिष्वसर्वमयनामसु कप्सु पूर्वं
यादिष्वऽजादिषु च कप्सु पदं भसंज्ञम् ॥८९॥

दीर्घ से जस् और इच् परे होने से पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता॥जैसा कि विश्वपा-औ। यहां वृद्धि होने से विश्वपौ। सुट् प्रत्याहार अर्थात् स्वादिक पांच वचन सर्वनामस्थान संज्ञक होते हैं नपुंसकालिंग वर्जित शब्द के। कप् प्रत्यय की अवधि पर्यंत सर्वनामस्थान रहित स्वादिक प्रत्यय परे होने से पूर्व अक्षरसमूह पद संज्ञक होता है। य आदिक और अजादिक कप् प्रत्यय की अवधि पर्यंत सर्वनामस्थान रहित स्वादि परे होने से पूर्व की भसंज्ञा होती है ॥ ८९ ॥

संज्ञेत ऊर्ध्वमिति प्राग्विहिता कडारा
देकात एव च तदन्तभलोप आस्ते ।
स्याद्वै जसीति गुणा एव गुणो लघोर्वै
सख्येतरौ तादिदुतौ घिरिहाऽनदीजौ । ९० ।

इस से उपरान्त और कडाराःकर्मधारये इससे पूर्व एक की एक ही संज्ञा समझ लेनी जो पर और अवकाश रहित होवे वैसी संज्ञा जानलेनी। आकारान्त

धातु के अन्त के भसंज्ञक अंग का लोप होता है। जैसे विश्व पा अस्। इसका विश्वपः होता है। इसी प्रकार विश्वपा शब्द के रूप जानलेना। अब हरि शब्द कहते हैं। हरिः। हरि-औ ऐसी स्थिति में प्रथम अचों का पूर्वसवर्ण होने से हरी। हरि-जस् में ह्रस्वांत अंग को गुण होकर अय् होने से। हरयः। नदी संज्ञा विहीन ह्रस्व इदन्त उदन्त घिसज्ञक होता है॥ ९० ॥

नाऽऽङोऽस्त्रियां ङिति च घेर्ङसि ङस्मयाति
स्यादच्चघेरनङसावुपधात्वलोन्त्यात्।
नान्तस्य पंचसु च दीर्घ इहाप्यबुद्धौ
एकालपृक्त इति प्रत्यय एव योयम्। ९१ ।

घिसंज्ञक से परे आङ् को ना होता है स्त्रीलिंग में नहीं होता है। आङ् यह टा की संज्ञा समझलेना। जैसा कि हरि-टा इस को ना होने से और ण होने से हरिणा। घिसंज्ञक को ङित् सुप परे होने से गुण होता है। जैसा कि हरि-ङे इसको गुण होकर अय् होने से हरये यह रूप सिद्ध हुआ। एङ् प्रत्याहार से ङसि ङस् का अकार परे होने से पूर्वरूप एकादेश होता है। जैसा कि हरि-ङस् इस में इकार को गुण होकर पूर्वरूप एकादेश हुआ तो हरेः। हर्योः। हरीणाम्। हरिषु। ये पूर्वसूत्रोंसे सिद्ध हैं। इसी तरह कवि शब्द से आदि लेकर जानना। सखि शब्द के अंग को अनङ् आदेश होता है संबुद्धि वर्जित सु परे होने से। अन्त्य अल् से पूर्ववर्ण उपधा सञ्ज्ञक होता है। नकारान्त शब्द की उपधा को दीर्घ होता है संबुद्धि वर्जित सर्वनामस्थान परे होने से। जो एकाल् प्रत्यय हो वह अपृक्त सञ्ज्ञक होता है॥ ९१॥

ङ्यावन्तदीर्घविषयात्सुतिसीत्यपृक्तो
हल्लुप्यते च खलु प्रातिपदान्तनस्य।
चाबोधने णिदिति सर्वगृहेऽथ वृद्धिः
ख्यत्यात्परस्य किल चोर्ङित एव चातः ॥९२॥

हलंत से परे जो दीर्घ ङी और आप् तदन्त से परे सु ति सि का जो अपृक्त हल् उसका लोप होता है। प्रातिपदिक संज्ञक जो पद तदन्त नकार का लोप होता है। जैसा कि सखि-स्। ऐसी स्थिति में पूर्वसूत्रों से सखा। ऐसा शब्द सिद्ध हुआ। सखि शब्द के अंग से परे संबुद्धि वर्जित सर्वनामस्थान णित्वत् होता है। अजंत अंग को वृद्धि हो ञित् और णित् परे होने से। जैसा कि सखि-औ ऐसी स्थिति में प्रथम वृद्धि होकर फिर ऐ को आय् होने से सखायौ। सखायं। सखायौ। पूर्वसूत्रों से सखीन् होता है। यण् आदेश पूर्वक खि ति शब्दों से और खी ती शब्दों से परे ङसि, ङस् के अकार को उकार होता है। तब सख्युः यह सिद्ध हुआ॥

औत् ङेः पतिः किल समासविधौ घिसंज्ञः
संख्यामया बहुमुखा डतिसंख्यका सा॥
षट्संज्ञका लुगितिषड्भ्य इतो लुगाद्यै
श्चादर्शनं क्रमत इत्यपि तद्विधं तत्॥ ९३॥

इकार से परे जो ङि उसको औकार होता है। तब सखि-ङि। ऐसी स्थिति में ङि को औ और इकार को यकार होने से सख्यौ। यह रूप सिद्ध हुआ। शेष रूप हरि शब्दवत् समझना। पति शब्द समास में ही घिसंज्ञक होता है। कति शब्द नित्य बहुवचनान्त है।

बहु, गण, वतु, डति, ये संख्या संज्ञक होते हैं। डत्यन्त संख्या षट् संज्ञक होती है। षट्संज्ञकों से परे जस् श स् का लुक् होता है। लुक्-श्लु-लुप् शब्दों से प्रत्यय का अदर्शन किया हुआ क्रम से लुक्-श्लु-और लुप् संज्ञक होते हैं ॥ ९३ ॥

लुप्तेऽपि प्रत्यय इतीह भवेत्तदीयं
कार्यं तथा नलुमता किल लुप्त एव।
ये युष्मदस्मदिति षट्विहितास्त्रिषूत
लिंगेषु चात्र विषये खलु तुल्यरूपाः। ९४

प्रत्यय का लोप होने से भी प्रत्यय के आश्रित कार्य होता है। इस करके गुण की प्राप्ति होने से। लुमय शब्द से लोप होने में उसके निमित्तवाला कार्य नहीं होगा। इससे गुण नहीं होने से " कति " ऐसा रूप सिद्ध होता है। शेष रूपों की सिद्धि पूर्व सूत्रों से समझ लेनी। युष्मद् अस्मद् और षट् संज्ञक ये शब्द तीनों ही लिंगों में तुल्य रूपोंवाले होते हैं ॥ ९४ ॥

यस्त्रेस्त्रयश्च तदकार इति त्यदां वै
दीर्घाज्जसौचि च परे न सवर्णपूर्वः
यू स्त्र्याख्यकौ किल नदीकृतकृत्यभाजौ
संबोधने च लघुरेव नदीजनन्योः ॥ ९५ ॥

त्रि शब्द को त्रय आदेश होता है आम् परे होने से जैसाकि त्रि आम् ऐसी स्थिति में त्रि को त्रय हुआ पीछे नुट् दीर्घ और एकार होने से त्रयाणाम्। यह रूप सिद्ध हुआ। त्यद् शब्द से लेकर द्विशब्द पर्यन्त त्यदादिकों को अकार होता है विभक्ति परे होने से। जैसा

कि ह्रि-औ-ऐसी स्थिति में षष्ठी निर्देश से अंत्य को अ-
कार हुआ फिर वृद्धि होने से ह्रौ ह्रौ रूप सिद्ध हुए। औ
र पूर्वसूत्रों से शेष रूप सिद्ध होते हैं। दीर्घ से जस्-
और इच् परे होने से पूर्वसवर्णदीघ नहीं होता है। जैसाकि
पपी औ। ऐसी स्थिति में पूर्वसवर्ण नहीं हुआ। इकार को
यकार होने से पप्यौ। पप्याम्। पपी। इत्यादिक पूर्व सूत्रों
से जान लेना। नित्य स्त्रीलिंग ईदन्त और ऊदन्त शब्द
नदी संज्ञक होते हैं। अम्बार्थ को और नदी संज्ञक को सं
बोधन में ह्रस्व होता है। जैसा कि हे बहुश्रयसी सु इस
अवस्था में सु का लोप और ईकार को ह्रस्व होने से हे
बहुश्रेयासि यह सिद्ध हुआ ॥ ९५ ॥

नद्या इहाड्ङिति किलाट इहाचि वृद्धि
र्नद्यापनीभ्य इति ङे पर आम् सदैव।
य्वोश्चेयुवावचि तथा श्नुमुखोदितानां
संयोगभिन्नयुतपूर्वपदे यणेव ॥ ९६ ॥

नद्यन्त से परे ङित् वचन को आट् का आगम होता है।
आट् से अच् परे होने से वृद्धि रूप एकादेश होगा। जै-
सा कि बहुश्रेयसी-ङे। ऐसी स्थिति में आट् होकर वृ-
द्धि रूप एकादेश हुआ और ई को य हुआ तो बहुश्रे-
यस्यै। यह रूप सिद्ध हुआ। नद्यन्त से आबन्त से औ-
र नी शब्द से परे ङि को आम् आदेश होता है। इस
से बहुश्रेयस्याम्। रूप सिद्ध हुआ। श्नुप्रत्ययान्त को, इ
वर्णांत उवर्णान्त धातु को, और भ्रू शब्द को इयङ् उवङ्
होते हैं अजादि प्रत्यय परे होने से। इसकी प्राप्ति का
बाधक। धातु संयोग नहीं है पूर्व जिसके ऐसा जो इव
र्ण, तदन्त जो धातु तदन्त अनेकाच् अंग को यण् होता

है अजादि प्रत्यय परे होने से। इस से प्रध्यौ यह सि-
द्ध हुआ। प्रध्यः। प्रध्यम्। प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यि। इनसे
शेष पपी शब्दवत् जानलेना॥ ९६॥

प्राद्या गतिः किल नभूसुधियोर्यगात्र
क्रोष्टुश्च पंचसु परेषु कृतोपि तृज्वत्।
चानङ् भवेदुशनसामृभृतामबुद्धौ
स्यादब्भृतां किल च दीर्घ इहोपधायाः।९७।

प्र आदिक क्रिया के योग में गति संज्ञक होते हैं।
गति और कारक से अन्य है पूर्वपद जिसके उसको य
ण् नहीं होता है। जैसाकि शुद्धधी-औ। यहां पर यण्
न होकर इय् हुआ तब शुद्धधियौ यह रूप बना। भू
को और सुधी को अच् और सुप् परे होने से यण् नहीं
होगा। जैसा कि सुधी औ। यहां यण् न होकर इयङ्
होने से सुधियौ ऐसा बना। क्रोष्टु शब्द को क्रोष्टृ आ-
देश होता है संबुद्धि वर्जित पांच वचन परे होने से। ऋ-
दन्त शब्दों को और उशनस् आदि शब्दों को अनङ्
होता है संबुद्धि वर्जित सु परे होने से। अप् तृन् तृच्
स्वसृ नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तृ इन श-
ब्दों की उपधा को दीर्घ होता है संबुद्धि वर्जित सर्वना
मस्थान परे होने से। जैसा कि क्रोष्टु-सु। ऐसी स्थितिमें
क्रोष्टृ आदेश होने के बाद ऋकार को अनङ् होने से
फिर सु का लोप होकर पीछे उपधा को दीर्घ होकर न
कार का लोप हुआ तब क्रोष्टा यह सिद्ध हुआ। क्रोष्टु
औ। ऐसी स्थिति में क्रोष्टृ आदेश होकर गुण हुआ
फिर उपधा को दीर्घ होने से क्रौष्टारौ सिद्ध हुआ। इसी
तरह क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्। क्रौष्टारौ। ये रूप होते हैं।

क्रोष्टु-अस् । इस में पूर्व विधि अर्थात् प्रथमयोः पूर्वस वर्णः । तस्माच्छसो नः पुंसि । इन दोनों कार्यों से क्रो ष्टून् । यह होता है ।

टादिष्वजादिषु च वा तृज्वान्तृतोप्युत्
रात्सस्य चौः सुपि यणेव भवेच्च वृद् भोः ।
नुर्वा च दीर्घ उत गोत इतीह णित् स्या
दौतोम्शसो र्हलि किलाऽऽभवतीति नित्यम् ९८

अजादि तृतीयादिक विभक्ति परे होने से क्रो ष्टुशब्द तृच्वत् विकल्प से होता है। जैसा कि क्रोष्टु-आ क्रोष्ट्रा । पक्ष में क्रोष्टुना । इसी तरह जानलेना । ऋत् को ङसिङस् का अकार परे होने से उकार एकादेश रपर होता है । रेफ से परे संयोगान्त सकार का लोप होता है और का नहीं होता है जिससे क्रोष्टुः यह रूप सिद्ध हुआ पक्ष में क्रोष्टोः । धातु का अवयव संयोग पूर्व नहीं है जिसके ऐसा जो उवर्ण तदन्त धातु तदन्त अनेकाच् अंग को यण् होता है अच् व सुप् परे होने से। जैसा कि खलपू-औ । खलप्वौ । खलपू-जस् । खलप्वः । इसी तर- ह से सुलू आदि शब्दों के रूप होते हैं । स्वभू-स् ऐ सी स्थिति में रुत्व विसर्ग होने से स्वभूः । स्वभू-औ में उवङ् होने से स्वभुवौ । वर्षाभू शब्द के उकार को यण् होता है अच् संज्ञक सुप् परे होने से। जैसा कि वर्षा भू-ङि इसका वर्षाभ्वाम् । नृ सु ऐसी स्थिति में अनङ्, दी र्घ, नलोप और सु का लोप होने से ना यह रूप सिद्ध हुआ । ओकार से विहित सर्वनामस्थान णित् होता है। जैसा कि गो-स् ऐसी स्थिति में वृद्धि रुत्व, विसर्ग होने से गौः ऐसा रूप बना । गावौ गावः। ओकार से अम् और शस्

का अच् परे होने से आकार एकादेश होजाता है। गाम्। इसी तरह शस् में गाः ऐसा होता है। रै शब्द को आकारादेश होता है हल् विभक्ति परे होने से जैसा कि रै-स्, राः रायौ रायः। ग्लौ यथा। ग्लौः ग्लावौ ग्लावः। यह अजन्त पुल्लिंग प्रकरण समाप्त हुआ॥ ९८॥

श्यापः किलौङ इति बोधन ए भवेद्ध
आङ्योसि चाप इह चैत्वमुत प्रयुक्तम्।
याडाप एव च ङितोऽपि तु सर्वनाम्नः
स्याड् ह्रस्वता च बहुशालिदिशासमासे। ९९।
ह्रस्वो ङितीह तु नदी विहितो विकल्पात्
ङेराम्नदीविधिभृतास्त्विदुतः परस्य।
स्याच्च स्त्रियां त्रिचतुरोस्तिसृतच्चतसृ
रेफस्तयोरचि तथा नहि नामिदीर्घः।१००।

आबन्त अंग से परे औङ् को शी होवे। औङ् यह औकार विभक्ति की संज्ञा है। जैसा कि रमा-औ इसमें औ को ई होकर गुण हुआ तो रमे यह रूप हुआ। आप् को एकार होता है संबुद्धि में। जैसा कि रमा-स् इस में आ को एकार करके संबुद्धि का लोप किया तो हेरमे यह सिद्ध हुआ। आङ् और ओस् परे होने से आ को ए होता है जैसा कि रमा-आ। इसमें रमा के आ को ए होगया तो अय् होकर रमया यह रूप हुआ। आप् से परे ङित् को याट् हो। जैसा कि रमा-ङे। इसका रमायै। इसी प्रकार दुर्गा मेधा अजा एडका प्रभृति जानलेना। आबन्त सर्वनाम से परे ङित् को स्याट् होता है। और

आप् को ह्रस्व होता है। जैसा कि सर्वा ङे। इसमें स्याट् ह्रस्व और वृद्धि होने से सर्वस्यै सिद्ध होता है। दिशाओं के बहुव्रीहि समास में सर्वनामता विकल्प से होती है। उत्तरपूर्वा-ए। इस में स्याट् ह्रस्व वृद्धि से उत्तरपूर्वस्यै। पक्ष में उत्तरपूर्वायै। ऐसे ही तीय प्रत्ययान्त की भी विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। जैसाकि द्वितीयस्यै पक्ष में द्वितीयायै। इसीतरह तृतीय शब्द को भी जानलेना। इयङ् उवङ् स्थान विषयक और स्त्री शब्द से भिन्न नित्य स्त्रीलिंग ऐसे ईत् ऊत् और ह्रस्व इवर्ण उवर्ण स्त्री लिंग में विकल्प से नदी संज्ञक होते हैं। जैसा कि मति ए इसमें नदी संज्ञा से आट् वृद्धि और यण होने से मत्यै पक्ष में मतये। नदी संज्ञक इत् उत् से परे ङि को आम् होता है। जैसाकि मति ङि। मत्याम्। पक्ष में मतौ। शेष हरिवत्। ऐसे ही बुद्धि आदिक जानना। स्त्रीलिंग में त्रि चतुर् शब्द को तिसृ-चतसृ आदेश होते हैं विभक्ति परे होने से। इन दोनों शब्दों के ऋकार को रेफ आदेश होता है अच् परे होने से। गुण दीर्घ और उत्व इन का अपवाद है। जैसा कि त्रि-अस्। इस का तिस्रः। तिसृ-आम्। इस में नुट् और णत्व हुआ पीछे दीर्घ की प्राप्ति हुई परंतु तिसृ और चतसृ इन को नाम् परे होने से भी दीर्घ नहीं होगा। तिसृणाम्।९९-१००।

अस्यास्त्वियङ्विधिरजादिपरेऽम्शसोर्वा
नेयङ्त्युवङ्स्थितिमयौ तु नदीहितौ यू ॥
वामि स्त्रियां किल तृजन्तवदेव क्रोष्टु-
र्विज्ञैः प्रणीतमिह पद्यविधौ मयोक्तम् ॥१०१॥

स्त्री को इयङ् होता है अजादि प्रत्यय परे होने से।

जैसा कि स्त्री-औ ऐसी स्थिति में इय् होने से स्त्रियौ। इसीतरह जस् में स्त्रियः यह रूप होता है। अम् और शस् परे होने से स्त्री शब्द को विकल्प करके इयङ् होता है। जैसा कि स्त्री-अम्। स्त्रियम्। पक्ष में स्त्रीम्। और स्त्री-शस्। स्त्रियः। पक्ष में स्त्रीः। शेष रूप पूर्व सूत्रों से सिद्ध होते हैं। इयङ् उवङ् की स्थिति है जिन के ऐसे जो ईत् ऊत् वे नदी संज्ञक नहीं होते हैं, स्त्री शब्द के विना। जैसा कि हे श्री-स् ऐसी स्थिति में नदी संज्ञा न होने से ह्रस्व न हुआ तब रुत्व विसर्ग होने से हे श्रीः। श्रियै। श्रिये। श्रियाः। श्रियः। इयङ् उवङ् स्थान है जिन का ऐसे स्त्रीवाचक ई ऊ आम् परे होने से विकल्प से नदी संज्ञक होते हैं। स्त्री शब्द के विना। जैसा कि श्री-आम्। ऐसी स्थिति में जहां नदी संज्ञा हुई तो नुट् णत्व होकर श्रीणाम्। यह रूप हुआ। पक्ष में इयङ् हुआ तब श्रियाम्। स्त्रीलिंग वाची क्रोष्टु शब्द के तृजन्त के तुल्य रूप होते हैं। पूर्वाचार्यों का कहाहुआ यहां पद्यव्याकरण में मैंने लिखा है ॥१०१॥

ऋन्नेभ्य इत्यपि तु ङीप्महिलाभिधेभ्यः
भ्रूः श्रीवदेव तु पुमांश्च भवेत् स्वयंभूः।
षट्स्वस्रकादिकत एव न ङीपटापौ
चाजन्तयोषिदितिलिंगविधौ समाप्ता ।१०२।

ऋदन्त शब्द और नान्त शब्दों के स्त्रीलिंग में ङीप् होता है। जैसा कि क्रोष्टु को क्रोष्टृ होकर ङीप् होने से क्रोष्ट्री होता है। इसके गौरी शब्द के तुल्य रूप समझ लेना। भ्रू शब्द का श्री शब्द के तुल्य रूप समझ लेना। परंतु स्वयंभू शब्द को पुल्लिंग जानना। षट्

संज्ञक शब्द और स्वस्रादिक अर्थात्-स्वसृ-तिसृ-चतसृ ननान्दृ-दुहितृ-यातृ-मातृ-को ङीप् और टाप् नहीं होते हैं। जैसा कि स्वसृ-स् ऐसी स्थिति में अनङ् दीर्घ स् और न का लोप होने से स्वसा रूप होता है। स्वसृ-औ स्वसारौ। मातृ शब्द पितृ शब्द के तुल्य जानना। द्यो शब्द गो वत् जानना। स्त्रीलिंगवाची रै शब्द पुल्लिंग वत् जानना। नौ शब्द ग्लौ के तुल्य है॥ १०२॥ इति अजन्त स्त्रीलिंग समाप्त हुआ॥

क्लीबात्स्वमोरमितिशी भविधौ किलौङः
शिर्जश्शसोर्भवति सर्वमयो नितान्तम्।
नुम् सर्वनाम्नि तदजन्तझलन्तयोश्चे
दन्त्यात्परो मिदच एव भवेत्तथैव॥ १०३॥

नपुंसकलिंग संज्ञक अकारान्त अंग के परे-सु और-अम् को अम् होता है। जैसा कि ज्ञान-सु ऐसी स्थिति में सु को अम् होकर ज्ञानम् सिद्ध हुआ। हे ज्ञान-स् इस में हल् का लोप होने से हे ज्ञान होता है। नपुंसकलिंग वाचक शब्द के परे औङ् को शी होता है भ संज्ञा होने से। नपुंसकलिंग में जस् और शस् को शि होता है और वह शि सर्वनामस्थान संज्ञक होता है। नपुंसक लिंग में झलन्त और अजन्त को नुम् होता है सर्वनामस्थान परे होने से। अचों का जो अंत्य है उससे परे उसी का अन्त्यावयव मित् होता है। उपधा को दीर्घ होता है। ज्ञानानि। फिर भी वैसे ही द्वितीया के रूप और शेष पुल्लिंगवत् समझलेना। इसीतरह धन, वन, मूल, फलादिक शब्द जानलेना॥ १०३॥

एअपः स्वमोरदडथो डिति भस्य टेर्लुक्
ह्रस्वो नपुंसक इहैव तु नाम्न्यजन्ते ।
लुग्वै स्वमोरिति नपुंसकतस्त्विकोऽचि
नुम् चास्थिसक्थिदधिमुख्यभृतामनङ्वै ।१०४।

नपुंसकलिंग में डतर से आदि लेकर पांच शब्दों से परे सु और अम् को अदड् होता है। डित् परे होने से भसंज्ञक टि का लोप होता है। कतर-सु ऐसी स्थिति में सु को अदड् आदेश होने से टि का लोप होकर कतरत् कतरद् ऐसे रूप बनते हैं।कतर-औ इसमें औ को ईकार होकर पीछे गुण होकर कतरे और कतर-जस् इस में जस् को ई नुम् णत्व और उपधा को दीर्घ होने से कतराणि। इसी तरह सर्व शब्दों के रूप जान लेना। नपुसंक संज्ञक अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है। जैसा कि श्रीपा-स् ऐसी स्थिति में सु को अम् और आ को ह्रस्व होने से श्रीपम्। परिशिष्ट रूप ज्ञान शब्द के तुल्य जानलेना। नपुंसकलिंग शब्द से परे सु अम् का लुक् होता है। जैसा कि वारि-सु इस में सु का लुक् होने से वारि। इगन्त के अच् विभक्ति परे होने से नपुंसकलिंग में नुम् होता है। वारिणी, वारीणि। अस्थि,दधि,सक्थि और अक्षि इन चार शब्दों को उदात्त अनङ् होता है टादिक अच् परे होने से ॥ १०४ ॥

अल्लोप इत्थमन एव तु वापिडिश्यो
रिगूग्रस्त्व एच इति शास्त्रविधौ प्रयुक्तः ।
पद्ये मयापि विहितस्सुमुदेशिशूनां

चाजन्तपण्डमयलिंग इतः समाप्तिम् ।१०५।

नपुंसकलिंग वाचक अंग का अवयव और असर्व-नामस्थान यजादि स्वादि है परे जिस के ऐसे अन् के अकार का लोप होता है । और ङि और शी परे होने से विकल्प से लोप होता है। जैसा कि दधि-आ इस में अनङ् के पीछे अन् के अकार का लोप होने से दध्ना। दधि ङि दध्नि। पक्ष में दधनि। इसी तरह सब के रूप जानलेना। सुधि ।सुधिनी। सुधीनि। मधु। मधुनी। इत्यादि जानलेना। आदिश्यमान ह्रस्वों में मध्यस्थ एच् को इक् अवश्य होगा।जैसा कि प्रद्यो-सु। इस में ओ को उ होने से फिर सु का लोप होने से प्रद्यु होता है। प्ररै-सु। इसमें ऐ को इ होकर सु का लोप होकर प्ररि ऐसा बना है। सुनौ-सु इस में औ को उ होकर सु का लोप होने से सुनु होता है। ऐसे और भी समझ लेना। ये शब्द सिद्धियां व्याकरण शास्त्र की विधि में कही हैं वो मैंने भी पद्यव्याकरण में रक्खी हैं विद्यार्थियों के आनंद के अर्थ॥ यह नपुंसकलिंग की पद्य रचना समाप्त हुई॥ १०५॥

होढः पदान्तझलि घोपि च हस्य दादेः
से ध्वे परे भषिति तत्र बशो झषोपि ।
वा घो द्रुहां झलि पदान्तमयेऽथ सः स्यात्
धात्वादिषस्य यण इक् किल संप्रसारः ।१०६।

हकार को ढकार होता है झल् प्रत्याहार परे होने से और पदान्त में। जैसा कि लिह्-सु ऐसी स्थिति में ह को ढ होकर पूर्वसूत्रों से लिट् लिड् लिहौ लिहः लिड्भ्याम। लिट्सु लिट्त्सु। उपदेश में दादि धातु के ह को घ

होता है झल् परे होने से पदान्त के विषय। धातु के अवयव रूप एकाच् झषन्त बश् को भष् होता है स और ध्व परे होने से और पदान्त के विषय। जैसा कि दुह्-सु ऐसी स्थिति में ह को घ और द को ध होकर पूर्व सूत्रों से धुक् धुग् दुहौ दुहः। धुग्भ्याम्। धुक्षु। ये रूप होते हैं। द्रुह मुह ष्णुह ष्णिह इन के ह को विकल्प से घ होता है झल् प्रत्याहार परे होने से और पदान्त में। जैसा कि द्रुह-सु ऐसी स्थिति में ह को घ हुआ पीछे द को ध हुआ पीछे स् का लोप होकर ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट् ध्रुड् द्रुहौ द्रुहः। ध्रुग्भ्याम् ध्रुत्सु। ये रूप होते हैं। धातु के आदि के ष को स होता है। जैसा कि ष्णुह-स् इस में ष को स हुआ ह को घ हुआ स्नुक् स्नुग् स्नुट् स्नुड्। ये रूप होते हैं। यण् के स्थान में प्रयोग किया जो इक् वह संप्रसारण रूप होता है॥ १०६॥

ऊठ्वाह इत्यचि प्रसारणातस्तु वृद्धिः
स्यादाम् सदैव हि[1]बुकानुडुहोः शरेषु[2]।
नुम् स्याच्च सावनडुहोऽम् किल बोधनेपि
दस्रध्वंसुवस्वनडुहां तु पदान्तमध्ये ॥ १०७॥

भ संज्ञक वाह् शब्द को ऊठ् सम्प्रसारण होता है। सम्प्रसारण से अच् परे होने से पूर्वरूप एकादेश वृद्धि होती है जैसा कि विश्ववाह्- अस् ऐसी स्थिति में व को ऊठ् होकर पीछे वृद्धि से विश्वौहः। ऐसे शेष रूप जानलेना। चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् होता है सर्वनामस्थान परे होने से वह उदात्त संज्ञक होता है। अनडुह् शब्द को नुम् होता है सु परे होने से। जैसा कि अनडुह्सु ऐसी स्थिति में आम् और नुम् ह का और

[1] चतुर [2] पञ्चसु

स का लोप होने से अनड्वान् ऐसा रूप होता है। संबोधन में अनडुह् शब्द को अम् का आगम होता है। जैसा कि हे अनुडुह्-स् ऐसी स्थिति में अम् और नुम् संयोगान्तलोपसे स का लोप होकर हेअनड्वन् ऐसा सिद्ध भया सान्तवस्वन्त को और स्रंसु आदि को द होता है पदान्त में। जैसा कि अनडुह्-भ्याम् इस में ह को द होने से अनडुद्भ्याम् ॥ १०७॥

साडः सहेः स इति षो दिव औच्च सौ वै
उत्स्यात्पदान्तसमयेपि दिवोन्तदेशे।
आमस्तु नुड्भवति यत्र हि षट्चतुर्भ्यो
नो णः समानकपदेपि भवेद्रषाभ्याम्॥ १०८॥

साड् रूप सहि के स को ष होता है। जैसा कि तुरासाह्-स् इस में स को ष होकर ह को ढ होकर तुराषाट् तुराषाड्। शेष पूर्वसूत्रों से जानलेना। दिव् शब्द को औत् होता है सु परे होने से। यथा सुदिव्-स् इस में व को औत् होने से सुद्यौः। दिव् शब्द को पदान्त में उ अन्तादेश होता है। यथा सुद्युभ्याम् षट् संज्ञक शब्दों से और चतुर शब्द से परे आम् को नुट् आगम होता है र और ष से परे न को ण होता है समान पद में ॥ १०८ ॥

रोर्वै विसर्ग इति चात्र सुपीह नित्यं
द्वित्वं शरोऽचि नपदान्तविधौ नकारः।
धातोश्च मस्य हि किमः क इतीदमो मः
तस्य त्विदोऽयनर विधौ खलु सौ परे वै। १०९।

रु संबधी रेफ को ही विसर्ग होता है अन्य को नहीं

ष को द्वित्व प्राप्त होने से। अच् परे होने से शर् को द्वित्व नहीं होता है। यथा-चतुर्-सु-इस में स को ष होने से चतुर्षु रूप होता है। धातु के म को न होता है। जैसा कि प्रशाम्-स् इस में म को न और हल् का लोप होने से प्रशान् यह सिद्ध हुआ। किम् शब्द को क होता है विभक्ति परे होने से। जैसा कि। किम् को क होने से रुत्व विसर्ग हुआ तो। कः। यह सिद्ध भया। इसी तरह सर्व रूप जान लेना। इदम् शब्द को म होता है अत्व का अपवाद है। इदम् के इद् को अय् होता है सु परे होने से पुल्लिङ्ग में। जैसा कि इदम् स् इसमें इदम् के म् को म् हुआ और इदम् के इद को अय् होकर हल् का लोप होने से (अयम्) रूप होता है ॥ १०९ ॥

चातो गुणे भवति यत्पररूपमत्र
दश्चेत्यनाप्यक इदस्तु हलीह लोपः।
आद्यन्तवद्भवति चैकविधौ कृतं यत्
नाकास्तथेदमदसोभिस ऐस् द्वितीया ॥११०॥
टौस्वेन इत्यपि तु ङौ नहि नस्य लोपः
सम्बोधनेऽथ सुप् तुक् स्वरकृन्मयेषु।
ख्यातोऽप्यसिद्ध इह शास्त्रविधौ नलोपः
संयोगभूषितवमन्ततएव नाऽस्य ॥ १११ ॥

इदन्त के अत् से गुण परे होने से पररूप एकादेश होता है। जैसा कि इदम्-औ। इस में त्यदादिकों को अत्व होने से फिर इदम् को म होता है विभक्ति परे

होने से इसी तरह परखप एकादेश और द को म हो ने से, इमौ इमे। ये सिद्ध हुए। त्यदादिकों के संबोधन नहीं होता है। ककार करके भिन्न इदम् शब्द को अन् होता है आप् प्रत्याहार संबंधि विभक्ति परे होने से। जैसा कि इदम्-आ, इस में अ होने से पीछे इद को अन होने से पीछे सर्वनाम संज्ञक कार्य होने से गुण हुआ तो अनेन यह रूप सिद्ध हुआ। ककार वर्जित इदम् शब्द के इद् का लोप होता है टा से लेकर सुप् पर्यन्त हलादि परे होने से। अनभ्यास में अलोन्त्य विधि नहीं होती है। एक विषय में क्रियमाण कार्य आदि और अंत के तुल्य होता है। जैसा कि इदम् भ्याम्। इस में अम् को अ होने से, फिर इद का लोप होकर दीर्घ हुआ तो आभ्याम् यह सिद्ध हुआ। ककार भिन्न इदम् शब्द के और अदस् शब्द के भिस् को ऐस् नहीं होता है। जैसा कि एभिः। अस्मै। आभ्याम्। एभ्यः। अस्मात्। अस्य। अनयोः। एषु। ये रूप होते हैं। इदम् और एतद् को एन आदेश होता है अन्वादेश के विषै। कुछ कृत्य कर चुके को दूसरे कृत्य में प्रवृत्त करना अन्वादेश कहलाता है। जैसा कि इसने व्याकरण पढलिया है अब इस को वेद पढावें। इस व्यवस्था में एनम् यह रूप होता है इत्यादि जानलेना। ङि परे होने से नकार का लोप नहीं होता है, संबोधन में भी। जैसा कि हे राजन्-स् इस में स् का लोप हुआ, न का नहीं हुआ, तो हे राजन् यह बना है। ङि परे होने से उत्तर पद में निषेध होता है। जैसा कि ब्रह्मनिष्ठः। उपधा को दीर्घ होने से राजानौ, राजानः। राजन्-अस् इस में न को ञ इत्यादि होकर राज्ञः। सुप् और तुक् और स्वर और संज्ञा की

विधि में तथा कृत् में न का लोप असिद्ध है; राजाश्वः प्रभृति अन्यस्थान में नहीं। इसीतरह असिद्धत्व से आत्व एत्व ऐत्व नहीं होते हैं। वमन्तसंयोग से परे अन् के अकार का लोप नहीं होता है। जैसाकि यज्वनः। यज्वभ्याम्। ब्रह्मणः। ब्रह्मभ्यां इत्यादि जानलेना ॥ ११० १११ ॥

सौ चेति दीर्घ इह णः पद उत्तरेऽचि
ञ्णिन्नेषु कुत्वमिति हस्य भवेत्तु हन्तेः।
चान्ते मघोन इह वा तृरथाऽप्यधातो
र्नुम्पंचसूगित उत श्वभृतां प्रसारः ।११२।

इन्-हन्-पूषन् और अर्यमन् शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है संबुद्धि वर्जित सु परे होने से।जैसा कि वृत्रहन्-स् इसमें उपधा को दीर्घ होनेसे स्-न् का लोप होने से वृत्रहा यह सिद्ध हुआ। संबोधन में वृत्रहन् होता है ॥ एक अच् उत्तरपद में है जिसके ऐसे समास में पूर्व पदस्थनिमित्त से परे और प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्ति इनमें रहा जो नकार उसको ण होता है॥ जैसा कि वृत्रहन्-औ इससें न को ण होने से वृत्रहणौ यह हुआ ॥ ञित् णित् प्रत्यय और न परे होने से हंति के ह को क होता है॥ जैसाकि वृत्रघ्नः इत्यादिक जानलेना॥ ऋ इत्संज्ञक है जिसके ऐसे मघवन् शब्द को विकल्प से तृ अन्तादेश होताहै॥ धातुभिन्न उगित् और न लोपवाली अञ्चति धातु को नुम् होता है सर्वनामस्थान परे होने से। जैसाकि मघवन्-स् इसमें अन् को तृ हुआ। ऋ इत्संज्ञक हुआ तब मघवत् इसमें नुम् होने से संयोगान्त और हल् का लोप और उपधा को दीर्घ होने

से मघवान् होता है इत्यादि ॥ श्वन् युवन् मघवन् इन भ संज्ञक शब्दों से ताद्धित वर्जित परे होने से सम्प्रसारण होता है ॥ जैसाकि मघवन्-अस् इसमें अ का लोप, व को उ सम्प्रसारण पीछे गुण होकर रुत्व विसर्ग होने से मघोनः इत्यादिक जानलेना ॥ ११२ ॥

यत्संप्रसारणपरे न यणः प्रसारः
स्यादर्वणस्तृरनञश्चनसौपथामात् ।
सावन्त इत्यपि पथिप्रभृतां सदैव
पञ्चस्विकारनिलये तदकार एव ॥ ११३ ॥

संप्रसारण परे होने से पूर्व यण् को संप्रसारण नहीं होता है। इससे यकार को इ नहीं हुआ इस उक्ति से अन्त्य यण् को पूर्व संप्रसारण होने से यूनः । यूना इत्यादि। नञ् समास से भिन्न अर्वन् शब्द के अन्त्य को तृ आदेश होता है, सु परे हो तो नहीं होता है। यथा अर्वन्तौ। अर्वन्तः इत्यादिक जानलेना। पथिन् मथिन् और ऋभुक्षिन् इनशब्दों को अन्तादेश आकार होता है। पथि आदि शब्दों के इकार को अकार होता है सर्वनामस्थान परे होने से ॥ ११३ ॥

थोन्थस्तु भस्य किल टेर्भवतीह लोपः
ष्णान्ताश्च षट् तदिह नाम्नि तु नोपधायाः ।
स्याद्वा हलादिकइहाऽष्टन आ विभक्तौ
वष्टाभ्य औशिति भवेत् क्विन्नत्वजां वै । ११४ ।

पथि और मथि के थ को न्थ् आदेश होता है सर्वनामस्थान परे होने से। जैसाकि पथिन्-स-इसमें इ को अ,

और थ को न्थ उपधा को दीर्घ न का लोप और रुत्व विसर्ग होने से पन्थाः। पन्थानौ। पन्थानः। भ संज्ञक पथ्यादिक की टि का लोप होता है। जैसाकि पथिन्-अस् और पथिन् आ इसमें इन् का लोप होने से पथः। पथा इत्यादिक सब जानलेना। षान्त और नान्त संख्या षट् संज्ञक होती है। पञ्चन् शब्द नित्य बहुवचनान्त है। पंचन्-अस् इसमें षट् संज्ञा होकर न लोप और जस् का लुक् होने से पंच। पंच। पंचभिः। नान्त पद की उपधा को दीर्घ होता है। यथा पंचानाम्। पंचसु। हल् आदिक विभक्ति परे होनेसे अष्टन् को आ विकल्प करके होता है। किया है आकार जिसको ऐसे अष्टन् शब्द के जस् और शस् को औश् होता है। जैसा कि अष्टन् जस् इस में न् को आ हुआ और जस् को औ होने से वृद्धि होकर अष्टौ शस् का भी अष्टौ। हलादिक विभक्ति परे होने से विकल्प से आत्व होता है। ऋत्विज्-दधृष्-स्रज्-दिश्-उष्णिह्-अञ्चु-युज्-और क्रुञ्च इन शब्दों से किन् होता है। अञ्चि को सुप् उपपद होने में, युज् और क्रुञ्च केवल व्यक्तियों को। क्रुञ्चि के न लोप का अभाव निपात से होता है। क और न् इत्संज्ञक हैं ॥ ११४ ॥

कृदतिङ्तु वेर्भवति लोपशपृक्तकस्य
क्रुर्वैं क्विनः किल युजेरसमस्यमाने।
नुम् चोः कुरेव जछशा ष इतीह दीर्घो
विश्वस्य चात्र वसुराट्परयोस्तु नित्यम्॥ ११५॥

यहां धातु के अधिकार में तिङ् भिन्न प्रत्यय सर्व कृत् बोधक होते हैं। अपृक्त वाचक व का लोप होता है। जिस से किन् प्रत्यय होता है उसको पदान्त में कवर्गान्त

आदेश होता है। जैसा कि ऋत्विज्-स् इसमें कुत्व अ सिद्ध होने से चवर्ग को कवर्ग हुआ, विकल्प से चर होने से ऋत्विक् ऋत्विग्- ये रूप होते हैं। युज् को नुम् होता है सर्वनामस्थान में, समास में नहीं होता है। जैसा कि युङ् युञ्जौ। युञ्जः॥ शेष रूप भी जानलेना। चवर्ग को कवर्ग होता है झल् परे होने से और पदान्त में। जैसाकि सुयुज्-स् इसमें ज को कवर्ग होकर चर विकल्प से होने से सुयुक्-सुयुग् सुयुजौ सुयुजः। इत्यादि रूप जानलेना॥ व्रश्च, भ्रस्ज्, सृज् मृज् यज् राज् भ्राज् और छकारान्त शकारान्त को षकार होता है॥ झल् परे होने से पदान्त में। जैसाकि राज्-स् इस का। राट् राड् राजौ राजः। इसी प्रकार से सब जानलेना। विश्व शब्द को वसु और राट् परे होने से दीर्घ रूप अन्तादेश होता है। जैसाकि विश्वराट् में विश्व को दीर्घादेश होने से विश्वाराट्। चर विकल्प से होने से विश्वाराट् विश्वाराड्। और सब जानलेना॥ ११५॥

स्कोर्लोप एव झलि योगपदस्थकाद्योः
सो वै तदोः सुपर एव भवेत्त्यदादौ॥
ङेर्युष्मदस्मदितिनामपरस्य चामूस्यात्
त्वाहौ च सौ किल तयोश्च टिलोप एव।११६।

पदान्त में जो संयोग है उसके झल् परे हो तो आदि सकार और ककार का लोप होता है। जैसा कि भृस्ज्-स् इस में स् का लोप होकर पूर्व कार्य से भृट् भृड् ये रूप सिद्ध होते हैं। भृज्जौ। भृज्जः। त्यदादिकों के अन्त्य वर्जित तकार दकार को स हो सुप् परे होने से. जैसा कि त्यद्-स् इस में सब कार्य होने से, स्यः। औ

का त्यौ । जस् का त्ये । सः । तौ । ते । यः ॥ यौ । ये ॥ ये रूप होते हैं ॥ युष्मद् और अस्मद् शब्द से परे । ङ को और प्रथमा द्वितीया को अम् आदेश होता है । युष्मद् और अस्मद् के म पर्यंत को त्व, अह ये आदेश होते हैं ॥ युष्मद् अस्मद् की टि का लोप होता है ॥ जैसा कि युष्मद्-सु अस्मद्-सु इनमें पूर्वोक्त कार्य होकर त्वम् अहम् ये सिद्ध होते हैं ॥ ११६ ॥

युवूचावूद्विवाच्यविषये प्रथमाद्विवाच्येत्
चाल्लौकिकेपि किल यूयवयौ जसीह ।
ख्यातौ त्वमौ प्रथमवाक्यविधौ द्वितीया
मध्ये किलादितिशसो न इहैव योचि॥११७॥

म पर्यंत युष्मद् अस्मद् शब्द को युव् और आव् आदेश होते हैं विभक्ति परे होने से । औङ् परे होने में युष्मद् अस्मद् शब्द को आत्व होता है लौकिक में. जैसा कि युष्मद्-औ अस्मद्-औ ॥ इनमें औ को अम् होने से और युव आव आदेश होने से युवाम् आवाम् ये रूप हुए ॥ म पर्यंत युष्मद् अस्मद् को यूय वय आदेश होने से जस के रूप यूयम् वयम् होते हैं ॥ एक वचन में त्व म आदेश होते हैं ॥ त्व-म को आत् होता है । जैसा कि त्वाम्-माम् ॥ इन दोनों शब्दों के शस् को न होता है, जैसा कि युष्मान् अस्मान्. युष्मद् अस्मद् को यकार आदेश होता है अनादेश अजादि परे होने से ॥ जैसा कि त्वया मया ॥ ११७ ॥

आत्वैतयोस्तदुभयोश्च परे हलादौ
टेर्लोप एव च भवेद् ङयि तुभ्यमह्यौ ।

अभ्यं भ्यसः किल ङसेरदिहैकवाक्ये
चाऽत्पञ्चमीभ्यसइति प्रवदन्ति विज्ञाः। ११८।

इन दोनों शब्दों को आत् होता है अनादेश हला
दि विभक्ति परे होने से ॥ युवाभ्याम् ॥ आवाभ्याम्
युष्माभिः॥ अस्माभिः॥ ये रूप होते हैं ॥ म पर्यंत इन्ही
को तुभ्य मह्य आदेश होते हैं टि का लोप होता है ॥ तु
भ्यस् मह्यस् ऐसे रूप होने हैं ॥ इन दोनों से परे भ्यस्
को अभ्यस् आदेश होता है ॥ युष्मभ्यम् अस्मभ्यम्। इन
दोनों से परे ङसि को अत् होता है.त्वत् मत् ये होते हैं.
इन दोनोंसे परे पंचमीका भ्यस् उस को भी अत् हाता
है ॥ जैसा कि युष्मत् अस्मत् ॥११८॥

स्यातां सदा तवममौ ङसितद्ङसोऽश् वै
त्वाकं च साम इति वांनौ षट्चतुर्थ-
द्व्यख्याविभक्तिगतयोःकिलवस्नसौ तु
स्तस्तेमयौ रसतुरीयमयैकवाक्ये ॥ ११९ ॥

म पर्यंत युष्मद् अस्मद् को तव और मम आदेश
होते हैं ङस् परे होने से। और ङस् को अश् होता
है। जैसाकि-तव मम ये होते हैं। दोनों से परे साम्
को आकम् आदेश होता है। जैसाकि युष्माकम् अ-
स्माकम्। पद से परे अपदादि के विषै स्थित और षष्ठी
चतुर्थी द्वितीया वाचक दोनों शब्दों को वां नौ आदेश
होते हैं ॥ पूर्वोक्त विषयक षष्ठी चतुर्थी द्वितीया के बहु
वचनान्त दोनों शब्दों को वस्-नस्- आदेश होते हैं ॥
पूर्वोक्त विषयक षष्ठी चतुर्थी के एकवचन मय दोनों श
ब्दों को ते, मे आदेश होते हैं ॥ ११६ ॥

त्वामौ युगैकवचने किल पच्च पादो
लोपस्तु नस्य हि तथाऽनिदितामचश्चो ।
इत्तूद इत्यपि भवेच्च समः समि स्यात्
सध्रिः सहस्य तिरसः खलु तिर्यलोपे ॥१२०॥

द्वितीया के एकवचनमय दोनों शब्दों को त्वा-मा आदेश होते हैं। यथा-त्वा-मा-ते-मे-वां-नौ- वः-नः। पादशब्दान्त भसंज्ञक अंग के अवयव पाद शब्द को पद् आदेश होता है॥ जैसा कि सुपदः सुपदा॥ इत् करके भिन्न हलन्त अंग की उपधा के न का लोप होता है कित् ङित् परे होने से। यथा प्राङ् प्राञ्चौ। प्राञ्चः। लोप हुआ है नकार जिसका ऐसी अञ्चति के भसंज्ञक अकार का लोप होता है। लोप हुआ है अकार और नकार जिस का ऐसी अञ्चति परे होने से पूर्व अण् को दीर्घ होता है। यथा प्राचः प्राचा प्राग्भ्याम्। इसीप्रकार प्रत्यच् के प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ इत्यादिक होते हैं॥ उदच् शब्द से परे लोप हुआ है नकार जिस का ऐसी अञ्चति के भसंज्ञक अकार को इत् होता है॥ यथा उदीचः उदीचा इत्यादिक समझ लेना। अप्रत्ययांत अञ्चति परे होने से सम् को समि होता है। यथा-सम्‌अच्-स् इसका सम्यङ्॥ औ का सम्यञ्चौ। सम्यञ्चः। सह को सध्रि आदेश होता है यथा-सध्र्यङ्॥ जिस अप्रत्ययान्त अंचति के अकार का लोप न हुआ हो वह परे होने से तिरस् को तिरि आदेश होता है जैसाकि तिरस् को तिरि होने से तिर्यच्-स्- का तिर्यङ्। तिर्यञ्चौः॥ तिर्यञ्चः तिरश्चः। तिरश्चा ॥ १२० ॥

पूजाविधावपि नलोप इहैव नाञ्चेः

योगस्य सान्तमहतः किल दीर्घ एव ।
चाऽधात्वसन्तविषयेऽ तुविधौ हि दीर्घ
श्चाभ्यस्त एव तदुभे न शतुर्नुमत्र॥ १२१ ॥

पूजार्थक अञ्चति धातु के उपधा के नकार का लोप नहीं होता है ॥ यथा प्राङ् ॥ प्राञ्चौ ॥ प्राञ्चः। संबोधन भिन्न सर्वनामस्थान परे होने से सान्त संयोग की और महत् शब्द के नकार की उपधा को दीर्घ होता है। यथा महत्-स् इस का महान् ॥ महान्तौ ॥ महान्तः ॥ संबोधन भिन्न सुप् परे होने से अत्वन्त शब्द की और धातु भिन्न असन्त शब्द की उपधा को दीर्घ होता है ॥ यथा धीमत्-स् इसका धीमान् । धीमन्तौ । धीमन्तः । अष्टाध्यायी के षष्ठाध्याय में द्वित्व प्रकरण कहा है उसके पूर्व और उत्तर दोनों की अभ्यस्त संज्ञा है । अभ्यस्त संज्ञक से परे शतृ प्रत्यय होवे तो नुम् नहीं होता है । यथा ददत् । ददतौ । ददतः ॥ १२१ ॥

धातुश्च जक्षितिरथो रसधातवोऽन्ये
कन्क्विन्त्यदाद्युपदृशोऽज्ञविधौ भवेच्च ।
आसर्वनाम्न इति कुत्वविधिर्नशेर्वा
सुप्युपपदेऽनुदकके क्विनिह स्पृशेर्वै ॥१२२॥

छः और धातु और सातमी जक्षाति ये अभ्यस्त संज्ञक होते हैं । इनमें नुम् नहीं होता है । यथा-जक्षत्-जाग्रत् दरिद्रत्-शासत्-चकासत्- ये ददत् शब्द के तुल्य होते हैं । त्यद् आदि सर्वनाम शब्द अज्ञानार्थक दृश् धातु के उपपद होने से दृश् से कन् और क्विन् प्रत्यय होते हैं । सर्वनाम संज्ञक शब्दों से परे दृग् दृश् और वत् प्रत्य

य हो तो इनको आकार अंतादेश होता है। जैसा कि तद्-दृश्-तादृश्-स् इसके तादृक्-तादृग् ये रूप होते हैं। पदान्त में नश् को कवर्ग अन्तादेश विकल्प से होता है। यथा नक्-नग्-नट्-नड्-। स्पृश् शब्द के उदक रहित सुबन्त उपपद होवे तो उसके परे क्विन् प्रत्यय होता है। घृतस्पृक् घृतस्पृशौ घृतस्पृशः ॥ १२२ ॥

रेफान्तवान्तपदयोरुपधा हि दीर्घो
नुम्शर्विसर्गविहिते क्विण एव षः स्यात्।
यत्सम्प्रसारणमिहैव वसोस्तु भस्य
पुंसोऽसुङेव च सुलोप इहाऽदसस्त्वौ ॥१२३॥

रकार और वकार जिसके अंतमें है ऐसी धातु के उपधाभूत इक् प्रत्याहार को पदान्त में दीर्घ होता है। यथा-पिपठिर्- को दीर्घ होने से पिपठीर्-स्- इसका पिपठीः। पिपठिषौ। पिपठिषः। नुम् विसर्ग और शर प्रत्याहार इनका व्यवधान होय तो भी इण् और कव र्ग से परे सकार को षकार होता है। यथा-पिपठीःषु पिपठीष्षु। वसु प्रत्यय जिसके अन्त में हो ऐसा जो भ संज्ञक अंग उसको सम्प्रसारण होता है। यथा विद्वस् इसके व को उ हुआ तो विदु-अस्-जस् षकार होकर विदुषः विदुषा। पुंस् शब्द से परे सर्वनामस्थान प्रत्यय होने से पुंस् के स्थान में असुङ् आदेश होता है। असुङ् का अस् रहता है। नुम् दीर्घ होने से पुमान्। पुमांसौ। पुमांसः। सु परे होने से अदस् शब्द को औकार अन्तादेश होता है और सु का लोप होता है। यथा अद-औ द को स होने से असौ। अदस्-औ अद-औ अदौ ॥ १२३ ॥

चाऽसेरिहादस इहैव तु दादुदो म
ईदेत एव बहुवाक्यपदे सु ने न ।
नाभावकृत्याविषये च मुभावसिद्धः
पूर्णो हलन्तपुरुषाभिधलिङ्ग एषः ॥ १२४ ॥

असान्त अदस् शब्द के दकार से परे उत् और ऊत होते हैं, और दकार को मकार होता है। यहां आन्तरत-म्य से ह्रस्व को ह्रस्व उ होता है, और दीर्घ को दीर्घ ऊ होगा। अब पूर्वोक्त अदौ के स्थान में औ को ऊ हुआ, और द को म होने से अमू सिद्ध भया। अदस् संबंधी दकार से परे ए को ई होता है और दकार को मका-र होता है। यथा-अमी। नाभाव किया हो या करने की इच्छा होय तो भी मुभाव असिद्ध नहीं होता है। य-था-अमुना। यह हलन्त पुल्लिंग संपूर्ण भया ॥ १२४ ॥

पदे नहोध इह सप्तनहादिषु क्वौ
पूर्वस्य दीर्घ उत साविदमो यकारः ।
तोऽपोऽभिचाद्भिरिति पद्यविधौ प्रदिष्टः
पूर्णो हलन्तमहिऽलाभिधलिङ्ग एषः ।१२५।

नह धातु के पदान्त में और झल् प्रत्याहार परे होने से हकार को धकार होता है। नहि, वृति, वृषि, व्यधि रुचि, सहि और तनि इनको क्विप्प्रत्यय होने से पूर्वपद को दीर्घ होता है। यथा-उपानह्-स् इस का उपानत्। उपानहौ। उपानहः। ऐसे ही शेष रूप जानलेना। इद-म् शब्द के दकार को यकार होता है सु परे होने से। यथा-इदम्-स् इसमें द को य होने से इयम्। इमे। इमाः। इत्यादिक जानलेना। अप् शब्द के भकारादिक विभक्ति

परे होने से तकार अंतादेश होता है। यथा। अद्भिः। अद्भ्यः। अपाम्। अप्सु। इसीतरह दिश् शब्द त्विष् शब्द और सजुष् शब्द आदि जानलेना। अदस् के भी असौ। अमू। अमूः। यह हलन्त स्त्रीलिंग संपूर्ण भया॥ १२५॥

अन्हस्तु रुः किल पदान्तविधौ विकल्पात्
षराढस्य वा खलु नुमेव तदाच्छिनद्योः।
श्यपृश्यनूपरस्य शतुरङ्गभवस्य नित्यम्
पूर्णो हलन्तपुरुषेतरलिङ्ग एषः॥ १२६॥

अहन् शब्द को पदान्त में रु होवे। यथा अहोभ्याम् अहोभिः। दण्डि। दण्डिनी। दण्डीनि। सुपथि। सुपथी सुपंथानि॥ ऊर्क् ऊर्जी ऊर्न्जि। तत्-ते-तानि। गवाक्-गोची गवाञ्चि॥ शकृत्-शकृती शकृन्ति॥ शतृ प्रत्ययान्त अभ्यस्त शब्द से परे विकल्प से नुम् होता है सर्वनाम स्थान परे होने से॥ ददन्ति पक्षे ददति॥ प्रथमा के बहुवचन में ये रूप होते हैं॥ इसीतरह द्वितीया के। इसीतरह तुदत् शब्द के रूप होते हैं॥ अवर्णान्त शब्द से परे शतृ प्रत्यय के अवयव का तकार जिस शब्द के अंत में होवे और उससे परे नदी या शी होवे तौ उसको नित्य नुम् होता है॥ पचत् पचंती पचंति॥ यह हलंत नपुंसकलिंग पूर्ण भया॥ १२६॥

ते वै स्वरादिकनिपातमयाऽव्ययाश्च
त्वेजन्तमान्तकृत एव भवन्ति तद्वत्।
क्त्वातोसुनः किल कसुंश्च तदन्तशब्दाः
स्याच्चाव्ययोद्भव इतीह च लुक्सुबापोः॥१२७॥

स्वर् आदिक और निपात संज्ञक ये अव्यय संज्ञक

होते हैं। यथा। स्वर्-स्वर्ग, परलोक। अन्तर्-मध्य। प्रातर्-सबेरा। पुनर्-फिर। सनुतर्-छिपना। उच्चैस्-ऊंचा। नीचैस्-नीचा। शनैस्-धीरे धीरे। ऋधक्-सत्य, वियोग, शीघ्र, पास में, हलका। ऋते-रहित। युगपत्-एक समय में। आरात्, दूर, नजदीक। पृथक्-भिन्न। ह्यस्-पूर्वदिन। श्वस्-परदिन। दिवा-दिनमें। रात्रौ-रात में। सायम्-संध्यामें। चिरम्-बहुकालीन। मनाक्-किंचित्। ईषत्-अल्प। जोषम्-मौन, सुख। तूष्णीम्-चुप। बहिस्-बाहिर। समया-पास में, मध्य में। निकषा-पास में। स्वयम्-आप। वृथा-निष्फल। नक्तम्-रात्रि में। नञ्-नहीं। हेतौ-कारण में। इद्धा-सत्य रीति से। अद्धा-स्पष्ट रीति से। सामि-अर्ध, निन्दा वाचक। वत्-तुल्य। सना निरंतर। उपधा-विभाग। तिरस्-टेढ़ा, छिपना, परिभवपाना। सनत्-सनात्-सदा। अन्तरा-अन्तरेण-विना, मध्य, वर्जन,। ज्योक्-पुनः, शीघ्रता, अद्य, बहुकाल, प्रश्नवाचक। कम्-जल, सुख, निन्दा, मस्तक। शम्-सुख। सहसा-अजान। विना-वर्जन। नाना-अनेक, विना। स्वस्ति-कल्याण। स्वधा-पितृ संबंधी दान। अलम्-भूषण, पूर्ण, शक्ति, निवारण, निषेध। वषट्-श्रौषट्-वौषट्-यज्ञ में देवों को दान देने के वाक्य। अन्यत्-और। अस्ति-सत्तावाचक, होना,। उपांशु-गुह्यवाक्य, ॥ क्षमा-सहना। विहायसा-आकाश ॥ दोषा-रात्रि। मृषा-मिथ्या-झूठ॥ मुधा-निरर्थक ॥ पुरा-निरन्तर, बहुकालीन, समीपभावितव्य, ॥ मिथो-मिथस्-एकान्त, साथ, परस्पर ॥ प्रायस्-बहुत प्रकार ॥ मुहुस्-वारंवार ॥ प्रवाहुकम्-प्रवाहिका-तुल्य काल, ऊपर ॥ आर्यहलम्-आर्य प्रतिबन्ध, हल विवाद, प्रतिशेष। अभीक्ष्णम्-वारंवार ॥ साकम्-सार्द्धम्-

साथ ॥ नमस्-नमस्कार ॥ हिरुक्-विना, वर्जन ॥ धिक्-निन्दा ॥ अथ-मंगल, अनन्तर, आरंभ, प्रश्न, समग्र, अधिकार, प्रतिज्ञा, समुच्चय ॥ अम्-शीघ्रता, अल्पता ॥ आम् अंगीकार ॥ प्रताम्-ग्लानि ॥ प्रशान्-सामर्थ्य, सदृश ॥ प्रतान्-विस्तार ॥ मा-माङ्-शंका, निषेध ॥ ये सब ८८अव्यय अर्थ सहित लिखे हैं ॥ अब निपात संज्ञक चादिक शब्द अव्यय संज्ञक कहते हैं ॥ यथा ॥ च१ समुच्चय वाचक, पुनः ॥ वा२ अथवा, विकल्प, उपमा, एव, समुच्चय ॥ ह ३ प्रसिद्धिवाचक ॥ अह ४ आदर पूर्वक सम्बोधन वचन ॥ एव५ निश्चय पूर्वक, केवल । एवम्६ इस तरह से ॥ नूनम् ७ निश्चय, वितर्क । शश्वत् ८ निरंतर, सहाय ॥ युगपत् ९ एक समय में ॥ भूयस् १० बहुधा, फिर फिर, अधिकता ॥ कूपत्११प्रश्न, प्रशंसा । सूपत् १२प्रश्न, प्रशंसा, सरस ॥ कुवित्१३बहुपन, प्रशंसा ॥ नेत्१४ शंका, निषेध, विचार, जमावट ॥ चेत्१५जो, यदि ॥ चण्१६ जो । यत्र १७ जहां, निंदा, अक्षमा, आश्चर्य, अनिश्चय ॥ तत्र १८ तहां । क्वचित् १९ क्या है, इष्ट प्रश्न ॥ नह २० नहीं ॥ हन्त २१ खेद, हर्ष, कृपा, वाक्यारंभ ॥ माकिम् २२ माकीम् २३ नाकि २४ वर्जन, नहीं ॥ आकीम्२५ अतिनिश्चित ॥ माङ्२६नहीं ॥ नञ् २७नहीं ॥ यावत्२८ जहांतक । तावत् २९ तहां तक । त्वै ३० कदाचित्, विशेष वितर्क ॥ न्वै ३१ द्वै ३२ वितर्क, कदाचित् । रै ३३ अपमान, दान ॥ श्रौषट् ३४ वौषट् ३५ स्वाहा ३६ देवतार्पण ॥ स्वधा ३७ पित्रर्पण ॥ वषट् ३८ ईश्वरार्पण, यज्ञमें ॥ ओम् ३९ ब्रह्मा, विष्णु, महेश सूचक ॥ तुम ४० तुकार ॥ तथाहि ४१ तैसे ही । खलु ४२ निषेध, वाक्यालङ्कार, निश्चय । किल ४३ निश्चयार्थक, वार्त्तावाचक । अथ ४४ सं-

गल वाचक ॥ सुष्ठु ४५ उत्तम ॥ स्म४६ भूतकाल सूचक पादपूरण ॥ आदह ४७ धिक्कार, हिंसा, आरंभ ॥ उपसर्ग विभक्ति और स्वर के सदृश स्वरूपवाले भी अव्यय होते हैं । यथा अवदत्तम् इस में अव उपसर्ग नहीं है परंतु तत्सदृश है, इसलिये अव्यय है ॥ क्योंकि उपसर्ग होता तो अवत्तम् ऐसा रूप होता ॥ अहंयुः यह विभक्ति प्रत्यय रूप अव्यय है ॥ अस्तिक्षीरा इत्यादिक जानलेना ॥ अ-संबोधन, अधिक्षेप, निषेधवाचक ॥ आ-वाक्य, स्मरणार्थक ॥ इ-संबोधन, निंदा, विस्मय ॥ ई-उ-ऊ-ए-ऐ-ओ-औ-संबोधन वाचक ॥ पशु-सरस ॥ शुकम्-शीघ्रता । यथा-कथा-च-अनादर, किसी प्रकार से ॥ पाट्-प्याट्-अंग-संबोधनार्थक ॥ है-हे-भोः-अये-संबोधनार्थक । द्य-संबोधन, हिंसा, पादपूरण, प्रतिकूल ॥ विषु-नानार्थ, सर्वत्र, जहांतहां ॥ एकपदे-अकस्मात्-एक वक्त में । युत-दोष, निंदा । आतः-यहां से ॥ ये 'च' से आदि लेकर "आतः" तक आकृतिगण ६६ हैं । तद्धित प्रत्ययांत अर्थात् तसिल् प्रत्यय से आदि लेकर पाशप् के पूर्व तक और शस् से लेकर समासान्त के पूर्व तक अव्यय संज्ञक होते हैं । कृत्वसुच् प्रत्यय तथा धा, तिस्, वत्, ना, नाञ ये प्रत्यय जिस के अंत में होंगे वे अव्यय संज्ञक होंगे । कृदन्त प्रत्यय के अन्त में मकार और एच् प्रत्याहार होंगे वह कृदन्त भी अव्यय संज्ञक होगा ॥ यथा ॥ स्मारम् स्मारम् । जीवसे । पिबध्यै ॥ क्त्वा तोसुन् कसुन् ये प्रत्यय जिस के अन्त में होवें ये भी अव्यय संज्ञक होते हैं ॥ यथा कृत्वा उदेतोः विसृपः ॥ अव्ययीभाव समास अव्यय संज्ञक है ॥ जैसा कि अधिहरि ॥ अव्यय संज्ञक से परे आप् या सुप् दोनों का लुक् होता है ॥

यथा तन्त्रशाल्वायाम् । यहां आप् का लोप हुआ है॥१२७॥

तुल्यं त्रिलिङ्गविषयेषु विभक्तिषूत
वाक्येषु तेषु विकृतं न तदव्ययं वै ।
वष्टीति भागुरिरल्लोपमिहाप्यवाप्यो
रापं हलन्तविषयादिति चाव्ययानि ।१२८।

जो शब्द तीनों लिंगों में सातों विभक्तियों में और तीनों ही वचनों में विकार को नहीं प्राप्त होता है वही अव्यय कहलाता है ॥ व्याकरण शास्त्र के आचार्यों में से एक भागुरि नामक आचार्य का यह मत है कि अव और अप उपसर्ग के अकार का लोप होता है और हलन्त शब्दों से स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय करने हों तो केवल आप् ही प्रत्यय होता है। यथा अवगाहः इसका वगाहः । स्नान अर्थ में है । अपिधानम् । इसका पिधानम् । आच्छादन अर्थ में है। वाक् । इसका वाचा निश् । इसका निशा । त्योंही दिश् । इस का दिशा इति अव्यय संपूर्ण हुए ॥१२८।

स्त्रीप्रत्ययेऽत इति टाब्वदजादिकेभ्यः
ङीब्वै तथोगित इति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
टिड्ढादिकेभ्य उत षड्ढिगुणेभ्य एव
चोपसर्जनेन रहितेभ्य इहापि ङीप् स्यात्।१२९।

अजादिक गण से और अकारान्त शब्द से स्त्री प्रत्यय में आप् प्रत्यय होता है । यथा । अजा बकरी एडका भेषी । अश्वा घोड़ी । चटका चिड़िया । मूषिका उंदरी । बाला कन्या । वत्सा वाछडी । होडा छोकरी । मेदा कन्या । चिलाता कन्या । सर्वा संपूर्ण ।

इत्यादिक २१ शब्द मध्यमा तक आकृति गण है। प्रातिपदिकों में उक् प्रत्याहार इत् हो उस के परे स्त्री लिंग करना हो तो ङीप् प्रत्यय होता है। यह बात व्याकरण शास्त्रज्ञ कहते हैं। जैसा कि भवत् शब्द का ऋ इत् होकर भवत्-न्-ई। भवन्ती पचत्- पचन्ती। रसो-ईदारिणी। टित्-ढ-अण्-अञ्-द्वयसच्-दघ्नच्-मात्रच् तयप्-ठक्-ठञ्-कञ् और क्वरप् तक द्वादश प्रत्ययों का उपसर्जन के विना अवयव रूपी अकार जिसके अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक को स्त्री प्रत्यय करना चाहै तो ङीप् होता है। यथा कुरुचरी। कुरुदेश में जानेवाली स्त्री। नदी. नदी। देवी. राजराणी। सौपर्णेयी. गरुडवंश की कन्या। ऐन्द्री ऋचा। औत्सी उत्सवंश की कन्या। ऊरुद्वयसी. तद्वत्॥ ऊरुदघ्नी. जंघासमऊंची। ऊरुमात्री. तद्वत्॥ पंचतयी. पांच अंगवाली॥ आक्षिकी पाशा रमनेवाली॥ प्रास्थिकी. प्रस्थमापमयी॥ लावणिकी. लूण वेचनेवाली। यादृशी. इस जैसी। इत्यादिक जानलेना॥ १२९॥

ङीप् स्याद्यञन्तविषयात्किल तद्धितीय-
यस्यैव लोप इह चेति परे हलस्तु।
ष्फो वा यञन्तविषयादिह तद्धितः सः
षिद्गौरकादिकगणादपि ङीष् सदैव।१३०।

अकार का लोप करने के अनन्तर यञ् प्रत्याहार अंतवाले शब्द को ङीप् प्रत्यय होता है। ई परे होनेसे हल् से परे तद्धित यकार का लोप होता है॥ यथा गार्ग्य इस में अकार लोप होने से गार्ग्य्-ई-इसमें यकार लोप होने से गार्गी॥ गर्ग वंश की कन्या॥ यञन्त से

परे ' ष्फ ' विकल्प से होता है और वह तद्धित संज्ञक होता है। फ़िर फ को आयन् आदेश होकर फिर ङीष् होने से गार्ग्यायणी (गर्ग वंश की कन्या) होती है गौर से लेकर १५१ शब्द अर्थात् पितामही तक आकृति गण है उस से ङीष् प्रत्यय होता है। इसी तरह-न र्त्तकी-गौरी-अनड्वाही ॥ १३० ॥

बाल्ये वयस्यपि च ङीप् प्रभवत्यदन्तात्
ङीप् स्याद्विगोर्भवति तस्य न एव ङीब्वा।
वर्णानुदात्तविषयाद्गुणवाच्युतो वा
बव्हादिकेभ्य इति ङीष् पुरुषस्य योगात्।१३१।
आख्याविधौ भवति कात्किल प्रत्ययस्थात्
पूर्वात इद्भवति चाप्यसुपः परे वै।
ङीषाऽऽनुगागम इहापि रसादिसंज्ञे
इन्द्रादिके करणपूर्वपरात्तु ङीष् स्यात्॥१३२॥

प्रथम वयो वाचक अकारान्त प्रातिपदिक से परे ङीप् होता है। यथा-कुमारी। अकारान्त द्विगु समास से परे ङीप् होता है॥ यथा त्रिलोकी ॥ त्रिफला-अनीका। ये अजादिक होने से टाप् होता है ङीप् नहीं होगा॥ उपसर्जन विना और वर्ण वाचक प्रातिपदिक के अन्त में अनुदात्त हो तथा जिसकी उपधा में त् होय उससे परे विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है और उपधाभूत त् को न् होता है विकल्प से। यथा एत-ई एत्-ई-एन् -इस का एनी हुआ। अथवा-एता हुआ॥ रोहित ई-रोहित्-ई-रोहिन्- इस का रोहिणी, रोहिता, हो-

ते हैं। उकारान्त गुणवाचक प्रातिपदिक से परे स्त्रीलिंग में ङीष् होता है॥ यथा-मृदु-ई-मृद्व्-ई मृद्वी ॥ अथवा मृदुः। कोमल स्त्री। बहु आदि गणों के शब्दों से परे स्त्रीलिंग में ङीष् होता है विकल्प से॥ बहु-ई-बह्वी॥ अथवा बहुः। पुल्लिङ्ग वाचक शब्द सबंधी को स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय होता है॥ गोप-ई-गोप्-ई-गोपी॥ गोप की स्त्री॥ प्रत्ययस्थित ककार से पूर्व अकार को इकार होता है आप् परे होने से परंतु वह आप् सुप् से परे न होने से। यथा-सर्वक-आ-सर्व्-इ-क-आ-इसका-सर्विका॥ कारक शब्द का कारिका। इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिम-अरण्य-यव-यवन-मातुल-और आचार्य इन् से परे ङीष्प्रत्यय होता है और उसके साथ ही आनुक् का आगम होता है। यथा-इन्द्र-आन्-ई-इसका इंद्राणी। वरुणानी। भवानी। सर्वाणी। इसी तरह शेष जान लेना. जिसके पूर्व करण कारक वाचक हो ऐसा जो क्रीत शब्द उससे परे ङीष् प्रत्यय होता है। यथा, वस्त्रक्रीती किसी जगह धनक्रीता ऐसा भी होता है।

संयोगभिन्नविषयोपधकोपसर्गात्
स्वाङ्गात्तदन्तविषयादत एव ङीष् वा।
क्रोडादिबह्वच इहापि न ङीष् तथैव
संज्ञामयान्नखमुखादपि नैव ङीष् स्यात्॥१२३॥

जिसकी उपधा में संयोग न होय ऐसा देह का अवयव वाचक उपसर्जन प्रातिपदिक के अन्त में हो तो तिससे परे विकल्प करके ङीष् होता है। यथा, अतिकेशी। पक्ष में, अतिकेशा। चन्द्रमुखी। चन्द्रमुख क्रोडादिक गण के देह अवयव वाचक शब्दों से परे

ता जो-शारीरिक अंग वाचक शब्दों में बहु अच् होय तिन से परे ङीष् नहीं होता है । यथा, कल्याणक्रोडा। सुजघना । नख और मुख शब्दों के समुदाय से संज्ञार्थ वाचकशब्द होता हो तो उन से परे ङीष् प्रत्यय नहींहोता है । यथा, शूर्पणखा । रावण की बहिन ॥१३ ॥

संज्ञाविधावग इहैव तु नस्य णो वै
चाऽस्त्रीमयाद्भवति ङीष् तदयोपधाद्धि ।
जातेरितो मनुजजातिपदात्तथैव
तत्राऽप्ययोपधजजातित ऊङुतः स्यात् ॥ १३४॥

पूर्वपदस्थ निमित्त जो र और ष तिन से परे नकार को णकार होता है गकार का व्यवधान होने से नहीं होता है । यथा, शूर्पणखा । जातिवाचक प्रातिपदिक जो स्त्रीलिंग न हो और जिसकी उपधा में यकार न हो तो उसको स्त्रीलिंग में ङीष् होता है ।यथा-तटी-वृषली-कठी-बह्वृची । मनुष्य जातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिक से परे ङीष् होता है । यथा, दाक्षी । मनुष्य जातिवाचक उकारान्त प्रातिपदिक की उपधा में यकार न हो तिससे परे ऊङ् प्रत्यय होता है । यथा-कुरु-ऊ-कुरूः।॥ १३४ ॥

पङ्गोः किलोङ्श्वसुरपद्याविधावुतश्चा
कारस्य लोपकरणेन तदूङ् भवेद्वै ।
ऊरूत्तरात्पदयुतादुपमोदिताच्च
ह्यूङ्संहितादिकसमुद्रपदेऽप एव ॥१३५॥

पंगु शब्द से परे भी ऊङ्प्रत्यय होता है । यथा पंगु-ऊ-पंगूः । संहित-शफ-लक्षण और वाम इन शब्दों

में से कोई भी शब्द आदि में है जिसके ऐसे ऊरू शब्द से परे ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा, संहितोरूः। शफोरूः लक्षणोरूः। वामोरूः ॥ १३५ ॥

जातेरतस्त्विति च शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्
यूनस्तिरत्र महिलाविषये सदैव ।
स्त्रीप्रत्यया इति मयात्र मुदेऽर्भकानां
संक्षिप्तसाधनमुखा विहिताश्च पद्ये ॥१३६॥

शार्ङ्गरव से आदि लेकर २८ शब्दों की संज्ञा शार्ङ्गरवादि गण है इसके जातिवाचक शब्दों से परे और अञ् का अकार उस जाति वाचक प्रातिपदिक के अन्त में हो तिससे परे ङीन् प्रत्यय होता है स्त्रीलिंग में. यथा शार्ङ्गरवी। वैदी। ब्राह्मणी। स्त्रीवाचक युवन् शब्द के परे ति प्रत्यय होता है। यथा-युवन्-ति-सु-युवतिः। युवा स्त्री। ये स्त्री प्रत्यय मैंने विद्यार्थी बालकों के आनंददायक संक्षेप साधनिका युक्त सरल रीति से इस पद्य व्याकरण के श्लोकों में सूत्रार्थ रूप से लिखे हैं॥ ॥ १३६ ॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः समाप्ताः ॥

तत्रापि लिंगपरिमाणजवाक्यखंडे
ह्यर्थे च प्रातिपदिके प्रथमा विभक्तिः ॥
सम्बोधने किल तथेप्सितमेव कर्त्तुः ।
कर्मापि यद्भवति कर्मणि च द्वितीया॥१३७॥

प्रातिपदिक अर्थवाची लिङ्ग परिमाण और वचन मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। और नियत है उपस्थिति जिसकी उसको प्रातिपदिक कहते हैं। यथा। उच्चैः नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। लिंग मात्र में तटः। तटी।

तटम् । परिमाण मात्र में ॥ द्रोणो व्रीहिः । वचन संख्या में एकः । द्वौ । बहवः॥ यहां सर्वत्र प्रथमाविभक्ति होती है। संबोधन में प्रथमा विभक्ति होती है । यथा- हे कृष्ण! यहां प्रथमा हुई है॥ कर्त्ता का क्रिया करके ग्रहण करने को अत्यंत वांछा युक्त कारक कर्म संज्ञक होता है । अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है । यथा-हरिं भजति। इस अनुक्तकर्म में द्वितीया हुई है. क्योंकि अभिहित अर्थात् उक्त कर्म में तो प्रथमा होती है । यथा-हरिः सेव्यते । लक्ष्म्या सेवितः ॥१३७॥

यत्कारकं त्वकथितं खलु कर्मसंज्ञं
कर्ता स्वतंत्र इह तत्करणं सुसाध्यम् ॥
चेत्कर्त्तरीह करणे च भवेत् तृतीया
हेतौ च तद्वदपि शास्त्रकृता प्रयुक्ता ॥१३८॥

अपादान प्रभृति विशेषों करके अविवक्षित कारक कर्म संज्ञक होता है । यथा-दुह्-याच्-पच्-दण्ड-रुधि-प्रच्छि-चिञ्-ब्रू-शासु-जि-मन्थ्-और मुष् इनके और-नी-हृ-कृष्-वह्-इनका कर्म के सहवर्त्ति जो योग होवे वह अकथित कर्म कहा जाता है। जैसाकि गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गान्शतं दण्डयति। व्रजमवरुणाद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि । इत्यादिक रचना में अकथित कारक कर्म संज्ञक होता है । इन सब स्थानों में अकथित कारक कर्म संज्ञक होकर अनुक्तकर्म में द्वितीया हुई है । क्रिया में स्वतंत्रता से विवक्षित अर्थवाला कर्त्ता होता है । क्रिया की सिद्धि में अतिशय उपकारक करण संज्ञक होता है । अनुक्त कर्त्ता में और करण में तृतीया विभक्ति होती है । यथा-रामेण बाणेन हतो

वाली। इस रचना में रामेण अनुक्तकर्त्ता में तृतीया और बाणेन अनुक्तकरण में तृतीया होती है। इसी तरह हेतु में भी तृतीया विभक्ति शास्त्रकार ने कही है॥१३८॥

निंदार्थवाचकपदे भवतीह दाण-
स्तद्वत्तुरीयविषया विहिता तृतीया ॥
संयच्छते धनमहो वसनं च दास्या
विप्रोऽधमोऽधिकृतमत्र मनोरमायाम्॥१३९॥

अशिष्ट अर्थात् निंदावाचक दाण् धातु के प्रयोग में भी चतुर्थी विभक्ति के अर्थ वाचक तृतीया विभक्ति होती है। यथा-यह अधम विप्र दास्या अर्थात् दासी के अर्थ धन और वस्त्र का दान करता है तो इस रचना में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया दास्या होती है। यह वृत्त भट्टोजी दीक्षित ने प्रौढमनोरमा में लिखा है ॥ १३९ ॥

सा शब्दकौस्तुभ उतापि विवेचयित्वा
ऽशिष्टार्थ एव च भवेद्धि तथैव रीत्या ॥
शब्देन्दुशेखरमतेऽपि तुरीयिकार्थे
नागेशभट्टरचिते विहिता तृतीया-
ऽभिप्रैति यं किल कृतेन तु संप्रदानं
दाणस्तु तद्भवति कारकमेव तत्र ॥
शिष्टार्थवाचकपदे मुनिना प्रणीतं
तत्संप्रदानमिति धर्मविधौ सदैव ॥१४०॥१४१॥

इसी चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में तृतीया विभक्ति शब्दकौस्तुभ ग्रंथ में भी विवेचन करके श्रीमहामहोपाध्याय भट्टोजि दीक्षित के पौत्र महामहोपाध्याय श्री-

हरिदीक्षित ने भी अशिष्टार्थ में लिखी है और इसी प्रकार से नागेशभट्ट विरचित लघुशब्देन्दुशेखर में भी चतुर्थी के अर्थ में तृतीया कही है। दान के कर्म करके जिसको वांछित करे वह संप्रदान संज्ञक होता है। परन्तु दण धातु संबधी यह कारक श्रेष्ठ अर्थ और धर्म विधि ही में संप्रदान संज्ञक सुनि प्रणीत है अन्यथा नहीं है। ॥ १६० ॥ १६१ ॥

तत्संप्रदानसमयेऽपि भवेच्चतुर्थी
सा वै भवेच्च नमसादिरसप्रयोगे-
ऽपादानसंज्ञकमपाय इति ध्रुवं स्यात्
तत्पञ्चमी वदति शेष उतापि षष्ठी ॥१४२॥

उस संप्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है जैसा कि-विप्राय गां ददाति। इस रचना में विप्राय यह सम्प्रदान में चतुर्थी हुई है। नमस्-स्वस्ति-स्वाहा-स्वधा अलंवषट्-इन के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है यथा-हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति; अग्नये स्वाहा. पितृभ्यःस्वधा। अलम्-इस का पर्याप्ति अर्थ में ग्रहण होता है यथा-दैत्येभ्यो हरिरलम्। इत्यादिक जान लेना। अपाय अर्थात् भिन्न होना साध्य होने से निश्चय अवधिभूत कारक अपादान होता है। उस अपादान में पंचमी विभक्ति होती है। यथा-ग्रामात् आयाति। धावतोऽश्वात् पतति। इत्यादिक जान लेना॥ कारक और प्रातिपदिक से भिन्न अर्थात् रहित और स्वस्वामिभाव प्रभृति संवन्धवान् शेष होवे तब उस में षष्ठी विभक्ति होती है यथा-राज्ञः पुरुषः॥ यहां राज्ञः यह संबन्ध में षष्ठी हुई॥ कर्म प्रभृति के संबंध मात्र की विवक्षा में षष्ठी होती है

यथा, सतां गतम्। सर्पिषो जानीते ॥ इन आदि के स्थल में कर्म प्रभृति में षष्ठी होती है ॥ १४२ ॥

नन्वत्र कारकविधौ न मता किमर्थं
संम्बधवाचकपदे विहितापि षष्ठी ॥
तस्योत्तरे च किलकारकहेतुभूता
नित्यं क्रिया भवति शास्त्रकृता प्रयुक्ता ॥१४३॥
ज्ञेयं क्रियाजनकमेव हि कारकत्वं
भाष्ये करोतिवचनस्य प्रवर्त्तनाद्वै ॥
पन्थानमात्मजमिह द्विजपुङ्गवस्य
पृच्छत्यतोपि न हि कारकतेत्यवैमि ॥ १४४ ॥
तस्मात् क्रियान्वयविधिः प्रभवेदिहैषां
स्वावान्तरान्वयप्रधानकृतेः क्रियायाः ॥
निष्पादकत्वमिति नैव मता तु षष्ठी
शब्देन्दुशेखर इहापि मया प्रदिष्टा ॥ १४५ ॥

ननु इति शंकायाम् अर्थात् यह शंका प्रकट हुई कि इस कारक विधि में संबध में षष्ठी विभक्ति को क्यों नहीं शास्त्रकार ने मानी है। उसके उत्तर में यह वचन है कि कारक वही कहलाता है कि वह क्रियाजनक हो यथा भाष्ये करोति, क्रियां निर्वर्तयाति इतिव्युत्पत्ति प्रदर्शनात् अर्थात् करोति, कोर्थः क्रियां निर्वर्त्तयाति अर्थात् क्रियाका निर्वर्तन करनेवाली. इस व्युत्पत्ति के देखने से स्पष्ट होता है कि क्रियाजनक कारक होता है। ब्राह्मण के पुत्र को मार्ग प्रते पूछता है इस रचना में ब्राह्मण के कारकत्व नहीं है पुत्र करके अन्यथासिद्धि करके पिता के अभाव से, इस कारण से इन कारकों का क्रियाङ्गी

में अन्वय होता है क्योंकि सर्व कारकों का निज निज अवान्तर क्रिया द्वारा प्रधान क्रिया निष्पादकपन जानलेना. इस हेतु से संबन्धे षष्ठी विभक्ति पाणिनि मुनि ने "षष्ठी शेषे" इस सूत्रार्थ में कारक प्रातिपदिकार्थ व्यतिरिक्त अर्थ किया है। यह परिहार लघुशब्देन्दुशेखर में नागेशभट्ट ने लिखा है. उस के मत से मैंने भी इस पद्यव्याकरण में योजना की है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

आधारकेऽधिकरणे किल सप्तमी स्यात्
दूरान्तिकार्थविषयेभ्य उतापि तद्वत् ॥
इत्येव बोधकरणाय तु कारकेषु
येऽर्था विभक्तिविषया विहिता मयाऽत्र ॥१४६॥

कर्त्ता और कर्म द्वारा तन्निष्ठक्रिया का आधार हो वह कारक अधिकरण वाचक होता है। अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। दूर और अन्तिक अर्थ वालों से भी सप्तमी विभक्ति जानलेना। औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक ये तीन प्रकार आधार के हैं यथा कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्नात्मास्ति। वनस्य दूरे। वनस्य अन्तिके। इन सब वाक्यवृंद में अधिकरण है इसलिये सप्तमी हुई है। इसप्रकार से विद्यार्थियों के बोधकराने के अर्थ कारकों में विभक्तियों का अर्थ जैसा कि प्राचीन महर्षियों ने कहा है मैंने भी इस पद्यव्याकरण में रक्खा है ।१४६।

ज्ञेयस्समर्थ इति तत्र विधिः पदस्य
तस्मिन् समासविषयोपि च प्राक्कडारात् ॥
वा सुप्सुपा सह समासविधिः प्रदिष्ट

श्चाग्रेऽव्ययोद्भवसमास इह प्रवृत्तः ॥ १४७ ॥

पद सम्बंधी जो विधि होती है वह समर्थ के आधीन जानलेना । कडाराः कर्मधारये । इस सूत्र से पूर्व समास वह अधिकारी कियागया है । एक सुबन्त के साथ दूसरा सुबन्त विकल्प से समास को प्राप्तहोगा । अब आगे अव्ययीभाव समास प्रवृत्त हुआ है ॥ १४७ ॥

अर्थे विभक्तिमुखकेऽव्ययमेव तेन
नित्यं सुबन्तविषयेण समासमेति ॥
चाऽविग्रहोऽस्वपदविग्रहवान् भवेत्स
उपसर्जनाख्यमिति चेत्प्रथमोदितं च ॥१४८॥

विभक्ति का अर्थ प्रकाश करनेवाला, समीपवाचक, समृद्धिवाचक, वृद्धिवाचक, अर्थाभाववाचक, नाशवाचक, असम्प्रातिवाचक, शब्द प्रादुर्भावप्रकाशक, पश्चाद्वाचक, यथा और क्रमवाचक सम और सदृशवाचक प्राप्ति और संपूर्णरूपतावाचक और अन्तवाचक अव्यय का समास सुबन्त के साथ नित्य होता है । नित्यसमास का बहुधा विग्रह नहीं होता है यदि होता है तौ समस्यमानपद से भिन्न पद के साथ होता है समास विधायक शास्त्र में प्रथमाविभक्ति युक्त हो वह उपसर्जन होता है । यथा-हरि-ङि- अधि। इसमें अधि प्रथमान्त है वह उपसर्जन संज्ञक है ॥ १४८ ॥

उपसर्जनं च किल पूर्वप्रयोज्यमत्र
यस्त्वव्ययोद्भवसमासनपुंसकाख्यः ॥
स्यादमृशराभिधविभक्तिमृतेऽप्यदन्तात्

लुङ् नाऽव्ययोद्भवमथालुसुप एव तत्र ॥१४९॥

समास में उपसर्जन का प्रथम प्रयोग होता है। यथा अधिहरि। यहां, ङि सुप् का लुक् होने से यह रूप सिद्ध हुआ। अव्ययीभाव समास नपुंसकलिंग होता है। यथा, गोपा अस्मिन् इति अधिगोपम्। बहुत गोप हैं जिसमें वह अधिगोपम् कहलाता है। अदन्त अव्ययीभाव समास से परे सुप् का लुक् नहीं होता है परंतु पंचमी विभक्ति के विना अन्य विभक्तियों को अम् आदेश होता है।१४९।

अम्वा त्रिसप्तकविभक्तिपदेपि तस्मिन्
स्यादव्ययोद्भवसमासविधौ सहस्य ॥
सोऽकाल एव गणना सह वाहिनीभि
ष्टच्प्रत्ययोपि शरदादिकतः समासे ॥१५०॥

अदन्त अव्ययीभाव समास से परे तृतीया और सप्तमी विभक्ति को अम् आदेश होता है यथा- उपकृष्णम्। उपकृष्णेन। कृष्ण के पास। ये दोनों प्रयोग तृतीया में समीपार्थक जानलेना। समृद्धि अर्थ में मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम्। इसी तरह वृद्धि अभाव नाश प्रादुर्भाव आदि के प्रयोग समझ लेना॥ यथा अव्यय के चार अर्थ होते हैं। योग्यता वीप्सा पदार्थानतिवृत्ति साहश्य. ये सब समझलेना। उत्तर पद काल वाचक न होने से अव्ययीभाव समास में सह को स आदेश होता है। यथा सह हरि। सहरि। हरेः साहश्यम्। हरि के तुल्य। इसीतरह शेष जानलेना। नदीवाचक शब्द के साथ संख्या वाचक शब्द का समास विकल्प से होता है परंतु मुनि मत से यह समाहार में युक्त समझा जाता है। यथा पंचानां गंगानां समाहारः, पांच गंगाओं का एकत्र भाव वह

पंचगवम् । द्वयोर्यमुनयोः समाहारः । दो यमुनाओं का समुदाय वह । द्वियमुनम् । अव्ययीभाव समास में शरद् आदि से समासान्त अवयव टच् प्रत्यय होता है. यथा शरदः समीपम् । शरद के समीप वह । उपशरद्-अ-अम् । उपशरदम् । प्रतिविपाशम् ॥ १५० ॥

टच्चान एव किल नान्तटिलोप एव
चेत्तद्धितेऽन इति षण्ढत एव टज्वा ॥
टज्वा झयन्तविषयादपि तद्वदत्र ॥
चेत्यव्ययोद्भवसमास इह प्रपूर्णः ॥ १५१ ॥

अव्ययीभाव समास के अन्त में अन् हो उसके परे टच् प्रत्यय होता है । तद्धित प्रत्यय परे होने से भ संज्ञक नकारान्त शब्द की टि का लोप होता है । यथा-उप-राजन्-अ-अम् । टि का लोप होने से उप-राज्-अ-अम् । उपराजम् । राजा के समीप । अध्यात्मम् । आत्मा विषयक । अव्ययीभाव समास के अंत में नपुंसकलिंग वाचक अन् से परे टच् प्रत्यय विकल्प से होता है । यथा उपचर्मम् । पक्ष में उपचर्म । चर्म के समीपवर्त्ती । अव्ययीभाव के अन्त में झय् प्रत्याहार का कोई भी वर्ण हो उससे परे टच् प्रत्यय विकल्प से होता है । यथा उपसमिध् का-उपसमिधम् । उपसमित् । इति अव्ययीभाव समास पूर्ण भया ॥ १५१ ॥

ख्यातश्च तत्पुरुषसमास इहाधिकारे
ज्ञेयो द्विगुश्च किल तत्पुरुषसंज्ञको वै ॥
तद्वाच्छ्रितादिकसुबन्तपदैर्द्विसंज्ञं

स्यातश्च तन्नरसमासविधिर्विकल्पात् ।१५२

तत्पुरुष इस पद का अधिकार "शेषो बहुब्रीहिः" इस सूत्र के प्रथम प्रत्येक सूत्र में समझलेना। श्रितु भी तत्पुरुष संज्ञक होता है श्रित-अतीत-पतित-गत-अत्यस्त-प्राप्त और आपन्न इतने सुबन्त प्रकृति के साथ में द्वितीयान्त का समास विकल्प से होता है और वह तत्पुरुष संज्ञक है १५२

वा शंभुलोचनमितान्तपदं गुणेन
प्राग्वच्च कर्तृकरणेपि भवेत्तृतीया ॥
तुर्यार्थवाचिभिरथोर्थमुखैश्च तद्वत्
या पञ्चमी भवति तत्पुरुषे भयेन ॥१५३॥

तृतीया के अर्थ से जो गुण सम्पादन किया जाता है उस गुण वाचक शब्द के साथ तृतीयान्त का समास विकल्प से होता है। यथा-शङ्कुलया खण्डः। शङ्कुलाखण्डः। धान्येनार्थः। धान्यार्थः। कर्ता या करण अर्थ में जो तृतीयान्त उस को नाना प्रकार से कृदन्त के साथ विकल्प से समास होता है। यथा-हरित्रातः। हरिणा त्रातः। नखैर्भिन्नः। नखभिन्नः। अर्थ-बलि-हित-सुख-रक्षित-इनके साथ तथा जो चतुर्थ्यन्त के लिये हो उनके वाचक शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त का विकल्प से समास होता है। यथा-यूपदारु। यूपाय दारु। भय शब्द के साथ पञ्चम्यन्त सुबन्त का समास होता है। यथा-चोरात् भयम्। चोरभयम्। चोर से भय ॥ १५३ ॥

स्तोकान्तिकाद्यर्थोपि किल तत्पुरुषे विकल्पात्
क्तेनाथ शायकापविभक्त्यलुगेव तेभ्य ॥

षष्ठी सुपावयविना सह पूर्वकाद्या
श्चार्धं नपुंसकमथेह च सप्तमी तैः ॥१५४॥
शौण्डैश्च दिग्गणितशब्दपदे तु संज्ञा-
यां तद्धितार्थविषयोत्तरपद्यभाज्जि ॥
दिक्पूर्वतोऽञ इति वृद्धिरचामचादे-
र्नित्यं तु तद्धितपदेष्वथ गोऽन्ततष्टच् ॥ १५५ ।

स्तोक, अन्तिक और दूर शब्द, तथा इनके अर्थ धाचक शब्द तथा कृच्छ् शब्द पञ्चम्यंत हो तो उनको क्तान्त प्रत्यय के साथ विकल्प से समास होता है । परन्तु उत्तर पद परे होने से स्तोक आदि शब्दों से परे पञ्चमी विभक्ति का लुक् नहीं होता है। यथा-स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः। हरकिसी सुवन्त के साथ षष्ठ्यन्त सुवन्त का विकल्प से समास होता है । यथा राजपुरुषः। राज्ञः पुरुषः। पूर्व अपर अधर तथा उत्तर पश्चात् भाग इतने शब्दों का एकत्व संख्या बिशिष्ट अवयव के साथ विकल्प से समास होता है । यथा-पूर्वं कायस्य । पूर्वकायः । अपरकायः । अर्धपिप्पली । सप्तम्यन्त सुवन्त के शौण्ड आदि गण के शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है । यथा अक्षशौण्डः। अक्षेषु शौण्डः। दिशावाचक अथवा संख्यावाचक सुवंत के तुल्य अधिकरणवाला सुवन्त के साथ संज्ञा अर्थ में ही समास को प्राप्त होता है ॥ यथा पूर्वेषुकामशर्मा ॥ सप्तर्षयः ॥ उत्तरावृक्षाः ॥ पंचब्राह्मणाः ॥ जब कि तद्धित प्रत्यय के अर्थ की विषयता हो, या उत्तर पद पर हो, या समाहार वाच्य हो

तो दिशा या संख्या वाचक शब्दों का विकल्प से समास होता है ॥ यथा-पूर्वस्यां शालायां भवः ॥ ऐसी व्यवस्था में जो समास किया हुआ पद किसी का संज्ञा वाचक न होता हो तब उससे परे भव आदिक अर्थों में तद्धित संज्ञक ञ प्रत्यय होता है तब पूर्वशाला-ञ ॥ इसमें ॥ ञित् अथवा णित् तद्धित प्रत्यय परे होने से अचों में से प्रथम अच् को वृद्धि होती है ॥ तब पौर्वशाला-अ । आकार का लोप होने से पौर्वशालः । जिस तत्पुरुष के अंत में गो शब्द हो उस से परे तद्धित प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ हो तो तद्धित संज्ञक टच् प्रत्यय अंत अवयव होता है ॥ यथा-पंच गावो धनं यस्य ॥ पंचगवधनः। पंचभिर्गोभिः क्रीतः ॥ पञ्चगुः ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

स्यात्कर्मधारयवदेवहि तत्नरोसौ
ख्यातस्समाधिकरणो द्विगुपूर्वसंख्यः ॥
चेदेकवाक्यमिह साम्यपदे द्विगुर्वै
द्वन्द्वो नपुंसकवदेव विशेषणं च ॥ १५६ ॥
वा कर्मधारयविधावुपमानसाम्ये
चौपम्यतत्नर इहापि सुपा नञेव ।
लोपो नञो न इति नुट् त्वचि तत्र तस्मात्
सामर्थ्यके कुगतिप्रादय एव नित्यम् ॥ १५७ ॥

जो तत्पुरुष समास का पद समान विभक्त्यन्त हो और जिस के समान अधिकरण हो वह कर्मधारय समास होता है ॥ जिस समास का पूर्व पद संख्या वा

चक हो तथा उस समास में लिखित तीन प्रकार में से किसी एक प्रकार से हुआ हो तो वह द्विगु समास कहलाता है ॥ जो समाहार द्विगु समास से प्रकाशित हो वह एकवचन होता है। समाहार अर्थ वाचक द्विगु अथवा द्वन्द्व समास के परे नपुंसकलिंग प्रत्यय होता है यथा पंचानां गवां समाहारः। इति पञ्चगवम् ॥ भेदक अर्थात् विशेषण, विशेष्य के साथ नाना प्रकार से विकल्प से समस्यमान होता है ॥ नीलम् उत्पलम् ॥ नीलोत्पलम् ॥ सामान्य वचन के साथ उपमान वाचक शब्द का समास होता है ॥ यथा घन इव श्यामः। घनश्यामः। नञ् अव्यय के सुबंत के साथ विकल्प से समास होता है ॥ उत्तर पद परे होने से नञ् के नकार का लोप होता है। यथा न ब्राह्मणः । अब्राह्मणः। जो नञ् के नकार का लोप हुआ हो उस से परे अजादि पद हो तो उस को नुट् का आगम होता है। जैसा कि न अश्वः। अनश्वः। न एकधा ॥ अनेकधा ॥ कु शब्द तथा गति संज्ञक शब्द तथा प्र आदि शब्द ये सब समर्थ के साथ अर्थात् एकार्थीभाव होने की योग्यता रखते हों तो सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। यथा कुत्सितः पुरुषः ॥ कुपुरुषः ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

ऊर्यादयोऽपि नितरां क्रियया च योगे
ज्ञेयास्तथा गतिसमा नियतं विभक्त्या ॥
उपसर्जनं च न हि पूर्वनिपातभाक्तत्
गोश्च स्त्रियाश्च लघुतास्त्युपसर्जनत्वे ।१५८।

ऊरी आदि गण तथा च्वि प्रत्ययान्त तथा डाच् प्रत्य

यान्त शब्दों का क्रिया के साथ योग हो तो वे गति संज्ञक कहाते हैं। यथा ऊरी-कृत्य, ऊरीकृत्य। शुक्ली-कृत्य। शुक्ली कृत्य। इत्यादिक जान लेना। प्र आदि उपसर्ग जबकि गमनार्थ वाचक हों अथवा गत के सदृश शब्द के अर्थ में हों तब वे प्रथमान्त के साथ समस्यमान होते हैं॥ यथा प्रगत आचार्यः॥ प्राचार्यः॥ विग्रह में जिनके नियत एक ही विभक्ति होती है वे उपसर्जन कहाते हैं॥ परन्तु उनके प्रयोग प्रमाणे पूर्व पद के स्थान में नहीं होते हैं. जो प्रातिपदिक का अन्त अवयव उपसर्जन संज्ञक गो शब्द हो अथवा स्त्री प्रत्ययान्त हो तो उन को ह्रस्व होता है॥ मालां अतिक्रांतः॥ अतिमालः॥ १५८॥

यत्सप्तमीस्थमुपपद्यमतिङ् च संख्यां
ऽगुल्यन्तजस्य किल चाजहरादिरात्रेः॥
रात्राह्नकाहविषयाः खलु पुंसि टच् स्या
द्राजादिशब्दजनरान्महतश्च तद्वत्॥१५९॥

साम्योत्तरे च निजजातिमये परेप्यात्
संख्योत्तराद्भवति सुग्वसुशब्दतोऽत्रा
ऽशीतौ न चात् परवदेव भवेच्च लिङ्गं
यद्द्वन्द्वतन्नरविधौ किल पुंसि पराह्ने।१६०।

अर्धर्चमुख्यविषया इति तन्नरोऽत्र
बह्होदनाख्य इति चाधिकृतौ प्रयुक्तः॥
काख्यान्तनैकपदमन्यपदार्थभाजिं
वा वै समस्यत इहापि च तस्य नाम॥१६१॥

कर्मणि अण् इस सूत्र में कर्मणि इत्यादि जो सप्तम्यन्त पद है उससे वाच्यमान जो कुंभ आदि तिसका वाचक जो पद उसको उपपद कहते हैं। उपपद संज्ञक का सम र्थ अर्थात् एकार्थीभाव योग्य शब्द के साथ नित्य समा स होता है परन्तु वह समास तिङन्त के साथ नहीं होता है॥ यथा-कुम्भं करोति॥ कुंभकारः। जिस तत्पुरुष समास के आदि में संख्या वाचक शब्द हो अथवा अ- व्यय हो अथवा अंगुलि शब्द हो तो उनसे समासान्त अव्यय अच् प्रत्यय होता है॥ यथा द्वे-अंगुली प्रमाणं अस्य द्व्यंगुलम्॥ निर्गतं अंगुलिभ्यः निरंगुलम्। अहन् सर्व-एकदेश-संख्यात-पुण्य-इतने शब्दों से परे रात्रि श ब्द आवे तो उनके समास में अच् प्रत्यय होता है। जि स समास में द्वंद्व के तत्पुरुष अन्त अवयव रात्र अथ वा अन्ह अथवा अह शब्द हो तो वह पुल्लिंग वाचक होता है॥ यथा-अहश्च रात्रिश्च॥ अहोरात्रः॥ राजन् अहन् तथा सखि इन शब्दों में से कोई भी तत्पुरुष स मास के अंत में हो तो उसके अंत अवयव टच् प्रत्यय होता है॥ यथा-परम-राजन्-अ-टच्। परमराजः। महत् शब्द के परे समानाधिकरण शब्द आवे अथवा जातीय प्रत्यय आवे तो महत् शब्द को आकार अन्तादेश होता है। यथा-महत्-राजन्-अ। महाराजः। द्वि तथा अष्टन् पद का उत्तरपद संख्या वाचक शब्द हो तो उसको आका रान्तादेश होता है परंतु बहुव्रीहि समास और अशी ति शब्द परे हो तो नहीं होता है॥ उत्तरपद के लिंग प्रमाणे द्वन्द्व तथा तत्पुरुष समास का लिंग होता है यथा-कुक्कुटमयूर्यौ। मयूरीकुक्कुटौ॥ अर्धर्च आदि श

र्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग होते हैं ॥ यथा, अर्धर्चः । अथवा अर्धर्चम् ॥ इसी तरह शेष जान लेना। इति तत्पुरुष समास संपूर्ण हुआ ॥ यहां से प्रारंभ करके द्वन्द्व समास के पूर्व २ इस बहुव्रीहि पद की अनुवृत्ति सब सूत्रों में होती है। समानाधिकरणवाले अनेक प्रथमान्त पदों के तथा प्रथमा रहित अन्य पद पूर्व हो तो उसके साथ समास होता है ॥ और वह बहुव्रीहि कहाता है ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१

> बव्हीहिके सुनिॐविभक्तिविधिस्तु पूर्वे
> सप्तम्यलुक् च हलदन्तत एव तत्र ॥
> पुंवत्स्त्रियाः समविधौ तदनूङ्स्त्रियां वै
> चापूरणीप्रियमुखे च परेऽपि पुंवत् ।१६२।

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त तथा विशेषण पूर्व स्थान में होता है। यथा- चित्रा गावः अस्य। चित्रगुः। कण्ठेकालः। होनेवाला समास संज्ञा वाचक हो तो जिस पद के अन्त में हल् अथवा अकार हो उस से परे सप्तमी का लुक् नहीं होता है। यथा- त्वचिसारः। प्राप्तं उदकं यं। प्राप्तोदकः। ऊढः रथः येन सः, ऊढरथः। इत्यादिक जानलेना। जो समास में समानाधिकरण स्त्रीलिंग उत्तर पद हो और उस का पूर्व पद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग होनेवाला और जिस के परे ऊङ् स्त्रीप्रत्यय की प्राप्ति न हो ऐसा होने से पूर्व पद को पुंवद्भाव होता है, यदि स्त्रीलिंग भी हो तो वह पुल्लिंग होता है। परंतु पूरण प्रत्ययान्त स्त्री वाचक उत्तर पद परे होने में अथवा प्रिया आदि गण का शब्द उत्तर पद में हो तो

उसको पुंवद्भाव नहीं होगा। यथा-चित्रा गावो यस्य सः चित्रगुः । रूपवती भार्या यस्य सः रूपवद्भार्यः ॥१६२॥

अप्पूरणाच्च महिलाविषयात्प्रमाण्याः
सक्थ्यक्षिकान्तपदयोः षच्युकुरसुराऽभ्याम्
मूर्ध्नः ष एव किल लोम्न इहाब्बहिस्तः
पादस्य लोप उत चागजमुख्यकेभ्यः॥१६३॥

पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग उत्तरपद हो अथवा प्रमाणी शब्द उत्तर पद हो तौ बहुव्रीहि समास में अंत्य अवयव अप् प्रत्यय होता है । यथा-कल्याणी पंचमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमाः। रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य सः । स्त्रीप्रमाणः । जो बहुव्रीहि समास के अन्त में सचेतन देह के अवयव वाचक सक्थि (जंघा) और अक्षि इन में से कोई भी हो उस के अंत अवयव को षच् प्रत्यय होता है । यथा. दीर्घसक्थः। जलजाक्षी । जो बहुव्रीहि समास के अंत में द्वि-या-त्रि के परे मूर्द्धन् शब्द आवे तौ उस का अंत अवयव ष प्रत्यय होता है । यथा, द्विमूर्द्धः। त्रिमूर्द्धः। जो बहुव्रीहि समास में अन्तर् या बहिष् शब्द के परे लोमन् शब्द आवे तौ उस के अंत में अप् प्रत्यय होता है । यथा अन्तर्लोमः । बहिर्लोमः । हस्ति आदि शब्दों के विना जो उपमान उस से परे पाद शब्द हो तौ उस के अंत का लोप होता है । यथा, व्याघ्रस्य इव पादौऽस्य व्याघ्रपाद् ॥ १६३ ॥

संख्यासुपूर्वविषयस्य भवेच्च लोप
उदृग्युत्तरस्य किल काकुदशब्दकस्य॥

पूर्णात्परस्य च विकल्पत एव लोपो
मित्रे सुहृद्दुर्हृदितीह भवेच्च शत्रौ ॥ १६४ ॥

संख्या वाचक शब्द तथा सु पूर्व पद से परे पाद श ब्द के अंत का लोप होता है। यथा. द्विपात्। द्विपाद् सुपात्।सुपाद्।उद् तथा वि से परे काकुद शब्द के अन्त का लोप होता है। यथा-उत्काकुत्-द्। विकाकुत्-द् पूर्ण शब्द से परे काकुद शब्द के अंत का लोप विकल्प से होता है। यथा पूर्णकाकुत्। पूर्णकाकुदः। मित्र और अमित्र अर्थ में सु और दुर् से परे हृदय को हृद्भाव निपात से होता है। यथा सुष्टु हृदयं यस्य सः। सुहृत्। दुष्टं हृदयं यस्य ऐसी व्यवस्था में दुर्हृत् ॥१६४॥

कप्स्यादुरोमुखत एव च कस्ककेषु
सः स्याच्च पूर्वमिति कप् विहितो विकल्पात्।
द्वन्द्वो भवेत्तु किल चार्थविधौ विकल्पात्
स्यात्तत्र राजदशनादिषु वै परं तत् ॥१६५॥

जो समास के उत्तर पद में उरस् आदि गण में से कोई भी शब्द हो तो उससे परे कप् प्रत्यय होता है जिस शब्द के अन्त में निष्ठा प्रत्यय हो वह शब्द बहुव्रीहि समास में पूर्व पद के स्थान में होता है। जिस बहुव्रीहि समास से परे समासान्त का विधान कहा नहीं गया हो ऐसे शेष समास से विकल्प से कप् प्रत्यय होता है। यथा-महायशस्कः। पक्षमें।महायशाः।इति बहुव्रीहि समा स पूर्ण भया। चकारार्थ में प्रवर्त्तने वाला अनेक सुब न्त विकल्प से समस्यमान होता है वो द्वन्द्व नाम का कहाता है। चकार चार अर्थ वाचक है। यथा १समुच्चय

२ अन्वाचय ३ इतरेतरयोग ४ समाहार ।राजदन्त आदि गण में जिसका प्रयोग पूर्व पद के साथ करना हो उसका उत्तर पद के स्थान में प्रयोग होता है । यथा दन्तानां राजा । राजदन्तः ॥१६५॥

द्वन्द्वे घिसंज्ञकपदं भवतीह पूर्वं
तत्राऽप्यजादियददन्तमथोहि पूर्वम् ॥
अल्पाच्तरं भवति पूर्वमिहैव नित्यं
मात्रा पिता त्विह च शिष्यत एव वात्र॥१६६॥

द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक पद का पूर्व पद में प्रयोग होता है । यथा-हरिहरौ । जिस शब्द के आदि में अच् हो और अंतमें अत् हो उस का भी द्वन्द्व में पूर्वप्रयोग होता है। यथा शिवकेशवौ। समास में मातृशब्द के साथ पितृ शब्द हो तो विकल्प से पितृ शब्द शेष रहता है। यथा माता च पिता च पितरौ ॥ १६६ ॥

प्राण्यङ्गतूर्यसुखपद्यभृतां सदैव
तत्तैकवच्चुदषहांतपदाट्टजेव ॥
द्वन्द्वस्तु पूर्ण इह चान्तविधिं ब्रवीमि
पूर्वोदितं मुनिमतेन समासमध्ये ॥ १६७ ॥

प्राणी तूर्य और सेना इन तीन शब्दों का द्वन्द्व समास एकवचनान्त होता है । यथा- पाणिपादम् । मार्दङ्गिकपाणविकम् । रथिकाश्वारोहम्। द्वन्द्व समास का अन्तावयव चवर्ग अथवा द अथवा ष् या ह हो वह समास समाहार संज्ञक हो तो टच् प्रत्यय अन्तावयव होता है यथा वाक्त्वचम् । शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्।छत्रोपान

हस् । इति द्वन्द्व समास पूर्ण हुआ॥ और अब समासा न्तविधि जो के पूर्वज मुनियों का कहा हुआ है उसका वर्णन करता हूं ॥ १६७ ॥

ऋक्पूर्वकान्तविभृतां न धुराक्ष एषाऽप्
चादर्शनादजिति चान्तपदे किलाक्ष्णः ॥
उपसर्गतोऽध्वन इहापि तथाच्चनितान्तं
नान्ताच्च सदैव विहितः खलु पूजनाद्वै ।१६८।

ऋच्-पुर्-अप्-धुर् और पथिन् इन में से समास के अ न्तवर्ती हो तो उसको अन्तावयव अ-प्रत्यय होता है। यथा अर्धर्चः । विष्णुपुरम् । विमलापम् । राजधुरा । इत्या दि जान लेना । अक्षिन् शब्द अक्षि अर्थवाचक न हो तब समास में उससे परे अच् प्रत्यय होता है । यथा ग वाक्षः । उपसर्ग से परे अध्वन् शब्द को अन्तावयव अ च् होता है। यथा-प्र-अध्वन्-अ प्राध्वः। रथः। स्तुतिवाच क शब्द से परे शब्द को समासान्तरूप तद्धित प्रत्यय नहीं होता है। यथा-सुराजन् सुराजा। अतिराजा ॥ १६८ ॥ इति समासान्त प्रकरण समास हुआ ॥

प्राधान्यमत्र किल तूर्यविधं विधिज्ञैः
पूर्वोत्तरोभयभवान्यपदार्थकानाम् ॥
वैकल्पिकाच्च विहितो द्विप्रधान एव
तत्पूरुषोऽपि किल पूर्वपरप्रधानः ॥१६९॥
प्राधान्यमेव च यथाऽपरपूर्वकाय
श्चाथोत्तरे पदविधौ समुदाहृतीयम् ॥

श्रीकृष्णसेवक उतारिजनस्तथैव
स्यात्कर्मधारय इहापि युगप्रधानः ॥ १७० ॥

इन समासों में प्राधान्य चार प्रकार का कहा है। पूर्व, उत्तर,पूर्वोत्तर और अन्य पदार्थों के विकल्प से। तत्पुरुष समास द्विप्रधान संज्ञक होता है, उसमें पूर्वप्रधान का प्रधानत्व है वह यथा-पूर्वकायः। अपरकायः। दूसरा उत्तर पदार्थ के प्राधान्य में. जैसा कि कृष्णसेवकः। अरिजनः। कर्मधारय समास भी द्विप्रधान संज्ञक होता है ।१६९-१७०

पूर्वप्रधानसमये नृहरिर्मतो मे
नीलोत्पलं भवति चोत्तरमुख्यतायाम् ॥
वह्रोदनो युगप्रधान इह प्रदिष्ट
श्चान्यत्र चोभयविधौ प्रथितः पदार्थे ॥ १७१ ॥
अन्यत्र यत्किल पदार्थविधौ प्रधानं
यो दृष्टसागरनरः स्मृतकृष्ण एवम् ॥
चेद्द्विप्रधानविषये यदि मुख्यता स्यात्
द्वित्रास्तथैवशरषा अपिसप्तषाः स्युः ॥ १७२ ॥

अब द्विप्रधान संज्ञक कर्मधारय के उदाहरण बतलाता हूं। पूर्व प्रधान में यथा-नृहरिः। उत्तरप्रधान यथा,नीलोत्पलम् बहुव्रीहि समास द्विप्रधान, अन्यत्र और उभयत्र होता है। अन्यत्र पदार्थ में प्राधान्य कहना हूं। यथा-दृष्टसागरनरः। स्मृतकृष्णः। उभयत्र पदार्थ में प्राधान्य यथा-द्वित्राः। पञ्चषाः। सप्तषाः॥ १७१ ॥ १७२ ॥

प्राधान्यतोभयपदार्थमये द्विसंज्ञे
कृष्णाग्रजौ नरहयौ वनगामिनौ द्वौ ॥

यत् त्रिप्रधानविषयोऽव्ययसंज्ञकोपि
पूर्वोत्तरान्यकपदार्थविधौ प्रदिष्टः ॥ १७३ ॥
तत्रापि चोपहरि निर्मनुजं तथैव,
स्यादुत्तरत्र भुवनेपि सुखप्रतीति ॥
अन्यत्र चोद्धतसुरापगदेश एव
चैषां निगद्यत इहैव चतुर्विधत्वम् ॥ १७४ ॥

उभयत्र पदार्थ वाचक द्वन्द्व समास की प्रधानता-यथा कृष्णाग्रजौ । नरहयौ । कृष्ण महाराज और बलदेवजी मनुष्य और घोड़ा वन को जाते हैं । अव्ययीभाव समास त्रि प्रधान होता है । पूर्व पदार्थ में, उत्तर पदार्थ में, अन्य पदार्थ में । उपहरि । निर्मनुजम् । उत्तर पदार्थ में यथा, सुखप्रति । अन्य पदार्थ में । उद्धतसुरापगं देशः । अब समासों के चार भेद कहता हूं॥१७३॥१७४॥

नित्योप्यनित्य इति लुक्त्वमलुक्त्वमेव
तेष्वत्र नित्यकसमासविधौ विधिश्च ॥
यः कुंभकार इति वारणलावकोत्रा
नित्यस्तु राजपुरुषः पुरुषो नृपस्य ॥१७५॥
कृष्णाश्रितः पुरुषपुंगव एव लुक्त्वे
चालुग्विधौ वियतिमेघ इति प्रदिष्टः ॥
इत्थं समासविषयानपि पूर्वशास्त्रा
दाकृष्य पद्यरचनाविषये मयोक्ताः ॥१७६॥

नित्यत्वम्-अनित्यत्वम्-लुक्त्वम्-अलुक्त्वम् । अब नित्य समास यथा, कुम्भकारः । वारणलावकः । अनित्य

समास यथा, राजपुरुषः । राज्ञः पुरुषः । लुक्समास यथा । कृष्णाश्रितः । पुरुषपुङ्गवः। अलुक्समास यथा । वियतिमेघः । इस प्रकार पूर्व शास्त्र से आकर्षण करके समास विषय की इस पद्यव्याकरण में मैंने रचना की है । इति समास के चार भेद समाप्त हुए ॥१७५॥१७६॥

अब तद्धित प्रकरण प्रारंभ होता है. उसके तीन भेद होते हैं ॥

सामान्यवृत्तिरिति चात्रहरिर्गुणीह
तस्य प्रिया गुणवती तु तथाऽव्ययाख्यः ॥
पूर्वेद्युरत्र हरिरेव सुसेव्यते वै
कापेयमेव कपियूथपतौ तु भावः ॥ १७७ ॥
यत्ताद्धितप्रकरणं त्रिविधं मयोक्तं
पद्यात्मके मुनिमतेन मुदे शिशूनाम् ॥
अणूचाश्वपेभ्य इति वृद्धिरचां किलादे
र्दित्यादिकेभ्य इह चोत्तरकेभ्यउद्भयः ॥१७८॥

तद्धित के तीन भेद होते हैं १ सामान्य वृत्ति २ अव्यय संज्ञक ३ भावार्थ वाचक । उनमें सामान्य वृत्ति यथा, हरिर्गुणी । तस्य प्रिया गुणवती । अव्यय संज्ञक यथा, पूर्वेद्युः हरिः सुसेव्यते । भावार्थवाचकयथा कपियूथपतौ कापेयम् इस प्रकार ताद्धित प्रकरण तीन रीति से मुनि मत से मैंने पद्यात्मक व्याकरण में विद्यार्थियों के हर्ष के अर्थ लिखा है । अष्टाध्यायी के क्रम प्रमाणे (तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ॥ ४ । ४ ।२ । इस सूत्र के

पूर्व पृथक्२प्रत्यय जितने अर्थवाचक कहे हैं उन सब अ-
र्थों में (अश्वपति) गण के१७ शब्दों से परे अण् प्रत्यय
होता है। ञित् अथवा णित् ताद्धित प्रत्यय परे होने से
अचों में से आदि के अच् को वृद्धि होती है । यथा-अ
श्वपति-अ-अण् । आश्वपतम् । गाणपतम् । दिति,
अदिति, आदित्य और पति शब्द उत्तर पद हो ऐसे
शब्दों से परे ण्य प्रत्यय होता है। यथा दितेः अपत्यम्,
दैत्यः । आदित्यः । प्राजापत्यः ॥ १७७॥ १७८ ॥

किति तद्धिते परं इहापि भवेच्च वृद्धि
रुत्सादिकेभ्य उतचाऽञ् महिलानराभ्याम्॥
स्यातां तदा नञ्स्नञौ भवनात्सदैव
तस्याप्यपत्यमिति चौगुण एव शश्वत् ॥१७९॥

कित् तद्धित प्रत्यय परे होने से अचों के आदि अच्
को वृद्धि होती है। यथा वाहीकः । उत्स आदि गण के
३६शब्दों से परे अञ् प्रत्यय होता है । यथा औत्सः । इस
सूत्र से ले कर (धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् । ५। २ । १)
इस सू त्र के पूर्व २ जितने अर्थ में प्रत्यय कहे हैं उनके
अर्थ में स्त्री तथा पुंस् शब्द के परे क्रम से नञ् और स्नञ्
प्रत्यय होते हैं । यथा स्त्रैणः। पौंस्नः। जो षष्ठ्यन्त पद में
संधि हुई हो तथा तद्धित प्रत्यय के अर्थ के साथ एकार्थीभा
व रूप के सदृश हो उससे परे अपत्य अर्थ में पूर्वोक्त
तथा पर निर्दिश्यमान प्रत्यय होते हैं। तद्धित प्रत्यय
परे होने से उवर्णांत भसंज्ञक को गुण होता है ॥ यथा
औपगवः आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः ।१७९।

पौत्रादिगोत्रमिति सन्ततिसूचकेन

एकश्च गोत्र इह गर्गमुखेभ्य आ यञ्॥
गोत्रे लुगेव यञञोश्च युवा तु वंश्ये,
पित्रादिके च किल जीवति यूनि गोत्रात् ॥१८०॥

सन्तानत्व करके विवक्षित जो पौत्रादिक वे गोत्र संज्ञक होते हैं ॥ जब कि गोत्र संज्ञक की विवक्षा हो तब मात्र एकही प्रत्यय होता है । यदि यह नियम न किया जाय तो सब मिल के ९९ प्रत्यय होसकते हैं ॥ गोत्र रूप संतान अर्थ में गर्ग से आदि लेकर १०२ शब्दों से परे यञ् प्रत्यय होता है । यथा गार्ग्यः । वात्स्यः । गोत्ररूप संतान अर्थ में यञन्त तथा अञन्त शब्द, उसका अवयव जो यञ् तथा अञ् उसका लुक् होता है; परंतु जब गोत्र प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग हो तो उसके यञ् तथा अञ् का लोप नहीं होता है ॥ जब कि पिता, पितामह प्रपितामह जीते हों तब चतुर्थ पीढीवाले प्रपौत्र आदि संतान मात्र युवन् संज्ञक होते हैं इनको गोत्र संज्ञा नहीं होती है ॥ युवन् संज्ञक संतान अर्थ में जो प्रत्यय होवे तो वह गोत्र रूप संतान अर्थ का प्रत्यय प्रथम होने के बाद होता है । स्त्रीलिंग में युवन् संज्ञा नहीं होती है ॥

फक्प्रत्ययस्तु यञिञोश्च किलायनाद्याः
स्युर्नित्यप्रत्ययविधाविह फादिकानाम् ॥
चापत्य इञ् त्वत इहापि च बाहुकेभ्यो
ऽपत्येऽमुनिभ्य इति गोत्रविधौ मुनिभ्यो
ऽपत्येऽण् शिवादिकपदेभ्य इहाण् ऋषिभ्यः

संख्यादिपूर्वपदमातुरुदण्सदैव ॥

ढक्स्त्रीभ्य एव च कनीन उ कन्यकाया

स्तप्रत्यय श्वशुरराजपदान्नितान्तम् ।१८१।१८२।

गोत्र रूप संतान अर्थ में जो यञन्त वा इञन्त शब्द तिनसे परे युवन् रूप संतान अर्थ में फक् प्रत्यय होता है। प्रत्यय के प्रथम अक्षर जो-फ्-ढ्-ख्-छ्-और-घ्-इन को क्रमसे आयन्-एय्-ईन्-ईय्-और-इय् होते हैं। यथा गर्गस्य युवापत्यम्। गार्ग्यः। गार्ग्यायणः। दाक्षायणः। संतान अर्थ में अदन्त से परे इञ् प्रत्यय होता है। यथा दाक्षिः। बाहु आदि गण से परे इञ् प्रत्यय सन्तान अर्थ में होता है। यथा बाहविः। औडुलोमिः। जो शब्द विद आदि गण में हो उनसे अञ् प्रत्यय होता है, परंतु ऋषिवाचक से गोत्र अर्थ में, और अन्य से सन्तान अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। विदस्य गोत्रं वैदः। पुत्रस्यापत्यं पौत्रः। संतान अर्थ में शिव आदि गण से परे अण् प्रत्यय होता है। यथा शैवः। गाङ्गः। ऋषि-अन्धक-वृष्णि-कुरु इतने वंश के तथा वंशज के नाम के शब्दो से परे अपत्य अर्थ में अण् होता है। यथा। वासिष्ठः। वैश्वामित्रः॥ श्वाफल्कः॥ वासुदेवः॥ नाकुलः॥ संख्यावाचक शब्द अथवा सम् अथवा भद्र, ये शब्द मातृ शब्द के पूर्व हो तो मातृ को उत् आदेश होवे, तथा अण् प्रत्यय अपत्य अर्थ में होता है॥ यथा द्वैमातुरः॥ षाण्मातुरः॥ साम्मातुरः॥ भाद्रमातुरः॥ स्त्री प्रत्ययांत से परे अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है॥ यथा वैनतेयः। कन्या शब्द को अपत्य अर्थ में कनीन आदेश होता है और उससे परे अण् होता है॥ यथा

कन्याया अपत्यं कानीनः ॥ राजन् वा श्वशुर शब्द से परे अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है । यथा श्वशुरस्यापत्यं श्वशुर्यः ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

यादौ च तद्धित इहान् भवति प्रकृत्या
नो भावकर्मणि तथाऽनणि बाहुजाद्घः ॥
ठक् रेवतीभ्य इति ठस्य भवेदिकोपि,
क्षात्राच्च देशविषयादञऽपत्यकेऽर्थे॥१८३॥

तद्धित प्रत्यय के आदि में य होय और वह परे हो तब शब्द का अंत अवयव अन् प्रकृतिभाव होता है, परंतु भाव अथवा कर्म अर्थ में नहीं होता है । यथा राजन्यः क्षत्रिय ॥ अण् प्रत्यय परे होने से शब्द का अवयव जो अन् वह प्रकृतिभाव होता है ॥ यथा राजनः । पासवान का पुत्र । क्षत्र शब्द से परे अपत्य अर्थ में स्वजातीय बिवाहिता स्त्री से उत्पन्न अर्थ में घ प्रत्यय होता है ॥ यथा क्षत्रियः ॥ अन्य क्षात्रिः। रेवती आदि गण से परे अपत्य अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। अंग से परे ठ को इक आदेश होता है। यथा रैवतिकः। रेवती का अपत्य। क्षत्रिय वाचक शब्द देशवाचक हो तौ उस देश का राजा ऐसा अर्थ करनेके लिये उससे परे अपत्यवत् अञ् प्रत्यय होता है । यथा पाञ्चालः। पंचाल देश का राजा।१८३।

ण्यः स्यादपत्यविषये कुरुनादिकेभ्य-
स्तद्राजसंज्ञकमया विहिता अञाद्याः ॥
तद्राजलुग्बहुषु चार्थविधौ स्त्रियां न,
कम्बोजतो लुगिति रक्तमनेन रागात् ।१८४।

कुरु शब्द से परे तथा जिस शब्द के आदि में नकार हो उससे परे अपत्य अर्थ में अथवा राजवाचक अर्थ में ण्य प्रत्यय होता है। कुरोरपत्यं, कौरव्यः। कुरु का अपत्य, वा कुरुदेश का राजा । इसीतरह,नैषध्यः ।अञ् आदिक प्रत्ययों की तद्राज संज्ञा होती है, जबकि बहुवचन की विवक्षा हो तब तद्राज संज्ञकप्रत्यय का लुक् होता है परंतु स्त्रीलिंग में नहीं होता है । यथा-पंचालाः । कंबोज शब्द से परे तद्राज प्रत्यय का लुक् होता है । यथा कम्बोजाः । कम्बोज राजा का अपत्य-वा-तद्देश का राजा । रंग वाचक तृतीयान्त शब्द से परे रंगवान् अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा कषायेण रक्तम् ।काषायम् ।१८४।

नक्षत्रयुक्तसमयेऽणविशेष एव
लुप् साम दृष्टमण् ड्यड्ड्य उ वामदेवात् ॥
वस्त्रेणवेष्टितरथेऽण् किल चोद्धृतेऽर्थे
पात्रादणेव खलु संस्कृतमत्र भक्षाः ॥१८५॥

नक्षत्र वाचक तृतीयान्त शब्द से परे युक्त अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, परन्तु युक्त होने वाले पदार्थ का काल वाचक के साथ संयोग हो तो।नक्षत्र वाचक तृतीयान्त तिष्य तथा इस का पर्याय पुष्य शब्द हो और उससे परे अण् प्रत्यय हो तो इन शब्दों के य का लोप होता है । यथा-पुष्येण युक्तम् अहः । पौषम् अहः ॥ साठ घटिका रूपी काल के अन्तर्गत कालवाचक शब्द की प्रतीति न हो तो अण् प्रत्यय का लुप् होता है । यथा अद्य पुष्यः । देखने में आया इस अर्थ में तृतीयान्त से परे अण् प्रत्यय होता है जो दृष्ट पदार्थ सामवेद

हो तो। यथा वसिष्ठेन दृष्टं साम। वासिष्ठम्। दृष्ट अर्थ में तृतीयान्त वामदेव शब्द से परे ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं जो दृष्ट पदार्थ साम हो तो। यथा वाम देवेन दृष्टं साम। वामदेव्यम्। परिवृत अर्थात् वेष्टित अर्थ में तृतीयान्त से परे अण् प्रत्यय होता है। यदि वेष्टि त पदार्थ रथ हो तो। यथा वस्त्रेणपरिवृतोरथः। वास्त्रः। तत्रोद्धृत अर्थ में पात्र वाचक सप्तम्यन्त पद के परे अण् प्रत्यय होता है। यथा शरावे उद्धृतः ओदनः शारावः संस्कृत अर्थात् संस्कार अर्थ में सप्तम्यन्त पद से परे अ ण् प्रत्यय होता है, जो संस्कार होने वाला पदार्थ भ क्षण योग्य हो तो॥ यथा भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः भक्ष्याः। भ्रा ष्ट्राः॥ १८५॥

सा ऽस्याण्भवेदिति तथैव च देवतार्थे
शुक्राद्घनेव किल सोमपदाट्ट्यणेव॥
वाय्वादिकेभ्य इति यच्च भवेदृतो रीङ्
पितृव्यशब्दसुमुखाश्च निपातसिद्धाः॥१८६॥

यह इसकी देवता इस अर्थ में देवता भेद वाचक प्रथमान्त से परे अण् हो. यथा इन्द्रो देवता अस्य इति। ऐन्द्रम् हविः प्रथमान्त शुक्र शब्द से परे यह इसकी देवता है इस अर्थ में घन् होता है। यथा शुक्रो देवता अस्य। शुक्रियम् सा अस्य देवता इस अर्थ में प्रथमान्त सोम शब्द से पर ट्यण् प्रत्यय होता है। यथा सौम्यम्॥ पूर्वोक्त अर्थ में वायु, ऋतु, पितृ और उषस् इतने प्रथमान्त शब्दों से परे यत् प्रत्यय होता है। यथा वायव्यम्। ऋतव्यम्। जब कि कृत् से भिन्न अथवा सार्वधातुक से भिन्न यकार परे हो तो या च्वि परे हो तो ऋ को रीङ् आदेश होता

है। पित्र्यम्। पितृव्य, मातुल, मातामह और पितामह ये शब्द निपात से सिद्ध हैं ॥ १८६ ॥

भिक्षामुखेभ्य इति तस्य समूहकोऽणाचा
पत्येतरेऽण्यपि तदिन् विहितः प्रकृत्या ॥
ग्रामादिकेभ्य इति तल् ठगऽचित्तहस्ति
धेनोरिसादि कपदान्तजठस्य कः स्यात् ।१८७।

षष्ठ्यन्त शब्द से परे समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा काकानां समूहः। काकम्। भिक्षा आदि षष्ठ्यन्त शब्द से परे समूह अर्थ में अण् होता है। यथा- भैक्षम्। अण् प्रत्यय अपत्य अर्थ वाचक न हो तो उसके पूर्व का इन् प्रकृतिभाव को प्राप्त होता है। यथा गार्भिणम् हास्तिनम्। ग्राम जन, और बंधु इन से परे समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होता है। तलन्त स्त्रीलिंग होता है। यथा ग्रामाणां समूहो ग्रामता। जनता॥ बंधुता॥ अचित्त हस्तिन् धेनु ये शब्द षष्ठ्यन्त हों तो उनसे परे समूह अर्थ में ठक् होता है। जिसका अंत्यावयव इस् या उस् प्रत्यय हो, या उक् प्रत्याहार में से वर्ण हो, या त् हो तो उस से परे प्रत्यय का अवयव जो ठ है उसको क आदेश होता है, यथा साक्तुकम्। हास्तिकम्। हाथियों का समूह। १८७।

तद्वेद चात्र तदधीत इहाण् नितान्तं
य्वाभ्यां पदान्त उत चैजिह नैव वृद्धिः ॥
वुन् स्यात् सदा क्रममुखेभ्य इहात्र चास्ति
देशेऽर्थकेऽण् भवति तेन तु निर्वृतं तत् ।१८८।

जो पढ़ता है वो जानता है इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होते हैं॥ यथा व्याकरणं अधीते

वा वेद इति। पदान्त यकार अथवा वकार से परे अच् को वृद्धि नहीं होती है परंतु उन यकार वकार से पूर्व ऐ व औ का आगम होता है। वैयाकरणः। पूर्वोक्त अर्थों में क्रम आदि गण के शब्दों से परे वुन् प्रत्यय होता है॥ यथा क्रमकः। पदकः। शिक्षकः॥ प्रथमान्त शब्द अस्ति क्रिया के साथ समानाधिकरण होतो उससे परे अस्मिन् अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं परंतु प्रकृति तथा प्रत्यय मिल कर होनेवाला शब्द तन्नामक देश का बोधक हो तो। यथा उदुम्बराः सन्ति अस्मिन्देशे। औदुम्बरः। तिसने बनाया इस अर्थ में तृतीयान्त से परे अण् आदि होते हैं। यथा कुशाम्बेन निर्वृत्ता॥ कौशाम्बी॥ १८८॥

षष्ठ्यन्तशब्दत इहापि निवासकेऽथास्या
च्चादूरकार्थविषये त इमे भवन्ति॥
लुब्जनपदे प्रकृतिवल्लुपि लिंगवाक्ये
शास्त्रे सदैव विहिते वरणादिकेभ्यः॥१८९॥

षष्ठ्यन्त शब्द से परे निवास अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा-शिबीनां निवासो देशः। शैवः। प्रकृति प्रत्यय मिलित देश वाचक होता होतो षष्ठ्यन्त शब्द से परे अदूर अर्थ में अण् आदि होते हैं। यथा विदिशाया अदूरभवं वैदिशम्। जब कि देश की विवक्षा हो तब चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है। यथा पंचालानां निवासो जनपदः। पंचालाः। लुप् होने से प्रकृतिवत् लिंग और वचन रहते हैं। यथा अङ्गाः। वङ्गाः। कलिङ्गाः। वरण आदि गण २२ शब्दों से परे प्रत्यय का लुप् होता है, और पूर्वोक्त प्रकृतिवान् लिंग वाक्य रहते हैं॥ यथा वरणानां अदूरभवं नगरं वरणाः॥ १८९॥

तत्र ड्मतुप् कुमुदनड्युतवेतसेभ्यो
मस्यैव वोपि च मतोः प्रभवेज्झयन्तात् ॥
वो मस्य चाऽयवगणादिह सोपधायाः
शादात् नडात् ड्वलजथोपि वलच् शिखायाः ॥१९० ॥

कुमुद, नड, और वेतस इनसे परे ड्मतुप् प्रत्यय होता है झयन्त से परे मतु प्रत्यय के मकार को वकार होता है यथा कुमुद्वान् । नड्वान् । यव आदि गण वर्जित शब्द का अंतावयव अथवा उपधा में मकार अथवा अवर्ण हो उससे परे मतु के म को व होता है ॥ यथा वेतस्वान् । नड और शाद शब्द से परे ड्वलच् प्रत्यय होता है । यथा नड्वलः । शिखा शब्द से परे चातुरर्थिक में वलच् प्रत्यय होता है ॥ यथा शिखावलः ॥ और ॥ १९० ॥

शेषेऽप्यणादय उताथ च राष्ट्रतो घः
खोऽवारपारत इतो यखञौ समूहात् ॥
नद्यादिकेभ्य इति ढक् त्यक् दक्षिणादे
र्युप्रागभ्य एव यदिति त्यबिहाऽव्ययाद्वै । १९१ ।

अपत्य अर्थसे लेकर चातुरर्थिक पर्यंत जितने अर्थ हैं उन को छोडकर जो अर्थ हैं वे शेष कहलाते हैं, उनमें भी अण् आदि होते हैं । यथा चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषम् । श्राव णः ॥ औपनिषदः ॥ राष्ट्र शब्द से परे घ प्रत्यय और अ वारपार से परे ख प्रत्यय होता है ॥ यथा राष्ट्रेजातः राष्ट्रियः ॥ अवारपारीणः ॥ ग्राम शब्द से परे य अथवा ख ञ् प्रत्यय होता है ॥ यथा ग्रामीणः । नदी आदि गण के शब्दों से परे ढक् प्रत्यय होता है ॥ यथा नादेयम् ॥ द

क्षिणा, पश्चात् और पुरस् इन से परे त्यक् प्रत्यय होता है। यथा, दाक्षिणात्यः। पाश्चात्यः। पौरस्त्यः। दिव्,प्राच्,अपाच्,उदच्,प्रतीच् इन से परे यत् प्रत्यय होता है यथा दिव्यम्, प्राच्यम्, इत्यादि। अमा-इह-क-तथा जिस का अन्तावयव तसि और त्र हो ऐसे अव्यय से परे त्यप्,प्रत्यय होता है। यथा अमात्यः। इहत्यः। कत्यः। ततस्त्यः। तत्रत्यः॥ १९१॥

वृद्धं त्वचां तदिह मध्य उतादिवृद्धि
वृद्धं त्यदादिकमथो छ इहापि वृद्धात्॥
तद्वच्छ एव च गहादिकतो नितान्तं
स्युर्युष्मदस्मदुभयोः खञणौ तथा छः॥१९२॥

जो समुदाय के अचों में आदि अच् को वृद्धि हो तो वह समुदाय भी वृद्ध संज्ञक होता है। त्यद् आदि शब्द वृद्ध संज्ञक होते हैं। वृद्ध संज्ञक शब्दों से परे छ प्रत्यय होता है। यथा शालीयः। तदीयः। गह आदि शब्दों से परे छ प्रत्यय होता है। यथा गहीयः। युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों से परे खञ प्रत्यय विकल्प से होता है, और छ प्रत्यय भी होता है। पक्ष में अण भी होता है. यथा युष्मदीयः। अस्मदीयः।॥ १९२॥

युष्माकपूर्वकपदौ भवतोऽणाखञोश्च
तद्वद्द्वयोस्तवकपूर्वपदौ कुश्वाक्ये॥
स्यातां त्वमौ च युगयोः किल शास्त्ररीत्या
मध्यान्म एव ठञितीह तु कालतोपि ॥१९३॥

जब कि खञ् अथवा अण् परे हो तब युष्मद्-अस्मद्

को युष्माक अस्माक आदेश होता है। यथा यौष्माकीणः। आस्माकीनः। खञ् और अण् परे होने से एकार्थवाचक युष्मद् तथा अस्मद् के स्थान में-तवक-और ममक-होते हैं। यथा तावकीनः ॥ तावकः ॥ मामकीनः मामकः॥ जबकि कोई प्रत्यय अथवा उत्तरपद परे हो तो एकवचन में दोनों शब्दों को म पर्यंत त्व-म-आदेश अनुक्रम से होते हैं। यथा त्वदीयः ॥ मदीयः ॥ त्वत्पुत्रः मत्पुत्रः ॥ मध्य शब्द से परे म प्रत्यय होता है ॥ यथा मध्यमः ॥ कालवाचक शब्द से परे ठञ् प्रत्यय होता है। यथा कालिकः॥ मासिकः ॥ सांवत्सरिकम् ॥ १९३ ॥

एण्यस्तु प्रावृष इहाऽव्ययतूर्यकेभ्य
ट्युट्युल् च तुड् भवति घोऽण् किल तत्रजातः ॥
टप् प्रावृषोऽथ खलु प्रायभवोऽप्यणाद्याः
संभूत इत्यपि ढञेव हि कोशतो वै ।१९४॥

प्रावृष् शब्द से परे एण्य प्रत्यय होता है ॥ यथा प्रावृषेण्यः ॥ सायं-चिरं-प्राह्णे-प्रगे-इन चार शब्दों से तथा कालवाचक अव्यय से परे ट्यु-और ट्युल् प्रत्यय होते हैं ॥ और इनको तुट् का आगम होता है ॥ यथा सायंतनम्।चिरंतनम् ॥ प्राह्णेतनम् प्रगेतनम् ॥ उत्पन्नहुआ इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से परे अण् आदि तथा घ आदि होते हैं.। यथा। स्रौघ्नः॥ औत्सः। राष्ट्रियः॥ अवारपारीणः॥ उत्पन्नहुआ इस अर्थ में प्रावृष् सेपरे टप् होता है यथा प्रावृषिकः॥ बहुधा अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से परे अण् आदि होते हैं॥ यथा स्रौघ्नः ॥ संभव अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से परे अण् आदि होते हैं। यथा स्रौघ्नः ॥ कोश शब्द से परे सप्तम्यन्त समर्थ के विषय संभव अर्थ

में ढञ् प्रत्यय होता है ॥ यथा कौशेयम् ॥ रेसमी वस्त्र ॥ १६४ ॥

तत्रत्य इत्यगिह यञ्च दिगादिकेभ्यो
देहांगतोऽनुशातिकादिगणे तु वृद्धिः ॥
जिह्वाऽदिकेंगुलिपदे छ इतश्च वर्गात्
अणपूर्वकास्तु तत आगत एव नित्यम् ॥ १६५ ॥

होने वाचक सप्तम्यन्त समर्थ से परे अण् आदि प्रत्यय होते हैं ॥ यथा स्रुघ्ने भवः ॥ स्रौघ्नः ॥ औत्सः ॥ राष्ट्रियः ॥ तहां हुआ इस अर्थ में दिश् इत्यादि शब्दों से परे यत् प्रत्यय होता है ॥ यथा दिश्यम् ॥ वर्ग्यम् ॥ होना अर्थ में शरीर के अवयव वाचक शब्दों से परे यत् प्रत्यय होता है ॥ यथा दन्त्यम् ॥ कण्ठ्यम् ॥ ञित् णित् और कित् प्रत्यय परे होने से अनुशातिक आदि शब्दों के पूर्व तथा उत्तर पदों के आदि अच् को वृद्धि होती है ॥ यथा आधिदैविकम् ॥ आधिभौतिकम् ॥ तत्र भव अर्थ में जिह्वामूल और अंगुलि ऐसे सप्तम्यंत शब्दों से परे छ प्रत्यय होता है ॥ यथा जिह्वामूलीयम् ॥ अंगुलीयम् ॥ जिसका अन्तावयव वर्ग शब्द हो ऐसे सप्तम्यन्त शब्द से परे तत्र भव अर्थ में छ प्रत्यय होता है ॥ यथा कवर्गीयम् ॥ वहां से आया इस अर्थ में पंचम्यंत शब्द से परे अण् आदि होते हैं ॥ यथा स्रुघ्नात् आगतः ॥ स्रौघ्नः ॥ १६५ ॥

ठक्प्रत्ययस्त्विह किलाऽयगृहेभ्य एव
विद्यादिकेभ्य इति वुञ् भवतीह शास्त्रे ॥
रूप्यस्तु हेतुमनुजेभ्य इतो विकल्पात्
तेभ्यो मयट् प्रभवतीत्यण् वै सदैव ॥ १६६ ॥

तत आगतः अर्थ में आय (लाभ) स्थानवाचक पंच-

म्यन्त शब्दों से परे ठक् प्रत्यय होता है। यथा शुल्क-शालाया आगतः। शौल्कशालिकः। जो शब्द की वृत्ति निमित्त में विद्या का संबंध हो या योनि का संबंध हो तौ पंचम्यन्त शब्दों से परे तत आगत अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है। यथा औपाध्यायकः। पैतामहकः। हेतु तथा मनुष्यवाचक पंचम्यन्त शब्दों से परे तत आगत अर्थ में रूप्य प्रत्यय विकल्प से होता है। यथा समात् आगतं समरूप्यम्। पक्षे छ, समीयम्। देवदत्तरूप्यम्। दैवदत्तम्। हेतु तथा मनुष्यवाचक पंचम्यन्त शब्दों से परे तत आगत अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है। यथा सममयम्। प्रभवति अर्थ में पंचम्यन्त शब्दों से परे अण् आदि होते हैं॥ यथा हिमवतः प्रभवति हैमवती॥ १९६॥

तद्गच्छतीत्यण् भवेत्पथिदूतयोश्च
द्वाराभिनिष्क्रमणकेर्थविधौ तथैवाण्॥
ग्रंथे कृते तदधिकृत्य भवेदणेव
तद्भवेच्च किल सोऽस्य निवासकोऽत्र।१९७।

तहां जाता है इस अर्थ में द्वितीयान्त शब्द से परे अण् आदि होते हैं परंतु जानेवाला मार्ग या दूतवाचक हो तौ। यथा स्रुघ्नं संगच्छति। स्रौघ्नः। सन्मुख निकलता है इस अर्थ में द्वितीयान्त शब्द से परे अण् आदि होते हैं, परंतु सन्मुख निकलनेवाला द्वारवाचक हो तौ। यथा स्रुघ्नं अभिनिष्क्रामति स्रौघ्नः॥ (कान्यकुब्जद्वारम्.) ग्रंथवाचक शब्द हो तौ किसी विषय का प्रसंग लेकर करने योग्य अर्थ में द्वितीयान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होते हैं यथा शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रंथः। शारीरकीयः॥ यह इसका निवासस्थान है इस अर्थ में प्रथमान्त से परे अण्

आदि होते हैं। यथा स्रुघ्नः निवासः अस्य॥ स्रौघ्नः ।१९७।

तद्धवन्ति सततं यदि तेन प्रोक्तं
तस्येदमण् भवति तस्य विकारजेऽर्थे ॥
प्राण्याादिकेभ्य इह संततिप्रत्ययोऽगे
वाऽऽच्छादने मयडितीह भवेदभक्ते ।१९८ ।

तिसने कहा है इस अर्थ में तृतीयान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा पाणिनिना प्रोक्तम्। पाणिनीयम् ॥ यह तिसका है इस अर्थ में षष्ट्यन्त से परे अण् आदि होते हैं। यथा उपगोः इदम्। औपगवम्। विकार अर्थ में षष्ठ्यन्त से परे अण् आदि होते हैं। यथा अश्मनो विकारः। आश्मः। मृत्तिकाया विकारः। मार्त्तिकः। अवयव तथा विकार अर्थ में जीवधारी औषधि और वृक्ष वाचक षष्ठ्यन्त शब्दों से परे अण् आदि होते हैं। यथा मयूरस्य विकारः अवयवो वा मायूरः। पैप्पलम्। वेद के विना जो ग्रंथ हैं उनमें विकार तथा अवयव अर्थ में सर्व प्रातिपदिक से परे मयट् प्रत्यय होता है विकल्प से, परंतु विकार या अवयव वा आहार अथवा वस्त्रवाचक हो तो नहीं होगा। यथा अश्ममयम्। आश्मनम् ॥ १९८ ॥

नित्यं मयड् भवति वृद्धशरादिकेभ्यो
गोर्वै पुरीष इति गोपयसोर्यदेव ॥
ठक्प्रत्ययोऽप्यधिकृतो वहतेस्तथा प्राक्
ठक् तेन दीव्यतिमुखेष्वथ संस्कृतेऽर्थे ।१९९।

वृद्ध संज्ञक शब्दों से परे तथा शर आदि ७ शब्दों से परे विकार तथा अवयव अर्थ में मयट् नित्य होता है। यथा आम्रमयम्। गाय के गोमय अर्थ में गो शब्द से परे

मयट् होता है । यथा गोमयम् । गो तथा पयस् शब्द से परे विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होता है । यथा गव्यम् । पयस्यम् । तद्वहति इत्यतः प्राक् याने इससे पूर्व ठक् प्रत्यय का अधिकार है । रमे है खोदे है जीते है वा जीती हुई वस्तु इन अर्थों में तृतीयान्त से परे ठक् होता है । यथा अक्षैः दीव्यति खनति जयति जितं वा । आक्षिकम् । संस्कार किया हुआ अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होता है । यथा दध्ना संस्कृतं दाधिकम् । मारीचिकम् । १९९ ।

ठक् तेन वै तरति तच्चरति त्विहापि
संसृष्ट इत्यपि किलोंछतिरक्षतीह ॥
ठक् शब्ददर्दुरमितीह करोति पद्ये
धर्मं चरत्यपि च शिल्पमिति प्रहारः ॥ २०० ॥

तिससे पार जाता है इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् होता है । यथा उडुपेन तरति । औडुपिकः । जाता या खाता है, इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् होता है यथा हस्तिना चरति हास्तिकः । दध्ना भक्षयति दाधिकः मिश्रितकरण अर्थ में तृतीयान्त, से परे ठक् होता है ॥ यथा दध्ना संसृष्टः । दाधिकः । चुगता है इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे ठक् होता है । यथा बदराणि उञ्छति, बादरिकः । रक्षण करता है इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होता है । यथा समाजं रक्षति- सामाजिकः शब्द करता है दर्दुर को करता है इन अर्थों में द्वितीयान्त से परे ठक् होता है । यथा शब्दं करोति शाब्दिकः । दर्दुरं करोति दार्दुरिकः । धर्म आचरण करता है, इस अर्थ में द्वितीयान्त शब्द से परे ठक् होता है । यथा धर्मं चरति । धार्मिकः । हस्तकौशल अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् होता

है । यथा मृदंगवादनं शिल्पं अस्य । मार्दङ्गिकः। तीक्ष्णश
स्त्र है जिसके इस अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् होता है ॥
असिः प्रहरणं अस्य । आसिकः ॥ धानुष्कः ॥ २०० ॥

शीलं च ठक् वसति वै निकटेपि ठक् स्या-
द्यद्वै वहत्यपि रथेषु धुरोपि यत् ढक् ॥
दीर्घं भकुर्छुरुपधाविषये नहीति
नावादिकेभ्य इति तार्यमुखेषु यत्स्यात् ॥ २०१ ॥

स्वभाववाचक अर्थ में प्रथमान्त शब्द से परे ठक् प्र-
त्यय होता है । यथा अपूपभक्षणं शीलं अस्य ॥ आपूपि
कः॥ वसता है इस अर्थ में सप्तम्यन्त निकट शब्द से परे
ठक् प्रत्यय होता है ॥ यथा निकटे वसति, नैकटिकः, भि
क्षुः ॥ वहता है इस अर्थ में रथ, युग, प्रसंग इन द्वितीयां
त शब्दों से परे यत् प्रत्यय होता है ॥ यथा रथं वहति
रथ्यः ॥ युग्यः॥ प्रासंग्यः। वहता है इस अर्थ में द्विती-
यान्त धुर् शब्द से परे यत् अथवा ढक् होता है ॥ यथा
धौरेयः।नौ-वयस्-धर्म-विष-मूल-सीता-तुला-इन शब्दों से
तृतीयान्त में यत् होता है.तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्य-आनाम्य
सम-समित-संमित इतने अर्थों में यथा क्रम होता है ॥
यथा नावा तार्यं । नाव्यम् ॥ वयस्यः ॥ धर्म्यम् ॥ विष्यः ॥
मूल्यम् ॥ २०१ ॥

यत्तत्र साधुरिति यत्तु भवेत्सभायाः
प्राक् क्रीततश्छ उ गवादिकतोपि यत्स्यात् ।
तस्मै हितं भवति चापि च प्रत्ययश्छो
यत्प्रत्ययः किल शरीरमयाङ्गतोपि ॥२०२ ॥

निपुण अर्थ में सप्तम्यन्त से परे यत् प्रत्यय होता है॥

यथा सामसु साधुः॥ सामन्यः॥ कर्मण्यः॥ शरण्यः॥ निपुण अर्थ में सप्तम्यन्त सभा शब्द से परे यत् प्रत्यय होता है॥ यथा सभ्यः॥ तेन क्रीतम् इससे प्राक् छ प्रत्यय का अधिकार है। उकारान्त से परे तथा गो आदि शब्दों से परे यत् होता है॥ यथा शंकवे हितं शंकव्यम्॥ गव्यम् हितकारक अर्थ में चतुर्थ्यन्त से परे छ प्रत्यय होता है॥ यथा वत्सेभ्यो हितो वत्सीयः॥ शरीर के अवयव वाचक चतुर्थ्यंत शब्द से परे हितकारक अर्थ में यत् प्रयय होता है॥ यथा दन्त्यम्॥ कण्ठ्यम्। नस्यम्॥२०२॥

आत्मादिकेभ्य इति खस्तु किलात्ममार्गे
ठञ् प्राग्वतेर्भवति तेन तथैव परायम्।
तस्येश्वरे तदणञौ भुवि सर्वभूभ्यां
पङ्क्त्यादयः शतमिताः किल रूढशब्दाः।२०३।

हितकारक अर्थ में आत्मन् तथा विश्वजन शब्दों से परे भोगोत्तरपद से परे ख प्रत्यय होता है॥ यथा आत्मने हितं, आत्मनीनम्॥ विश्वजनीनम्। जब कि ख प्रत्यय परे हो तब आत्मन् और अध्वन् ये दोनों प्रकृतिभाव होते हैं॥ तेन तुल्यं इससे प्राक् ठञ् का अधिकार किया जाता है॥ खरीदा गया इस अर्थ में तृतीयांत से परे ठञ् प्रत्यय होता है॥ यथा साप्ततिकम्॥ प्रास्थिकम्॥ ईश्वर या, पति इस अर्थ में सर्वभूमि और पृथ्वी षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से परे अण्-तथा अञ् अनुक्रम से होते हैं. यथा सार्वभौमः। पार्थिव.। पंक्ति दश का एक जाति का छंद

विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति और शत ये रूढ़ि शब्द जानलेना।२०३।

ते वै निपातविषया विहिता नितान्तं
ठञ् वै तदर्हति च दण्डमुखेभ्य उद्यत्।
ठञ् तेन निर्वृतमिहापि च तेन तुल्यं
चेद्वै क्रिया वति रिहापि भवेच्च तत्र ॥२०४॥

पूर्वोक्त शब्द निपात संज्ञक जानलेना । योग्य अर्थ में द्वितीयान्त से परे ठञ् प्रत्यय होता है ॥ यथा श्वेतछत्रंअर्हति । श्वैतच्छत्रिकः । दण्ड आदि शब्दों से परे योग्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा दण्ड्यः। अर्घ्यः॥ वध्यः। निष्पन्न अर्थ में तृतीयान्त से परे ठञ् प्रत्यय होता है ॥ यथा अह्ना निर्वृत्तं आह्निकम्। तुल्य अर्थ में तृतीयांत से परे वति प्रत्यय होता है, परंतु धर्म के साथ तुलना करनेवाली क्रिया हो तौ। यथा ब्राह्मणेन तुल्यं अधीते । ब्राह्मणवत् ॥ उसमें हो उसकी सदृश तथा उसके सदृश इस अर्थ में सप्तम्यंत और षष्ठयन्त शब्दों से परे वति प्रत्यय होता है ॥ यथा मथुरायाम् इव ॥ मथुरावत् ॥ २०४ ॥

भावे च तस्य विहितौ त्वतलौ सदैव
पृथ्वादिकेभ्य इमनिज्विहितो विकल्पात् ॥
ज्ञेयः सदैव च लघो र ऋतो हलादे
रिष्ठन्मुखेषु च परेष्वपि भस्य टेर्लुक् ॥२०५॥

भाव अर्थ में षष्ठयन्त से परे त्व और तल् प्रत्यय होते हैं ॥ यथा गोर्भावः । गोत्वम् ॥ पृथु आदि षष्ठयन्त

प्रातिपदिक से परे भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ हल् जिसके पूर्व हो ऐसे लघु ऋ से परे इष्ठन् आदि प्रत्यय हो तो उसके स्थान में र आदेश होता है। इष्ठन्-इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हो तो भ संज्ञक टि का लोप होता है। यथा पृथोर्भावः। प्रथिमा, पृथुः। म्रदिमा, मृदुः ॥ २०५ ॥

ष्यञ्प्रत्ययश्च किल वर्णदृढादिकेभ्यः
स्याद्धि च कर्मणि सदैव गुणादिकेभ्यः।
सख्युर्य एव कपिजात्युभयोर्हि ढक् स्यात्
पत्यन्ततो यगपि तच्च पुरोहितादेः ॥२०६॥

रंगवाचक तथा दृढ आदिगण के षष्ठ्यन्त शब्दों से परे भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है ॥ और चकार से इमनिच् भी होता है। यथा शौक्ल्यम्। शुक्लिमा। दार्ढ्यम् द्रढिमा। गुणवाचक जो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक तथा ब्राह्मण आदि षष्ठ्यन्त शब्द उस से परे क्रिया अर्थ में ष्यञ् होता है ॥ यथा जाड्यम्। मौढ्यम्। ब्राह्मण्यम्। भाव तथा क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त सखि शब्द से परे य प्रत्यय होता है ॥ यथा सख्यम्। भाव तथा क्रिया अर्थ में षष्ठ्यंत कपि तथा ज्ञाति प्रातिपदिक से परे ढक् होता है। यथा कापेयम्। ज्ञातेयम्। भाव तथा क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त पतिशब्दान्त तथा पुरोहित गण के शब्दों से परे यक् प्रत्यय होता है ॥ यथा सैनापत्यम्। पौरोहित्यम् ॥ २०६।

क्षेत्रे खञन्नभवने ढक् व्रीहिशाल्योः
हैयंगवीनमपि वै नवनीतकेऽर्थे।

संजातमस्य तदितच् किल तारकेभ्यो
दघ्नञ्च मात्रजिति वै द्वयसच् प्रमाणे ॥ २०७ ॥

खेत में जो धान्य होता हो और उस धान्य के नाम से खेत का नाम पड़ा हो तो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से परे खञ् होता है। यथा-मुद्गानां क्षेत्रं। मौद्गीनम्। धान्यार्थक षष्ठयन्त व्रीहि तथा शालि शब्द से परे ढञ् होता है। व्रैहेयम्। शालेयम्। हैयंगवीन शब्द नवनीत वाचक निपात है॥ वह इसके हुआ इस अर्थ में तारका आदि प्रथमान्त शब्दों से परे इतच् प्रत्यय होता है। यथा तारकाः संजाता अस्य, तारकितम्॥ पंडा संजाता अस्य, पंडितः॥ प्रमाण रूप अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से परे द्वयसच्-दघ्नञ् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं यथा ऊरू प्रमाणं अस्य ॥ ऊरुद्वयसम् ॥ ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् ॥ २०७ ॥

प्रामाण्य इत्यपि वतुप् च यदादिकेभ्यः
किमिदंद्वयोर्वतुविहात्र च वस्य घः स्यात्।
दृग्दृश्वतुप्परत ईशिदमः किमः की
सख्यान्वितावयव इत्यपि वै तयप् स्यात्॥
द्वित्र्यंगके तु तयजोऽयजितीह वा स्यात्
स्यान्नित्यमेव तयपोऽयजुभादुदात्तः ॥ २०८ ॥

परिमाण रूप अर्थ में यद्-तद्- और एतद्-प्रथमान्त शब्दों से परे वतुप् प्रत्यय होता है॥ यथा यत्परिमाणमस्य यावान्॥ तावान्॥ एतावान्॥ किम् और इदम् शब्द से वतुप् प्रत्यय होता है और वतुप के वकार को

घकार होता है। दृग् दृश और वतुप् परे हो तो इदम् को इश और किम् को की आदेश होता है॥ यथा कियान्॥ इयान्॥ अवयव अर्थ में संख्या वाचक प्रथमान्त प्रातिपदिक से परे तयप् प्रत्यय होता है॥ यथा पंचावयवाः यस्य, पञ्चतयम्॥ त्रितयम्॥ द्वि तथा त्रिशब्द प्रथमान्त प्रातिपदिक से परे तयप् होने वाले को विकल्प से अयच् आदेश होता है॥ यथा द्वितयम्॥ त्रितयम्। उभ शब्द से परे होने वाले तयप् को उदात्त अयच् नित्य होता है। यथा उभयम्॥ २०८॥

डट् तस्य पूरणे इहागणितादिकाच्च
नान्ताड्डटो मडिति विंशतितेश्च लोपः॥
थुक् डट्परो भवति तत्र षडादिकानां
द्वेस्तीय एव किल संप्रसरेत् त्रिशब्दः॥ २०९॥

उसका पूरण करनेवाला इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से परे डट् प्रत्यय होता है। यथा एकादशानां पूरणः एकादशः। जो नकारान्त संख्यावाचक प्रातिपदिक के आदि में कोई संख्यावाचक शब्द न हो तो उससे परे डट् को मट् का आगम होता है॥ यथा पंचानां पूरणः पंचमः। डित् प्रत्यय परे होने से भ संज्ञक जो विंशति शब्द उसके ति का लोप होता है। यथा विंशः। डट् प्रत्यय परे होने से षष्-कति-कतिपय और चतुर् इन शब्दों को थुक् का आगम होता है। यथा कतिपयथः॥ चतुर्थः॥ षष्ठ्यन्त द्वि शब्द से परे पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है॥ द्वयोःपूरणः द्वितीयः॥ पूरण अर्थ में त्रि शब्द से परे तीय प्रत्यय होता है॥ और संप्रसारण होने से र को

ऋ होता है ॥ यथा तृतीयः ॥ २०६ ॥

स्याच्छ्रोत्रियश्च किल छंदस एव पाठे
पूर्वादिनिश्च भवतीह तथा सपूर्वात्॥
इष्टादिकेभ्य इनिरेव मतुप् तदस्य
मत्वर्थ इत्यपि तसावथ लच् विकल्पात्॥२१०॥

वेद पढता है इस अर्थ में श्रोत्रियन् शब्द निपातित होता है। अन्त का नकार इत्संज्ञक होता है। श्रोत्रियः। प्रथमान्त पूर्व प्रातिपदिक से परे इनि प्रत्यय होता है। यथा पूर्वं ज्ञातं अनेन पूर्वी। प्रथमान्त पूर्व शब्द से पूर्व कोई भी पद हो उससे परे इनि होता है। यथा कृतं पूर्वं अनेन कृतपूर्वी। इष्ट आदि प्रथमान्त प्रातिपदिक से परे इनि प्रत्यय होता है। यथा इष्टं अनेन इष्टी ॥ अधीती। उसका यह है अथवा उसमें यह है इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से परे मतुप् होता है। यथा गावः अस्य वा अस्मिन् वा सन्ति गोमान् ॥ मतुप् के अर्थ में कोई भी प्रत्यय परे हो तब नकारान्त सकारान्त प्रातिपदिक की भ संज्ञा होती है। यथा विदुष्मान्। प्राणी में समूह संबंधी स्थित जो पदार्थ उसका वाचक जो आकारान्त शब्द उस से परे मतुप् अर्थ में लच् प्रत्यय विकल्प से होता है॥ यथा चूडालः। चूडावान्॥ ११० ॥

प्राणिस्थितात्त्विति शनेलच एव तेभ्यः
स्युर्लोमपामयुतपिच्छमुखेभ्य एते ॥
दन्तोन्नतेप्युरजिह्व व एव केशा
द्वौ प्रत्ययाविनिठनावतएव नित्यम् ॥२११॥

लोमन्-पामन्-पिच्छ-आदि प्रातिपादक से परे-श-न और इलच् प्रत्यय अनुक्रम से मतुप के अर्थ में होते हैं यथा लोमशः। लोमवान्। पामनः। पिच्छिलः। पिच्छवान्। उन्नत अर्थ में प्रथमान्त दंत शब्द से परे उरच् होता है। यथा उन्नताः दन्ता अस्य दंतुरः॥ प्रथमान्त केश शब्द से परे व प्रत्यय विकल्प से होता है। यथा केशवः केशवान् मतुप अर्थ में अकारान्त प्रातिपदिक से परे इनि-वा-ठन्-प्रत्यय होता है। यथा दंडः अस्य अस्ति दंडी। दंडिकः ॥।

ब्रीह्यादिकेभ्य इह वै विनिरित्यसादे
र्वाचो ग्मिनिस्त्वजिति चार्शमुखेभ्य एव ॥
ख्याता विभक्तिरिति पूर्वदिशः सदैव
किंसर्वनामबहुतोऽधिकृतं च पूर्वम् ॥२१२॥

ब्रीहि आदि शब्दों से परे इनि-या-ठन् होता है। यथा ब्रीही, ब्रीहिकः। जिस के अंत में अस् शब्द हो उस से परे तथा माया मेधा और स्रज् इन से परे विनि प्रत्यय होता है। यथा यशस्वी। यशस्वान्, मायावी। मेधावी॥ स्रग्वी। वाच शब्द से परे ग्मिनि प्रत्यय होता है॥ यथा वाग्मी। अर्शस् आदि प्रातिपदिक से परे अच् प्रत्यय होता है, यथा अर्शसः॥ इस से लेकर दिक् शब्देभ्यः इस से पूर्व जितने प्रत्यय विधान किये जाते हैं उनमें विभक्ति पद की अनुवृत्ति तथा अधिकार किया है। और किम् सर्वनाम तथा बहु शब्द से परे विभक्ति संज्ञक प्रत्यय होते हैं॥ परंतु जिस के आदि में द्वि शब्द हो ऐसे सर्वनाम से परे नहीं होता है॥ २१२॥

बाणाऽन्तकिम्मुखपदेषु तसिल् विकल्पात्

स्याद्वै किमस्तु कुतिहोरिदमोपि चेशन् ॥
स्यादेतदोऽभिपरितो हि तासिल् सदैव
त्रल्सप्तमीयुतपदादिदमो ह एव ॥ २१३ ॥

किम् आदि पंचम्यंत शब्दों से परे तसिल् प्रत्यय होता है विकल्प करके। जिस विभक्ति प्रत्यय के आदि में तकार अथवा हकार हो उस प्रत्यय के परे होने से किम् शब्द को कु आदेश होता है ॥ यथा कुतः कस्मात् प्राग्दिशीय प्रत्यय (तसिल्) परे होने से इदम् सर्वनाम को इश् आदेश होता है ॥ यथा इतः ॥ प्राग्दिशीय प्रत्यय (तासिल्) परे होने से एतद् सर्वनाम को अन् आदेश होता है ॥ यथा अतः अमुतः इत्यादि ॥ परि और अभि से परे तसिल् होता है ॥ यथा परितः, अभितः ॥ किम् आदि सप्तम्यन्त से परे विभक्ति संज्ञक त्रल् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ यथा कस्मिन् इति कुत्र यत्र तत्र बहुत्र ॥ सप्तम्यन्त इदम् शब्द से परे त्रल् को बाधकर ह प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ यथा इह ॥ २१३॥

किम्यद्विकल्पत इहाति किमः क एव
दृश्यन्त एवमितराभ्य इहापि सर्व्वे ।
काले च दा भवति सर्वमुखेभ्य एव
वा प्राग्दिशीय इति सर्वपदस्य सः स्यात् २१४।

सप्तम्यन्त किम् शब्द से परे विभक्ति संज्ञक अत् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ अत् प्रत्यय परे होने से किम् शब्द को क आदेश होता है ॥ यथा क्व, कुत्र। पंचम्यन्त तथा सप्तम्यन्त विना भी और विभक्ति जिस के अंत में हो ऐसे किम् आदि से परे भी तासिल् आदि प्रत्यय होते

हैं ॥ यथा ततः भवान् । तत्र भवान् । ततः भवन्तम् ॥ तत्र भवन्तम् । सर्व-एक-अन्य-किम्-यद्-तद् इन सप्तम्यन्त से परे कालरूप में दा प्रत्यय होता है ॥ यथा सर्वस्मिन् काले सर्वदा, इत्यादयः । जो प्राग्दिशीय प्रत्यय के आदि में द हो, ऐसे सर्व शब्द से परे हो तौ सर्व शब्द को स आदेश विकल्प से होता है ॥ यथा सर्वस्मिन् काले सदा । सर्वदा कदा यदा तदा ॥ २१४ ॥

चेत्सप्तमीयुतपदादिदमो र्हिलेव
चैतस्त्वितः किल रथोरिदमस्सदा वै ।
र्हिल् स्याद्विकल्पत इहाद्यतनेतरेपि
स्यादेतदो भवति थाल् च प्रकारवाक्ये ॥२१५॥

सप्तम्यंत इदम् शब्द से परे र्हिल् प्रत्यय होता है रेफ अथवा थकार जिस के आदि में हो ऐसा कालरूप अर्थ का प्राग्दिशीय प्रत्यय परे होने से सप्तम्यंत इदम् शब्द को एत-वा-इत् आदेश होता है । यथा अस्मिन् काले एतर्हि ॥ अनद्यतनकाल में सप्तम्यंत से परे र्हिल् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ यथा कस्मिन् काले कर्हि । कदा यर्हि । यदा । तर्हि । तदा ॥ रेफ अथवा थकार जिस के आदि में हो ऐसे प्राग्दिशीय प्रत्यय कालरूप अर्थ में सप्तम्यंत एतद् प्रातिपदिक से परे हो तौ एतद् शब्द को एत तथा इत् आदेश होता है ॥ एतस्मिन् काले एतर्हि । तृतीयान्त किम् आदि से परे प्रकार रूप अर्थ में थाल् प्रत्यय होता है ॥ यथा तेन प्रकारेण तथा ॥२१५॥

तत्रेदमस्थमुरितीह किमश्च तद्वत्
स्वार्थेतिशायन इतस्तमबिष्ठनौ च ।

ज्ञेयास्तिङस्तमबिहातिशयप्रकाशो
घाख्यौ तरप्तमबुभाविह शास्त्ररीत्या ॥ २१६ ॥

इदम् प्रातिपदिक से परे प्रकार अर्थ में थाल् का अप वादक थमु प्रत्यय होता है ॥ यथा अनेन प्रकारेण इत्थम् प्रकार रूप अर्थ में तृतीयान्त किम् से परे थमु प्रत्यय होता है ॥ यथा केन प्रकारेण कथम् । अतिशय विशिष्ट रूप अर्थ में वर्त्तमान प्रथमान्त प्रातिपादिक से परे स्वार्थ में तमप् तथा इष्टन् प्रत्यय होते हैं ॥ यथा अयं एषां अतिशयेन आढ्यः, आढ्यतमः। लघुतमः॥ अतिशय अर्थ जब प्रकाश करने को हो तब तिङन्त से परे तमप् प्रत्यय होता है ॥ तरप् तथा तमप् प्रत्यय घ संज्ञक होते हैं व्याकरण शास्त्र की रीति से ॥ २१६ ॥

आमुस्तथैकिमतिङऽव्ययघाद्धनान्ये
स्यातां द्वयोश्च तरबीयसुनौ विभागे ।
श्रो वै प्रशस्यकपदस्य धरा१चप्रकृत्या
ज्यो वै प्रशस्यकपदस्य किलाऽऽच तस्मात् २१७

किम् एकारान्त तिङन्त तथा अव्यय इनसे परे घ संज्ञक प्रत्यय हो तो उस प्रत्यय से परे आमु प्रत्यय अतिशय अर्थ में होता है,परंतु द्रव्य प्रकर्ष में नहीं होता है । यथा किन्तमाम् । प्राह्णेतमाम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तमाम् । जब द्विवचनान्त विभजनीय उपपद हो तब सुबंत तथा तिङन्त से परे तरप् तथा ईयसुन् प्रत्यय होते हैं ॥ यथा अयंअनयोः अतिशयेन लघुः , लघुतरः ॥ लघीयान्। पटुतरः। पटीयांसः। इष्टन् या ईयसुन् प्रत्यय परे होने से प्रशस्य शब्द को श्र आदेश होता है । इष्टन्

या ईयसुन् प्रत्यय परे होने से जिसमें एक अर्थ हो वह वैसा ही बना रहता है। यथा श्रेष्ठः। श्रेयान्। इष्ठन् ईयसुन् परे होने से प्रशस्य शब्द को ज्य आदेश होता है. यथा ज्येष्ठः। ज्य से परे ईयसुन् प्रत्यय को आ आदेश होता है। यथा ज्यायान् ॥ २१७ ॥

लोपो बहोरिति च भू च बहोः परस्य
चेष्टस्य लोप इतियिट् लुकू विन्मतोर्वै।
ईषद्विधाविति च कल्पमुखा भवन्ति
स्याद्वा सुपो बहुजिहैव तथा पुरस्तात् ॥ २१८

इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय बहु शब्द से परे आवे तो उनके प्रथम वर्ण का लोप होता है॥ और बहु को भू आदेश होता है॥ यथा भूमा। भूयान्। बहु शब्द से परे इष्ठन् प्रत्यय के आदि वर्ण का लोप होता है। और उसको यिट् का आगम होता है॥ यथा भूयिष्ठः इष्ठन् या ईयसुन् प्रत्यय परे होने से विन् तथा मतु का लोप होता है यथा अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः। स्रजीयान्। असमाप्ति बताने के अर्थ में जो विद्यमान प्रातिपदिक उससे परे कल्पप् देश्य और देशीयर् प्रत्यय होते हैं यथा ईषद् ऊनः विद्वान् विद्वत्कल्पः॥ विद्वद्देश्यः। विद्वद्देशीयः। जो सुबन्त किंचित् असमाप्ति विशिष्ट अर्थ में विद्यमान हो उनसे पूर्व बहुच् प्रत्यय विकल्प से होता है। यथा ईषत् ऊनः पटुः, बहुपटुः। पटुकल्पः ॥ २१८ ॥

कः प्रागिवादकाजिहाव्ययसर्वनाम्नां
प्राक् टेर्भवेच्च किल कोपि तथाऽज्ञकेर्थे।
कः कुत्सिते डतरजेव किमादिकेभ्यो

डतमच्च जातिपरिप्रश्नउ वा बहूनाम्॥ २१९ ॥

इवेप्रतिकृतौ इस से पूर्व क प्रत्यय का अधिकार किया जाता है ॥ प्रागिवीय प्रत्यय के अर्थ में अव्यय तथा सर्वनाम की टि के पूर्व अकच् प्रत्यय होता है ॥ जो प्रातिपदिक अज्ञात रूप अर्थ में विद्यमान हो उनसे परे क प्रत्यय होता है। यथा कस्य अयं अश्वः इति अज्ञातः अश्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वकैः। कुत्सित अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से परे क प्रत्यय होता है। यथा कुत्सितः अश्वः, अश्वकः। दो में से एक का निश्चय करना हो तब किम् यद् और तद् शब्दों से परे स्वार्थ में डतरच् प्रत्यय होता है ॥ यथा अनयोः कतरः वैष्णवः, कतरः। यतरः। ततरः। जाति के प्रश्न में बहुत में से जब एक का निश्चय किया जाय तब किम् आदि से परे डतमच् प्रत्यय होता है विकल्प से ॥ यथा कतमः। यतमः। ततमः ॥२१९॥

कन्स्यादिवे प्रतिकृतौ प्रकृतो मयट् स्यात्
प्रज्ञादिकेभ्य इति चाणशस्कारकाद्वा ।
बह्वल्पकार्थत इहापि कृभ्वादियोगे
संपद्यकर्त्तरि किल च्विरितीह शास्त्रे ॥२२०॥

प्रतिकृति अर्थात् एक जैसा दूसरा रूप अर्थ में विद्यमान जो प्रातिपदिक उससे परे स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है ॥ यथा अश्व इव प्रतिकृतिः। अश्वकः। प्राचुर्य करके प्रस्तुत करने में समर्थ जो प्रातिपदिक उससे परे मयट् होता है ॥ यथा आद्ये प्रकृतं अन्नं, अन्नमयम्। अपूपमयम्। प्रज्ञ आदि प्रातिपदिक से परे स्वार्थ में अण् होता है ॥ यथा प्रज्ञः एव प्राज्ञः। दैवतः। बहु अर्थवा अ

त्प अर्थ में विद्यमान जो कारक उससे परे शस् प्रत्यय विकल्प से होता है। यथा बहूनि ददाति। बहुशः। जो प्रकृति प्रथम विकारवती नहीं होने से पीछे विकृत हुई हो उस विकारार्थक प्रातिपदिक से परे स्वार्थ में विकल्प से च्वि प्रत्यय होता है कृ, भू और अस् धातु के योग से ॥ २२० ॥

च्वावस्यचेद्भवति वा किल साति कार्त्स्न्ये
षो नैव सस्य विहितः खलु सात्पदाद्योः।
च्वौ दीर्घ एव किल डाजनितौ तथा वा
ऽव्यक्तानुकृत्यत इति द्व्यचकावरार्द्धात् ॥२२१॥

च्वि प्रत्यय परे होने से अवर्ण को ई आदेश होता है। यथा कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवति। संपूर्ण का बोध होने वाला हो और वहां च्वि प्रत्यय की प्राप्ति हो तहां साति प्रत्यय होता है॥ साति प्रत्यय के स् को तथा पद के आदि स् को ष् नहीं होता है॥ यथा दधि सिञ्चति॥ अग्निसाद्भवति॥ जब च्वि प्रत्यय परे हो तब अच् को दीर्घ होता है॥ यथा अग्नीभवति। अव्यक्त शब्द के अनुकरण के अर्थ में अनेक अच् हो याने दो अच् से न्यून न हो ऐसे अनुकरण शब्द का कृ भू और अस् धातु के साथ योग हुआ हो उसको डाच् प्रत्यय होता है विकल्प से परंतु इति शब्द परे होने से नहीं होता है॥ २२१ ॥

इत्यत्र पूर्णमपि तद्धितप्राक्रियाख्यं
चाग्रे तिङन्त इह भूमुखधातुयुक्तम्।
ख्यातं गणप्रकरणं मुनिनोक्तमेवं

पद्यैः प्रबन्धमिति नव्यमहं सृजामि ॥ २२२ ॥

इस प्रकार से यहां तद्धित संपूर्ण हुआ॥ और आगे तिङन्त में भ्वादि गण प्रकरण जो पूर्व मुनियों का कहाहुआ है इसीतरह पद्यों से अर्थात् पद्यव्याकरण ग्रन्थ में उसकी नवीन श्लोकरचना करता हूं ॥ २२२ ॥

लट्लिट्लुडेवलृट्लेट् किल लोट्लङेवं
लिङ्लुङ्लृङोथ किल तेष्वपि पंचमोयम् ।
छंदोधिमात्र इह गोचरतामुपास्ते
भावे च कर्मणि सकर्मकतो लकारः ॥ २२३ ।

लट् १ लिट् २ लुट् ३ लृट् ४ लेट् ५ लोट् ६ लङ् ७ लिङ् ८ लुङ् ९ लृङ् १० इन दश लकारों में पांचवां लकार वेद में प्रेरणार्थ में होता है, और ये सब धातुओं से परे लगायेजाते हैं। काल दो प्रकार के होते हैं ॥ अर्धरात्रि से लेकर आनेवाली अर्धरात्रि तक अद्यतन काल होता है, उससे व्यतिरिक्त अनद्यतन काल होता है, इन दोनों के अन्तर्गत भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल होता है. उनमें ये लकार होते हैं वे आगे कहेजांयगे । लकार सकर्मक धातु में कर्मणि तथा कर्त्तरि प्रयोग का सूचक है. और अकर्मक धातु में भाव तथा कर्त्तरि प्रयोग सूचक है। २२३।

लट् वर्त्तमान इति तत्र तिवादयो वै
चाष्टादशापि च लकार गृहे प्रदिष्टाः।
लः स्यात्परस्मैपदं खलु धातुयोगे
तङ्शानजेव किलकानजिहात्मनेपि ॥ २२४ ॥

वर्त्तमान काल की क्रिया प्रकाश करनी हो तब धातु

से परे लट् लकार होता है ॥ लट् में ल अन्तर्गत अ औ र ट् इत्संज्ञक होते हैं. फिर अजंत पुल्लिंग में तद्धितवर्ज प्रत्यय के आदि में ल श कवर्ग इत्संज्ञक होते हैं। इससे ल को भी इत्संज्ञक किया परंतु व्याकरणशास्त्र में निरर्थक उच्चारण नहीं होता है इस से ल् रह कर, भू धातु होने वाचक-भू-ल् ऐसी स्थिति हुई तिप्-तस्-झि,सिप् थस्-थ,मिप्-वस्-मस् । त आतां झ, थास् आथां ध्वम्, इड्-वहि-महिङ् । ये परस्मैपद और आत्मनेपद संज्ञक हैं ये १८ आदेश ल् को होते हैं । लस्थाने जो आदेश होते हैं ये परस्मैपद संज्ञक हैं ॥ त से लेकर महिङ् तक तङ् प्रत्याहार तथा शानच् और कानच् प्रत्यय कि जिसमें मात्र आन् शेष रहता है वे सब आत्मनेपद होते हैं। २२४।

तत्रात्मनेपदामितीह ङितोनुदात्ते
तः कर्त्तरीह खलु शेषत आ परस्मै ।
कर्त्राश्रयेपि च निजं तु फले क्रियायाः
स्वरितेत एव ञित एति तिङस्त्रयोपि ॥

पूर्वान्तरोत्तममया इह च क्रमेण
एकद्वितीयबहुसंज्ञकनामधेयाः ।
युष्मन्मयेपि किल मध्यम एव धातोः
स्यादुत्तमोऽस्मदि च शेष इहैक एवम्।२२५-२२६।

जो धातु अनुदात्त इत् संज्ञक हो अथवा जिसमें ङ् इत् हो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय तङ् तथा शानच् कानच् होते हैं। जो धातु आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय स्थापन करने के निमित्त से हीन हैं उनसे परे परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में होता है।जिस धातु में स्वरित

या-ञ इत् हो और जब कि व्यापार का फल कर्त्ता के आ
श्रय हो तब उससे परे आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं। प
रस्मैपद तथा आत्मनेपद के तिङ् प्रत्याहार के प्रत्येक
तीन२ भाग अनुक्रम से प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, और
उत्तम पुरुष होतेहैं। तिङ् प्रत्याहार के जो प्रत्येकपुरुष-तिप
तस्-झिइत्यादि ये अनुक्रमसे एकवचन द्विवचन और ब
हुवचन संज्ञक होते हैं। जो लकार तिङ्-कारक-कर्त्ता तथा
कर्म बताने वाला हो और उस कारक को युष्मद् शब्द द
र्शाता हो और वह विद्यमान हो या नहीं तो भी उस ल
कार के स्थान में मध्यम पुरुष होता है। जब कि
अस्मद् की अवस्था युष्मद् के सदृश हो तब लकार
के स्थान में उत्तम पुरुष होता है। युष्मद् तथा अस्मद्
की अवस्था के सिवाय लकार के स्थान में प्रथम पुरुष
होता है। भू-ल्-यहांल के स्थान में तिप हुआ प इत् संज्ञक
हुआ तब भू-ति-इस अवस्था में ॥ २२५ ॥ २२६॥

यत्सार्वधातुकमिहैत्र तिङेव शिद्धै
शप् कर्तरीह तदिगन्तपदस्य नित्यम् ॥
स्याद्वै गुणस्तु युगयोः परयोश्च धातो
र्ओऽन्तोऽप्यतो यञि च दीर्घ इतीह तत्र ॥२२७॥

धातोः, इसके अधिकार में कहे हुऐ तिङ् प्रत्यय
तथा जिन का शकार इत् संज्ञक हो वे प्रत्यय
सार्वधातुक कहाते हैं। कर्ता अर्थ वाची सार्वधातुक
परे होने से धातु से परे शप् प्रत्यय होता है। शकार तथा
प इत् संज्ञक होकर भु-अ-ति ऐसा रहा। सार्वधातुक त
था आर्धधातुक जिस से परे हो ऐसे अंग के अंत में इक्

हो तो उस इक् को गुण आदेश होता है। भू को गुण होने से भो होकर अव् होकर भवति। यह रूप हुआ। द्वि वचन भवतः। बहुवचन भू-अ-झि। प्रत्यय का अवयव जो झ् उसके स्थान में अंत आदेश होता है। तब झ का अन्त होकर इ में मिला तब भवन्ति। भवसि। भवथः। भवथ। भव-मि। यञ् आदि सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से अकारान्त अंग को दीर्घ आदेश होता है। तब भवामि। भवावः। भवामः ॥२२७॥

लिट् स्यात्परोक्ष इति तत्र तिबादिकानां
स्युर्वै णलादय इतीह भुवो वुगेव।
द्वित्वं लिटीह च परे तदचः परस्य
चाभ्यासपूर्व इति शेषहलादिरत्र ॥ २२८ ॥

परोक्ष अर्थात् जो वृत्तान्त देखने में आया नहीं उस को जाहिर करने के वास्ते जो धातु का व्यवहार करना हो उससे परे अनद्यतन भूत में लिट् लकार होता है। तब ल् शेष रहा, और तिप् आदि प्रत्यय आदेश हुये। लिट् के परस्मैपद संज्ञक तिप् आदि नव प्रत्ययों को णल् से आदि ९ आदेश होते हैं। णल्-अतुस्-उस्, थल्-अथुस्-अ, णल्-व-म। णल् का ण्-ल्-इत्संज्ञक, तब भू-अ। प्रथम पुरुष का एकवचन। भूधातु से परे लुङ् या लिट् संबंधी अच् आवे तो भू धातु को वुक् आगम होता है। तब भूव् अ। जिस धातु को द्वित्व न हुआ हो और लिट् लकार परे हो उस धातु के एकाच् प्रथम भाग को द्वित्व होता है परन्तु प्रथम भाग के प्रारंभ में अच् हो तो द्वितीय एकाच् भाग को द्वित्व होता है। भूव् भूव् अ। ये दो

रूप हुए उनमें से प्रथम की अभ्यास संज्ञा होती है। अभ्यास का आदि हल् रहता है बाकी हल् का लोप होता है। भू भूव्-अ। ऐसी व्यवस्था हुई॥ २२८॥

ह्रस्वोऽपि तत्र भवतेर इतीह चर्त्वं
लिट् चार्द्धधातुकपदस्य किलेड्वलादेः॥
भाव्ये भवेच्च तदनद्यतनेऽपि लुट् वै
धातोस्सदैव परतो ऌलुटोः स्यतासी॥२२९॥

अभ्यास के अच् के स्थान में ह्रस्व आदेश होता है। तब-भू-भूव्-अ। भू धातु के अभ्यास के स्थान में जब लिट् परे हो तब अ होता है। तब-भ-भूव्-अ। अभ्यास के झल् के स्थान में जश् और चर् भी होता है॥ तौ झश् को जश् और खय् को चर् होता है। तब बभूव। बभूवतुः। बभूवुः। लिट् के स्थान में जो तिङ् आदेश होता है वह आर्धधातुक संज्ञक होता है॥ जो आर्धधातुक के आदि में वल् प्रत्याहार आवे उसको इट् आगम होता है। तब बभूविथ। बभूवथुः। बभूव। बभूव। बभूविव। बभूविम। अनद्यतन भविष्य अर्थ प्रकाश करना हो तब धातु से परे लुट् होता है॥ धातु से परे ऌ या-नी (ऌट् ऌङ्) हो तो उस धातु से परे स्य प्रत्यय होता है॥ और लुट् हो तौ तासि प्रत्यय होता है॥ तब भू तासि॥ २२९॥

स्यादार्धधातुकमिहैव तु शेष एव
डारौरसः प्रथमकस्य लुटो भवन्ति।
तासस्तियुग्मपदयोरपि लोप एव
रादौ परेऽपि च लुडेव च शेष इत्थम्॥२३०॥

लिङ् तथा शित् प्रत्यय को छोड कर शेष कोई भी प्रत्यय धातु से विहित हो तौ उसकी आर्धधातुक संज्ञा होती है ॥ लुट् के प्रथम पुरुष संज्ञक प्रत्यय के स्थान में डा-रौ-रस् आदेश अनुक्रम से होते हैं। जब डित् संज्ञक प्रत्यय परे हो तौ टि का लोप होता है। तब भविता। तास् प्रत्यय तथा अस्ति धातु के परे सकार आदि प्रत्यय हो तौ तास्-और अस् के स का लोप होता है॥ तास् प्रत्यय तथा अस् धातु से परे रादि प्रत्यय हो तौ भी तास् अस् के स का लोप होता है॥ भवितारौ॥ भवितारः॥ भवितासि। भवितास्थः। भवितास्थ॥ भवितास्मि॥ भवितास्वः। भवितास्मः॥ भविष्य अर्थ में जो धातु का व्यवहार करने में आता है उससे परे लृट् आता है॥ क्रियार्थवाचक क्रिया हो या न हो॥ २३०॥

लोट् चाशिषीह लिङ्लोडुभकौ तथेरुः
तुह्योश्च तातङिति वा लङ्वत्तु लोटः।
तां तं च तामिति चतुर्ष्वपि सेर्ह्यपिच्च
हेर्लुक्कृतो निरिति मेरच वरस्य पिच्चाट्॥२३१॥

विधि आदि अर्थ में धातु से परे लोट् आता है॥ आशिष् अर्थ में धातु से परे लिङ् तथा लोट् दोनों आते हैं लोट् के स्थान में होनेवाले जो प्रत्यय तिनके इ के स्थान में उ होता है। आशिष् अर्थ में तु, और हि के स्थान में तातङ् आदेश विकल्प से होता है। तातङ् आदेश ङित् है, तथापि संपूर्ण तु, और हि, के स्थान में होता है॥ तातङ् में अङ् इत्संज्ञक है॥ भव अ-तात्॥ भवतात्। लोट् को लङ् के सदृश ताम् आदि आदेश होते हैं। और उसके स का लोप होता है। ङित् लका

र-लङ् लिङ् लुङ् और लृङ् केस्थानमें आदेश जो तस् थस् थ और मिप् इनके स्थान में ताम्-तम्-त और अम् अनु-क्रम से होते हैं ॥ तब भवताम् । भवन्तु । लोट् के स्थान में जो सि (सिप्) हुआ है उसके स्थान में हि हुआ है परंतु उसको पित् नहीं समझना । ह्रस्व अकार से परे हि का लुक् होता है । भव भवतात् । भवतम् । भवत । लोट् के मि (मिप्) आदेश के स्थान में नि होता है ॥ लोट् के उत्तम पुरुष में जो प्रत्यय होते हैं उनको आट् का आगम होता है, और उसको पित् संज्ञक समझना । तब भवानि ॥ २३१ ॥

धातोर्भवन्ति किल पूर्वत आनि लोट् स्या
न्नित्यं ङितोपि तदनद्यतने च लङ् वै ॥
अट् लुङ्लङोर्लृङि तु चेत इहैव लोपो
विध्यादिकेषु लिङिहैव ङिदेव यासुट् ॥ २३२ ॥

गति तथा उपसर्ग संज्ञक होते हैं वो धातु के पूर्व में लगाये जाते हैं । उपसर्ग में रहे हुये र तथा ष के परे के लोट् का जो आनि आदेश उसके नकार के स्थान में णकार होता है । तब प्रभवाणि , ऐसा रूप होता है । ङित् लकार के स्थान में होनेवाला जो सकारान्त उत्तम पुरुष का आदेश उसका नित्य लोप होता है । तब भवाव । भवाम । अनद्यतन भूत अर्थ का व्यवहार करना हो तो उस धातु से परे लङ् होता है । अंग से परे लुङ् लङ् और लृङ् लकार आवे उस अंग को उदात्त अट् आगम होता है । ङित् लकार के स्थान में होनेवाले इकारान्त परस्मैपद आदेश जो-ति, अन्ति, सि, और मि

इनका लोप होता है। यथा अभवत्-अभवताम्-अभवन्, अभवः- अभवतम्-अभवत। अभवम्-अभवाव-अभवाम। विधि-निमंत्रण-आमंत्रण-अधीष्ट-संप्रश्न-और प्रार्थना इतने अर्थों में धातु से परे लिङ् होता है। लिङ् के स्थान में जो परस्मैपद संज्ञक आदेश उनको यासुट् का आगम होता है, वह ङित् तथा उदात्त संज्ञक है ॥२३२॥

लुक् सस्य चेय् वलि लोप इहैव च व्योः
झेर्जुस् लिङाशिषि किदाशिषि ग्क्ङिति नस्तः॥
लुङ् माङि लुङ् भवति लङ् च लुङुत्तरस्मे
च्लिश्च्लेः सिजेव किल गातिमुखे सिचो लुक्

लिङ् के स्थान के सार्वधातुक आदेश के स अवयव का लोप होता है, परंतु वह सकार अंत में न हो। अह स्व अवर्ण से परे सार्वधातुक का अवयव जो यास् उसको इय् होता है। वल् प्रत्याहार परे होने से व्, तथा य् का लोप होता है। भवेत्-भवेताम्। लिङ् के स्थान के झि आदेश को जुस् होता है। यथा भवेयुः। भवेः। भवेतम्। भवेत भवेयम्। भवेव। भवेम। आशिष् अर्थवाचक लिङ् के स्थान का जो तिङ् आदेश उसकी आर्धधातुक संज्ञा है। आशिष् अर्थ में जो लिङ् उसके स्थान का जो यासुट् वह कित् संज्ञक है॥ गित्-कित्-ङित्-निमित्त इक्लक्षण में गुण वृद्धि नहीं होते हैं॥ भूयात्-भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्॥ भूयास्व॥ भूयास्म॥ भूत अर्थ में धातु से परे लुङ् होता है॥ धातु से प्रथम माङ् उपपद हो तो सर्व लकारों का अपवाद करके लुङ् होता है॥ जब कि माङ् से परे स्म हो और पीछे धातु आवे तब उससे परे लङ् तथा लुङ् होते हैं॥ लुङ् परे होने से

धातु को च्लि प्रत्यय होता है॥ च्लि के स्थान में सिच् होता है। सिच् में इ तथा च इत् होता है ॥ जब कि गा, स्था और घु संज्ञक तथा पा और भू इन धातुओं से परे परस्मैपद प्रत्यय आवे तब सिच् का लोप होता है।२३३।

स्याद्भूसुवोस्तिङि गुणो न नमाङ्न्यडाटौ
लृङ्लिङ्निमित्त इति हेतुमये क्रियायाः ॥
आदेरतोपि किल चाट् तदजादिकाना
मीडेव तत्र खलु चास्तिसिचोप्यपृक्ते॥ २३४ ॥

भू तथा सू धातु से परे सार्वधातुक तिङ प्रत्यय आने से गुण नहीं होता है ॥ यथा अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत ॥ अभूवम् ॥ अभूव ॥ अभूम । जब कि धातु माङ् के साथ हो तब अट् तथा आट् न होगा। यथा माभवान् भूत। मास्मभवत्। मास्म भूत्। लिङ कारक हो सके ऐसा कार्य कारण भाव,विधि निमंत्रण आदि निमित्त में से कोई भी हो और क्रिया की असिद्धि जानी जाती हो तौ भविष्य अर्थमें लृङ हो ता है ॥ यथा अभविष्यत् । अभविष्यताम्। अभविष्य न् । अभविष्यः । अभविष्यतम्। अभविष्यत । अभवि ष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम ॥ अत् धातु निरंतर गमन अर्थ में है॥ अतति। अततः। अतंति। अभ्यास के आदि ह्रस्व अ को दीर्घ होता है । आ अत्-अ । आत। आततुः । आतुः । अतिता । अतिष्यति ॥ अच् आदि अंग से परे लुङ लङ् और लृङ् लकार हो तो धातु को आट् आगम होता है ॥ आतत् । आतताम् । अतेत् ॥ अत्यात् । विद्यमान सिच् अथवा अस् धातु से परे का

जो अपृक्त हल् उसको ईट् आगम होता है ॥ २३४

सस्यैव लोप इट ईटि च झेर्जुसेभ्यः
ह्रस्वं लघुश्चितसुयोगगुरुश्च दीर्घः ॥
चेको गुणः किल पुगन्तलघूपधस्या
संयोगतो लिडिति किच्च गदेषु नेर्णः ॥ २३५ ॥

जिसके परे ईट् हो ऐसे इट् से परे स का लोप होता है। सिच् अथवा अभ्यस्त संज्ञक धातु अथवा विद् धातु से परे के ङित् लकार के स्थान में होने वाले झि प्रत्यय को जुस् होता है ॥ आतिषुः। आतीः। आतिष्टम्। आतिष्यत्। ह्रस्व अच् की लघु संज्ञा, संयोग परे होने से ह्रस्व अच् की गुरु संज्ञा और दीर्घ अच् की भी गुरु संज्ञा होती है ॥ जो अंग पुगन्त त्योंहीं लघूपध हो तो सार्वधातुक वा आर्धधातुक प्रत्यय परे होने से उसके इक् को गुण होता है। षिधु धातु गमन अर्थ में है। यथा सेधति। सिषेध। असंयोग से परे अपित् लिट् कित् संज्ञक होता है। सिषिधतुः। सेधिता। सेधिष्यति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। असेधीत्। असेधिष्यत्। चिति धातु स्मरण, शुच् धातु खेद करण उनके इसी प्रमाण से रूप जान लेना। गद् धातु स्पष्ट बोलना। गदति। शेष रूप भू धातु समान जान लेना। उपसर्ग में रहे हुए र-तथा-ष निमित्त से परे नि के न को ण होता है। गद-स्पष्ट बोलना, नद नाद करना, पत् पड़ना, पद जाना। घु संज्ञक धातु, मा मापना, षो नाश पाना, हन् हनन करना या जाना, वा बहना, द्रा दौड़ना, प्सा खाना, वप बोना, वह बहना, शम् शान्त होना, चि-स

पद करना, दिह लीपना ॥ २३५ ॥

स्यादे कुहोश्चुरुपधात इतीह वृद्धिः
णिद्वा णलुत्तम इहास्य लघोर्हलादेः ॥
णो नोपसर्गत इहैव च णोऽसमासे
ज्ञेयोत एकहलमध्य इतो लिटित्वे॥ २३६ ॥

अभ्यास के कवर्ग और हकार को चवर्ग आदेश होता है। ञित् या णित् प्रत्यय परे होने से अकार रूप उपधा को वृद्धि होती है। जगाद। जगदतुः। उत्तम पुरुष के णल् को विकल्प से णित् कहा है। जगाद। जगद। जो धातु के आदि में हल् हो उससे परे इट् आगम तथा परस्मैपद में सिच् प्रत्यय परे हो तो उसके लघु संज्ञक अकार को विकल्प से वृद्धि होती है। अगादीत्। अगदीत् ॥ उपदेश में धातु का अक्षर ण हो तिसके स्थान में न होता है ॥ णद धातु अस्पष्ट शब्द में। समास न हो तो भी उपसर्ग स्थित जो निमित्त में र तथा ष् उससे परे ण उपदेश विषयक धातु के न के स्थान में ण होता है ॥ यथा प्रणदति ॥ प्राणिनदति ॥ कित् संज्ञक लिट् परे होने से लिट् निमित्तक अंग के अभ्यास के आदि अक्षर के स्थान में आदेश न हो उस अंग के असंयुक्त हल् के मध्य रहने वाले अकार के स्थान में एकार होता है और अभ्यास का लोप होता है ॥ यथा नेदतुः ॥ नेदुः ॥ २३६ ॥

एत्वं च सेटि थलि आदय एव चेतो
धातोर्नुमेव मिदितो ह्रिहलोत्र नुट् स्यात् ॥
वृद्धिस्तदाऽत्र इह तत्र वदादिकानां

ह्म्यंतक्षणश्वसिचिजागृणिश्वीनेषु वृद्धिः ।२३७।

त्योंही इट् सहित थल् प्रत्यय परे होने से भी पूर्वो क्त कार्य होते हैं ॥ नेदिथ। नेदथुः । ननाद । ननद । न दिष्यति। अनादिष्यत्। नर्द शब्द करना, नाटि नाचना, नाथृ मांगना, नाधृ-मांगना, नन्द-हर्ष, नक्क-नाशकरना, नृ-लेजाना, नृत-नाचना । ये नकारादि धातु णोपदेश नहीं हैं ॥ उपदेश में धातुओं का उच्चारण करते समय आदि में ञि-टु और डु होय तो उनकी इत्संज्ञा होती है॥जिस धातु का इकार इत्संज्ञक हो उसको नुम् होता है ॥ टुनदि धातु समृद्धि अर्थ में है॥ इ इत् होने से नद को नुम् होने से नन्दति। ननन्द । नन्दिष्यति ॥ अनन्दिष्यत् ॥ अर्च धातु पूजा के अर्थ में है ॥ दो हल् जिस में हों ऐसे धातु के अभ्यास को दीर्घता हुई हो ऐसे स्वर के परे जो वर्ण उसको नुट् होता है। आनर्च। व्रज धातु जाना। वद्-व्रज और दूसरे सर्व हलंत धातु के अच् को नित्य वृद्धि होती है परंतु जो परस्मैपद परे ऐ-सा सिच् परे हो तो। कट धातु-बरसना घेरना । कटति चकाट। जिस धातु के अंत में ह-म-अथवा य् हो त्योंही क्षण श्वस् जागृ तथा जिसके अंत में णि हो त्योंही पुनः श्वि और एदित् इन सब को वृद्धि नहीं होती जो इट् आदि सिच् प्रत्यय परे हो तो॥यथा अकटीत् अकटिष्यत् ॥ २३७ ॥

गुप्वादिकेभ्य इति चाय उ धातवो ये
आयादयोपि च किलार्धकधातुके वा ॥
आतो लुगास इति तत्र च लिट् कृञाद्याः

स्यादा उरत् द्विरचि वाभ्य उदात्तभिन्नात्॥
एकाच एव किल नेडुपदेश इड्वा
तृदित् स्वरत्यभिमुखेभ्य उ नेटि वृद्धिः॥
लोपो झलो झलि च सस्य लिटः कृञादे
र्नेट् चानिटस्थल इतस्तदजन्तधातोः २३८-२३९

गुप्-रक्षाकरना, धूप् तप्तकरना, विच्छ-निकट आना, पण-स्तुति करना और पन स्तुतिकरना। इन धातुओं से परे स्वार्थ में आय प्रत्यय होता है। यथा गोपायति। जब कि आर्धधातुक प्रत्यय धातु से परे करने की इच्छा हो तब आय आदि प्रत्ययों में से आय इयङ् और णिङ् विकल्प से होते हैं। धातु को आर्धधातुक प्रत्यय हो कर उसका प्रत्ययविशिष्ट धातु हुआ हो उसके अंत के अकार का लोप होता है परंतु आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो आम् से परे के प्रत्यय का लुक् होता है॥ गोपायाम्। कृञ् प्रत्याहार अंतर्गत-कृ-भू-और अस्-इन तीन धातुओं का आमन्त धातु के परे अनुप्रयोग होता है॥ और पीछे लिट् लकार आता है॥ अभ्यास के ऋवर्ण के स्थान में अर् होता है। यथा गोपायांचकार। जिसके निमित्त से द्वित्व होनेवाला ऐसे अच् आदि प्रत्यय परे होने से जो द्वित्व न किया हो और करने को हो तो पूर्व अच् के स्थान में कोई भी आदेश नहीं होता है॥ गोपायांचक्रतुः॥ उपदेश में उच्चार करते जो धातु एकाच् तथा अनुदात्त हो उससे परे वल् आदि युक्त आर्धधातुक प्रत्यय आये तो भी इट् आगम नहीं होता है॥ यथा गोपायांचकर्थ॥ गोपायांबभूव॥ गोपायामास॥ उपदेश अवस्था

में जो एकाच् धातु और अनुदात्त धातु और तैसे ही आ र्धधातुक संज्ञक धातु इनको इट् नहीं होता है ॥ ऊदन्त ऋदन्त और यु-रु-ष्णु-शी-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रि-और-वृङ् वृञ् के विना एकाच् धातु अजन्त धातुओं में अनिट् होता है ॥ कान्त धातुओं में शक्लृएक ही अनिट् है। ये सब धातु अनिट्कारिका से विदित करलेना ॥ स्वरति आदि और ऊदित् धातुओं से परे वलादिक आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे होने से इट् विकल्प से होता है. यथा जुगोपिथ, जुगोप्थ ॥ इडादि सिच् प्रत्यय परे होने से हलन्त को वृद्धि नहीं होती है ॥ यथा अगोपायीत् ॥ अगोपीत् । झल् से परे स का लोप होता है झल् परे होने से,यथा अगोप्तां ॥ च्चि धातु वय अर्थ में.कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु द्रु-स्रु-श्रु इन धातुओं से लिट् में इट् का निषेध है ॥ उपदेश की स्थिति में जो अजन्त धातु और तास् प्रत्यय परे होने से जो नित्य अनिट् उस से परे जो थल् उस को इट् नहीं हो ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

नेडत्वतो थल ऋदन्तत एव नेट् स्यात्
दीर्घो ह्यचोप्यकृत्सार्बकधातुयोगे ॥
वृद्धिः सिचीक उ परस्मैपद एव नित्यं
भ्रासादिकेभ्य इति वा श्यन्सार्वधातौ ॥ २४० ॥

तास् प्रत्यय परे होने से जो नित्य अनिट् ऋदन्तधातु उससे परे थल् को इट् नहीं होता है । यह मत भरद्वाज मुनि का है।इनसे अन्य धातु से तो थल् को इट् होता ही है । यहां यही संग्रह किया है।अजन्त-या अकारवान् तास् प्रत्यय परे होने से अनिट् धातु का थल् परे होने से

विकल्प से इट् होता है। ऋदन्त ऐसे नित्य अनिट् धातु हैं; ऋादिकों से अन्य को इट् होता है। इससे ञि धातु को नित्य अनिट् होने से थल् के विषय में विकल्प से इट् हुआ है। यथा चिच्चयिथ चिच्चेथ। अजन्त अंग को दीर्घ होता है क प्रत्यय परे होने से. और कृदन्त प्रत्यय तथा सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय परे होने से दीर्घ नहीं होगा। यथा चीयात्। इगन्त अंग को वृद्धि हो परस्मैपद संज्ञक सिच् प्रत्यय परे होने से। यथा अचैषील्। अचेष्यत्। तप् धातु संताप अर्थ में। तपति। ततापभ्राश् भ्लाश् भ्रमु क्रमु क्लमु त्रासि त्रुटि लष् इन धातुओं से श्यन् प्रत्यय विकल्प से होता है कर्ता अर्थ में सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय परे होने से ॥ २४० ॥

दीर्घः क्रमः शिति परस्मैपद एव नित्यं
शादौ पिबादय इतीह च पादिकानाम् ॥
आवात एव च णलस्तु किलेटिलोपोऽ
जादेस्तथैर्लिङि जुसात उसी परत्वं ॥ २४१ ॥

परस्मैपद जिससे परे है ऐसा शित् प्रत्यय परे होने से क्रम धातु के अच् को दीर्घ होता है। यथा क्राम्यति। क्रामति। चक्राम अक्रमिष्यत्। पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृश्-ऋ-सृ-शद षद-इन धातुओं को शकारादि प्रत्यय आवे तो पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्य-ऋच्छ-धौ-शीय-सीद-ये-आदेश यथा क्रम से होते हैं। यथा पिबति। आकारान्त धातु से परे णल् आवे तो उसके स्थान में औ होता है। पपौ। जो आर्धधातुक प्रत्यय के आदि में कित् अथवा ङित् अच् हो अथवा इट् आगम परे हो तो आकार का लोप होता

है। यथा पपतुः। पपुः। घु संज्ञक धातु तथा मा-स्था इत्यादि धातुओं के अच्को ए होता है जो लिङ् के स्थान में कित् आर्धधातुक परे हो तो। यथा पेयात्। अपात्। जब सिच् का लोप हो तब आकारान्त धातु से परे झि के स्थान में जुस् होता है॥ जब कि अपदान्त अवर्ण से परे उस् हो तब पूर्व स्थान में पररूप एकादेश होता है॥ यथा अपुः॥ अपास्यत्॥ ग्लै धातु ग्लानि अर्थ में॥२४१॥

आदेच आशिति घुमान्यतरस्य वैत्वं
सक् स्यात् सिचस्तदिट् तत्र यमादिकानाम्।
संयोगकादिकपदस्य गुणोप्यृतश्च
स्ये ऋद्धनोरिडिति चार्तिमुखे गुणोपि।२४२।

उपदेश काल में एजन्तधातु को आकार अन्तादेश होता है, शित् प्रत्यय परे होने से नहीं होता है। यथा ग्लाता॥ ग्लास्यति॥ घु संज्ञक तथा मा, स्था धातु वर्जित धातुओं के आदि में संयोग हो उसके आकार को विकल्प से एकार होता है॥ यथा ग्लेयात्॥ यम्-रम्-नम्-इनको तथा आकारान्त धातु को सक् आगम होता है॥ और इनके सिच् प्रत्यय को इट् आगम होता है जो परस्मैपद प्रत्यय परे हो तो। अग्लासीत्। अग्लास्यत्॥ ह्वृ कौटिल्ये। कुटिलपना करना। जिसके आदि में संयोग हो ऐसे ऋदन्त अंग से परे लिट् हो तो गुण होता है। यथा जह्वार। जह्वरतुः। ऋदन्त धातु तथा हन् धातु से परे स्य हो तो उसको इट् आगम होता है॥ यथा ह्वरिष्यति। गमनार्थक ऋ धातु तथा जिसके आदि में संयोग हो ऐसी ऋदन्त धातु को गुण होता है॥ यथा ह्वर्यात्। श्रु धातु सुननेमें॥ २४२॥

श्रृश्नुश्च यत् श्रुव इहाऽपित् ङिच्च सार्वे
यत्सार्वधातुकपदे यण् हुश्नुवोर्वे ॥
म्वोर्लोप ओरिति भवेत्किल वाप्युतश्च
हेर्लुक् छएतदिषुषूतगमां च लोपः ॥ २४३ ॥

श्रुधातु को श्रृ आदेश होता है। पश्चात् उससे परे श्नु प्रत्यय होता है ॥ यथा शृणोति। अपित् सार्वधातुक जो प्रत्यय वो ङित् के समान है। शृणुतः। अनेक अच् जिस में हो ऐसे धातु से परे श्नु प्रत्यय होता हो और श्नु से पूर्व संयोग न हो ऐसा श्नु अंतर्गत उ से तथा हु धातु के उ से परे अच् आदि सार्वधातुक प्रत्यय हो तौ ऐसे उकार के स्थान में यण् होता है ॥ शृण्वन्ति। जो उकारान्त प्रत्यय के पूर्व संयोग न हो और उस से परे म तथा व आवे तौ उस उकार का विकल्प से लोप होता है ॥ शृण्वः। शृणुवः। शृण्मः। शृणुमः। उकारान्त असंयोग पूर्व जो अंग उस से परे हि का लुक् होता है ॥ यथा शृणु। इष्-गम्-यम् इन धातुओं के अंत्यस्थान म छ आदेश होता है जो शित् प्रत्यय परे हो तौ। गम्लृ गतौ जाना। गच्छति। जगाम। गम्-हन्-जन्-खन्-घस्-इन धातुओं के उपधा का लोप होता है जो अङ्-अच्-कित् और ङित् प्रत्यय परे हो तौ। जगमिथ, जगन्थ ॥२४३॥

साद्यार्धधातुकपदस्य गमेरिहेट् स्यात्
च्लेरङ् पुषादिषु किलैटित आत्मनेटेः ॥
आतो ङितस्त्वियिति से टिति थास एवे
जादेश्च तद्वदुरुमतश्च तदामनृच्छः ॥२४४॥

परस्मैपद में गम् धातु से परे जो सकार आदि आर्ध-धातुक प्रत्यय हो तौ उसको इट् आगम होता है। यथा गमिष्यति। परस्मैपद विषयक श्यन् विकरणवाले दिवादिगण के पुष् आदि धातुओं से परे तथा द्युत् आदि गण से परे तथा लृ इत्संज्ञक धातुओं से परे च्लि के स्थान में सिच् को वाध कर अङ् आदेश होता है। यथा अगमिष्यत्। इति भ्वादिगण का परस्मैपद॥
टित् लकार के स्थान में होनेवाला जो आत्मेनपद संज्ञक आदेश उसकी टि को ए आदेश होता है। एध वृद्धौ. वृद्ध होना। यथा एधते। अकार से परे जो ङित् प्रत्यय उनके अकार के स्थान में इय् आदेश होता है। यथा एधेते। टित् लकार के स्थान में होनेवाले थास् प्रत्यय को से आदेश होता है। एधसे। ऋच्छ धातु वर्जित इच् आदि तथा गुरु संज्ञक अच् सहित जो धातु उससे रे लिट् लकार हो तो उसको आम् प्रत्यय होता है।२४४।

स्यादात्मनेपदमितीह कृञोपि तद्वत्
स्यादेशिरेच् किल लिटस्तझयोश्च धस्य॥
अंगादिणः किल च षीध्वमलुङ्लिटां ढः
लोपोधिसस्य तु ह एति किलाम् तदेतः।२४५।

आम् प्रत्ययान्त के साथ जो कृ धातु उसको आम् प्रत्यय तुल्य समझना। और जैसे उस आम् प्रकृति से आत्मनेपद होता है कृ धातु से भी। लिट् का जो त और झ आदेश उनको एश् और इरेच् आदेश अनुक्रम से होते हैं. यथा एधांचक्रे, एधांचक्राते। एधांचक्रिरे। जो अंग के अंत में इण् प्रत्याहार का कोई भी वर्ण हो उ

सन्से परे का लुङ् लिट् के षीध्वं आदेश के धकार को ढकार होता है। यथा एधांचकृढ्वे । ध आदि प्रत्यय परे होने से स् का लोप होता है। अस् धातु तथा तास प्रत्यय के सकार से परे एकार होतो स के स्थान में हकार होता है यथा एधिताहे। लोट् के एकार के स्थान में आम् होता है। यथा एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम्। २४५॥

वामौ क्रमादिह सदा भवतः सवाभ्यां
आयेत इत्यपि लिङो भवतीह सीयुट् ॥
रन् झस्यचात्तु तदिटस्तुतिथोः सुडेव
स्यादात्मनेपदमयेष्वनतः कमेर्णिङ् ॥२४६॥

स् तथा व् से परे के लोट् के एकार के स्थान में क्रम से व तथा अम आदेश होते हैं। यथा एधस्व। लोट् के उत्तम पुरुष के एकार के स्थान में ऐ होता है। यथा एधै। एधावहै। लिङ् के लकार को सीयुट् आगम होता है। यथा एधेयाताम्। लिङ् के झ प्रत्यय के स्थान में रन् आदेश होता है। यथा एधेरन्. लिङ् के इट् आदेश के स्थान में अत् होता है। यथा एधेय. लिङ् के तकार तथा थकार को सुट् आगम होता है। यथा एधिषीष्ट। एधिषीयास्ताम्। आत्मनेपद का झ प्रत्यय अ के परे न हो तो उसके स्थान में अत् होता है। यथा ऐधिषत। ऐधिष्यत। कमु कान्तौ। इच्छना। कम् धातु से परे णिङ् प्रत्यय होता है, परंतु उस धातु के अर्थ में होता है। यथा कामयते।२४६।

आमादिकेष्वयितिणश्चङश्यादिकेभ्यो
णयन्ता च णेरनिटि णौ चङि वै लघुः स्यात् ।

द्वित्वं चङीति किल सन्वदिहात्र णौ वै
तच्चङ्परे लघुनि सन्यत इद्भवेद्धि ॥ २४७ ॥

जब कि आमन्त तथा आलु आय्य और इत्नु इष्णु इत ने प्रत्ययों में से कोई भी धातु से परे हो तौ णिङ् को अय् आदेश होता है। यथा कामयांचक्रे, चकमे। कामयिता कमिता। श्री-द्रु-और स्रु इन से परे तथा णिङ णिच् से परे कर्त्ता अर्थ में लुङ् हो तौ च्लि के स्थान में चङ आदेश होता है। जो आर्धधातुक के आदि में इट् होय नहीं वो जब कि परे हो तब णि का लोप होता है। जिस अंग से परे णि हो और उस से परे चङ हो तौ उस अंग के उपधा को ह्रस्व होता है। जब कि चङ परे हो तब अनभ्यास धातु के एकाच् अवयव के प्रथम भाग को द्वित्व होता है और अजादि धातु हो तब दूसरे एकाच् भाग को द्वित्व होता है॥ जिस के परे चङ हो ऐसी णि जिस अंग के परे हो और णि निमित्त मानकर अक् प्रत्याहार संबंधी कोई वर्ण का लोप न हुवा हो तौ उस के लघुपरक अभ्यास को सन् परे होने से जो कार्य करना है वो होगा. अभ्यास से परे सन् हो तौ अभ्यास के अकार स्थान में इकार होता है॥ २४७॥

दीर्घो लघोर्ल उपसर्गर आयतौ वै
आम् स्याल्लिटीह च दयादिकतो नितान्तम्।
ढो वा च धस्य लुङि वा युड्भ्योथ वृद्भ्यो
पं सन्स्ययोर्न हि चतुर्भ्य इडत्र वृद्भ्यः।२४८

सन्वद्भाव का विषय हो तब अभ्यास के लघु को

दीर्घ होता है। यथा अर्चीकमत. अय धातु परे हो ऐसे उपसर्ग के रेफ के स्थान में लकार होता है। अय धातु गतौ,जाना। प्लायते। पलायते। दय,अय और आस धातु से परे लिट् हो तौ आम् प्रत्यय होता है। यथा अयाञ्चक्रे। इण् से परे जो इट् उससे परे जो सीध्वं लुङ् लिट् का ध उस को ढकार विकल्प से होता है. यथा अयिषीढ्वम्। अयिषीध्वम्। द्युत् दीप्तौ, प्रकाशना ॥ द्युत तथा स्वपि धातु के अभ्यास को संप्रसारण होता है. यथा दिद्युते। द्युत आदि धातुओं के परे के लुङ् को विकल्प से परस्मैपद प्रत्यय होते हैं॥ यथा अद्योतिष्ट। श्वितृ आवरणे,स्वेत रंग वाचक ॥ मिद (ञिमिदा) स्नेहने ॥ चिकना होना ॥ ष्विद् (ञिष्विदा) स्नेहनमोचनयोः ॥ चिकनाह अर्थ में त्याग अर्थ में। रुच दीप्तौ अभिप्रीतौ च। प्रकाश और प्रीति करणार्थक॥ घुट परिवर्तने ॥ शुभ दीप्तौ। क्षुभ संचलने। णभ तुभ हिंसायाम् ॥ स्रंसु भ्रंसु ध्वंसु गतौ। वृतु वर्तने ॥ वर्तते ॥ वृत इत्यादि पांच धातुओं से स्य अथवा सन् प्रत्यय होने की भावना हो उस से परे विकल्प से परस्मैपद प्रत्यय होते हैं ॥ वृत वृध-शृध-स्यन्द इन चार धातुओं से परे तङ् याने आत्मनेपद प्रत्यय तथा शानच् प्रत्यय का अभाव हो तौ सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय परे होने से इट् नहीं होता है॥ यथा वर्त्स्यति। वर्तिष्यते॥ २४८ ॥

अस्यैत्वमत्र च भवेन्न शसादिकेभ्य
ए आदिकेभ्य इति रिङ् ऋत एव शादौ ॥
उश्चैव किज्झलि सिचो लघुतोपि लोपः
स्यात्संप्रसारणमिहैव वचादिकेषु॥ २४९ ॥

शस्-दद-और वकारादि धातु तथा गुण शब्द विहित अकार इनको एकार और अभ्यास का लोप नहीं होता है। यथा दद दाने। ददते। ददाते। त्रप (त्रपूष्) लज्जायाम्। त्रपते। तृ-फल-भज- और त्रप धातुओं से परे कित्-लिट् तथा इट् युक्त थल् आवे तो उन धातुओं को एकार और अभ्यास का लोप होता है। यथा त्रेपे। इति भ्वादि गण का आत्मनेपद संपूर्ण हुआ॥ अथ उभयपदी धातु। श्रिञ् सेवायाम्, सेवन करना। श्रयति। श्रयते, शिश्राय, शिश्रिये, भृञ् भरणे। भरति, भरते। बभार, बभ्रे। ऋकार से परे श, अथवा यक् अथवा लिङ् के स्थान का यकारादि आर्धधातुक प्रत्यय हो तौ ऋकार के स्थान में रिङ् आदेश होता है॥ भ्रियात्॥ ऋवर्ण से परे आत्मनेपद वाचक लिङ् तथा सिच् प्रत्यय हो तौ वह कित् होता है॥ यथा भृषीष्ट॥ ह्रस्व अंग से परे के सिच् का लोप होता है, यदि झल् परे हो तौ। यथा अभृत। हृञ् हरणे। हरति। हरते। जहार। जह्रे॥ धृञ् धारणे॥ धरति॥ धरते॥ णीञ् प्रापणे। नयति। नयते। डुपचष् पाके। पचति। पचते। भज सेवायाम्। तद्वत्। यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु। तद्वत्। लिट् परे होने से वच आदि तथा ग्रह आदि धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होता है। यथा इयाज।२४९।

तद्वद्वचिस्वपियजादिभृतां कितीह
स्याद्धस्तथोः किल झषः परयोर्ढलोपे॥
ओत्सहिवहोर्लुक् शपोऽदिमुखेभ्य एव
वाऽदो भवेद् घस्ल तत्र लिटीति तस्य।२५०।

वच-स्वप और यज्ञ आदिगणकेधातुओं को संप्रसारण हो

ता है, जो कित् संज्ञक प्रत्यय परे हो तौ। यथा ईजतुः। ईजुः। ष तथा ढ से परे सकार हो तौ उसके स्थान में क होता है॥ यक्ष्याति॥ यक्ष्यते। वह प्रापणे। बहना॥ यथा वहाति। वहते। उवाह। ऊहे। धा धातुके अर्थ में अवयवभिन्न जो झष् प्रत्याहार उससे परे प्रत्यय के अवय व त तथा थ हो तौ उनके स्थान में ध होता है। ढ से प रे ढ आवे तौ पूर्वढका लोप होताहै॥ सह-वह-इनके अव र्ण के स्थान में ओकार होता है। यथा उवोढ। इतिभ्वा- दि गण सम्पूर्ण हुआ॥ अथ अदादि गणका प्रारंभ है॥ अद् आदि धातु से परे के शप् का लुक् होता है। अ- द् भक्षणे, खाना। अत्ति॥ अत्तः॥ अदन्ति॥ जब कि लिट् परे हो तब अद धातु को विकल्प से घस्लृ आ- देश होता है। यथा जघास॥ २५०॥

षः स्याच्च सस्य किल शासिसुस्वादिकानां
इड्वै थलो भवति चैतददादिकेभ्यः।
हेर्धिर्हुझल्भ्य इह चाडद एव घस्लृ
स्याल्लुङ्सनोस्तदनुनासिकलोप एषाम्॥२५१॥

शास्-वस् और घस इन धातुओं का स इण् प्रत्याहार से अथवा कवर्ग से परे हो तौ उसके स्थान में ष होता है। यथा जक्षतुः। जक्षुः।। पक्षे। आद। आदतुः। अद-ऋ और व्येञ् इनसे परे थल् को नित्य इट् होता है. यथा आदिथ॥ हु तथा झलन्तधातु से परे के हि के स्थान में धि होता है॥ यथा अद्धि। अत्तात्। व्याकरण शास्त्र के मत से अद् धातु से परे के अपृक्त सार्वधा- तुक प्रत्यय को अट् आगम होता है॥ यथा आदत्॥ आत्ताम्। लुङ् अथवा सन् परे हो तौ अदधातु को घस्लृ

आदेश होता है ॥ यथा अघसत् ॥ अघसताम् ॥ अघस-न् ॥ यमि-रमि-नमि गमि हनि मन्यति ये अनुदात्तोपदेश संज्ञक धातु और वन-तन-और अनुनासिकांत जो धातु उ-न से परे झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय होने से अ-नुनासिक का लोप होता है ॥ तनु आदि=धातु अनुना-सिकान्त कहाते हैं ॥ हन धातु हिंसा और जाने अर्थ में हन्ति । हतः । घ्नन्ति। जघान ॥ २५१ ॥

हन्तेस्तु हस्य किल कुत्वमथोपि जोहा
वाभीयसंज्ञकमसिद्धमथार्द्धधातौ ॥
स्या द्वै हनो वधलिङीति लुङीह चास्य
वृद्धिर्लुकीह हलि वोत उ भ्नेर्लङो जुस् ॥२५२॥

अभ्यास से परे के हन् धातु के हकार के स्थान में कव-र्ग होता है । यथा जघानिथ । जघन्थ । हन् धातु से परे हि हो तौ हन् के स्थान में ज आदेश होता है । इस सूत्र से आरंभ करके षष्ठाध्याय की समाप्ति पर्यंत स-ब सूत्र आभीय संज्ञक होते हैं । तो यहां प्रकृति प्रत्य-य मानकर हि का लोप पाया, परंतु आभीय संज्ञक हो-ने से समान आश्रय है इस लिये ज आदेश असिद्ध माना गया है । यथा जहि । जब के आर्धधातुक संज्ञक लिङ् करना हो तब हन् धातु के स्थान में वध आदेश होता है । त्यौंही लुङ् प्रत्यय करना हो तब भी हन् को वध आदेश होगा, और अकार का लोप होगा। यथा व-ध्यात् । अवधीत् । लुक् विषयक धातु के उकार को वृद्धि होती है जो हलादि सार्वधातुक प्रत्यय परे होतो । प-रन्तु अभ्यस्त संज्ञक धातु को नहीं होगा । यु धातु मे-लन अर्थ में वा अमेलन अर्थ में है । यथा यौति । युयुः

व। या प्रापणे। याति। शाकटायन ऋषि के मत में अदन्त अंग से परे लङ् के झि के स्थान में विकल्प से जुस् आदेश होता है। यथा-अयुः, अयान्। भा-दीप्तौ। ष्णा शौचे। श्रा पाके। द्रा कुत्सायांगतौ। प्सा भक्षणे। रा-दाने। ला आदाने। दाप् लवने। ख्या प्रकथने। वा गति-गंधनयोः। इन धातुओं को या धातु के तुल्य समझना। २५२।

स्युर्वा णलादय इहैव विदो लटः प
वोषादिकेभ्य इति चाम् लिटि लुक् तु लोटः
वेत्तेरिहामगुणा एव तु लोटि चाथ
उःस्यात्तनादिकृञ्भ्योत उदस्यदोरुः।२५३।

विद ज्ञाने। वेत्ति। विद धातु से परे लट् के परस्मैपद के स्थान में णल् आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं। यथा वेद-विदतुः। उष-विद-जागृ इन धातुओं से परे लिट् हो तौ आम् प्रत्यय विकल्प से होता है। विदांचकार विवेद। विद धातु से परे लोट् आवे तो विकल्प से आम् प्रत्यय होता है, तथा लघूपधगुण नहीं होता है। और लोट का लुक् होता है, पीछे आम् से परे कृ धातु का प्रयोग होकर उससे परे लोट आने से विदांकुर्वन्तु यह वहुवचन में रूप है। तन् आदि धातु तथा कृ धातु से परे उ प्रत्यय होता है। कित्-वा-ङित् सार्वधातुक प्रयत्य परे हो तब उ प्रत्ययांत कृ धातु के अकार को उ होता है। विदांकरोतु। वेत्तु। जब कि सिप् परे हो तब धातु के पदांत द को विकल्प से रु होता है। यथा अवेः। अवेत्। अस् भुवि। होना। यथा अस्ति।२५५।

लोपः श्नसोरत इहास्तिजसस्य षत्व

मस्तेश्च भूरिति किलैत्वमिह घ्वसोर्हौ ॥
यण् स्यादिणस्तदियुवावसवर्णकेऽचि
दीर्घस्त्विणः किति लिङि त्वण एकमात्रः २५४।

जो सार्वधातुक कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे होतो श्नम् प्रत्यय का तथा अस् धातु के अकार का लोप होता है । स्तः । सन्ति । उपसर्ग के अंतर्वर्ति इण् प्रत्याहार से तथा प्रादुस् अव्यय से परे के अस् धातु के स् का ष् होता है जो अस् से परे य् अथवा अच् होतो. यथा निष्यात् । प्रादुःषन्ति । आर्धधातुक परे होने से अस् धातु को भू आदेश होता है । यथा-बभूव । भविष्यति । हि परे होने से घु संज्ञक धातु तथा अस् धातु को एकार होता है तथा अभ्यास का लोप होता है. यथा एधि । इण गतौ । अच् आदि प्रत्यय परे होने से इण् धातु को यण् होता है । यथा यन्ति । असवर्ण अच् परे होतो अभ्यास के इवर्ण तथा उवर्ण के स्थान में इयङ् तथा उवङ् आदेश अनुक्रम से होते हैं । यथा इयाय । लिट् का कित् संज्ञक प्रत्यय परे होतो इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है । ईयतुः। लिङ् का कित् आर्धधातुक प्रत्यय परे होतो उपसर्ग से परे के इण् धातु के अण् प्रत्याहार को ह्रस्व होता है. यथा निरियात ॥२५४॥

गा स्यादिणो लुङि चतुर्षु गुणोपि शीङः
शीङो रुडेव लिटि गाङ् त्विङ् लुङ्लृङोर्वा ।
गाङोङितःकुटमुखेभ्य इहास् णितस्स्युः
हल्यात ईत् किति ङितीहघुमादिकानाम् ।२५५।

जबकि लुङ् परे हो तब इण् धातु को गा आदेश हो

ता है ॥ यथा अगात् ॥ इति परस्मैपद संपूर्ण हुआ ॥
अब आत्मनेपद कहते हैं॥ शीङ् शयने, सोना । सार्व धातुक प्रत्यय परे होने से शीङ् को गुण होता है । शेते । शयाते । शीङ् धातु से परे के झ के स्थान में होनेवाले अत् आदेश को रुट् का आगम होता है । यथा शेरते । इङ् अध्ययने । पढना । इङ् तथा इक् धातु का प्रयोग निरंतर अधि उपसर्ग के साथ रहता है । यथा अधीते अधीयाते । अधीयते । लिट् परे होने से इङ् धातु को गाङ् आदेश होता है । यथा अधिजगे । अधिजगाते । लुङ् अथवा लृङ् परे होने से इङ् धातु के स्थान में गाङ् आदेश विकल्प से होता है. गा तथा कुट आदि धातुओं से परे ञित् णित् भिन्न प्रत्यय हो तौ वो प्रत्यय ङित् संज्ञक होता है । घुसंज्ञक मा-स्था-गा-पा-हा-षो इन धातुओं से परे हलादि कित् तथा ङित् आर्धधातुक प्रत्यय हो तौ उस धातु के आकार के स्थान में ईकार होता है. यथा अध्यगीष्ट । अध्यैष्ट । दुह प्रपूरणे । दोहना । लट् परस्मैपद, दोग्धि । दुग्धः । दुहन्ति ॥ आत्मनेपद ॥ दुग्धे दुहाते । दुहते । दुदोह । दुदुहे ॥ २५५ ॥

तङ्लिङ्सिचाविह कितौ क्स इतःशलन्तात्
तत्रानिटस्त्विगुपधाच्च भवेद्यतश्चलेः॥
लुग्वा दुहादिषु तङि क्सपदस्य दन्त्ये
क्सस्याचि लोप इति पंचशलादयो वा ॥
चाहो कुवो झलि थ आह इतीट् कुवोऽपित्
स्याद्वै कुवो वचिरितीह किलास्यातिभ्यः ।२५६।

इक् के समीप के हल् से परे आत्मनेपदी लिङ् प्रत्यय

तथा सिच् हो तौ कित् होता है ॥ यथा धुत्तीष्ट ॥ जिस धातु की उपधा में इक् हो और उसके अन्त में शल् हो उससे परे अनिट् च्लि हो तौ उसके स्थान में क्स आदेश होता है ॥ यथा अधुक्षत् । दुह-दिह-लिह और गुह इन धातुओं से परे क्स का विकल्प से लुक् होता है, जो दन्तस्थानीय आत्मनेपद प्रत्यय परे हो तौ । यथा अदुग्ध। अजादि आत्मनेपद प्रत्यय परे हो तौ क्स का लोप होता है। यथा अदुग्धाः। दिह धातु दुहवत् । लिह आस्वादने । चाटना । यथा लेढि । लीढः । लिहन्ति । ब्रूञ् भाषणे, बोलना ॥ ब्रू से परे के लट् के स्थान में पांच तिप् आदि प्रत्ययों को विकल्प से णलादि पांच प्रत्ययों का आदेश होता है, और ब्रू को आह आदेश होता है: यथा आह । आहतुः । आहुः । झल् प्रत्याहार परे होने से आह के स्थान में थकार होता है ॥ यथा आत्थ । आहथुः । ब्रू धातु से परे हलादि पित् संज्ञक प्रत्यय हो तौ उस पित् को ईट् आगम होता है । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । आर्धधातुक प्रत्यय परे होने से ब्रू धातु के स्थान में वच् आदेश होता है । यथा उवाच । ऊचतुः । अस् वच् ख्या इन धातुओं से परे के च्लि को अङ् आदेश होता है ॥ २५६ ॥

च्लेरङ् ह्युमेव वच इत्यङि लुङ्परे वा
ऊर्णोतिकस्य किल वृद्धिरथो हलादौ।
संयोगकाश्च नदरा द्विरचः परा न
वाङि स्विडादय इहैव गुणोऽप्यपृक्ते ॥ २५७॥

अङ् परे होने से वच धातु को उम् आगम होता है यथा अवोचत् । अवोचताम् । चर्करीतं ऐसा रूप यङ्लु

ऽन्त कृ धातु का है वो अदादि गण में जानना। ऊर्णुञ् आच्छादने । ढांकना। हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से ऊर्णु को विकल्प से वृद्धि होती है। यथा ऊर्णौति। ऊर्णोति। ऊर्णुतः।अच् से परे और संयोग के आदि में न् द और र आवे तौ उनको द्वित्व नहीं होता है। यथा ऊर्णुनाव। ऊर्णुनुवतुः। जिस प्रत्यय के आदि में इट् हो वो ऊर्णु धातु से परे हो तब उस प्रत्यय को विकल्प से ङित्त्व होता है। यथा ऊर्णु नुविथ ॥ ऊर्णुनविथ। अपृक्त पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से ऊर्णु धातु को गुण होता है। इट् जिसके आदि में है ऐसा सिच् प्रत्यय परे होने से परस्मैपद में ऊर्णु धातु को विकल्प से वृद्धि होती है। यथा और्णोः। और्णुतम्। और्णवीत्। और्णावीत् ॥ २८७ ॥

श्लुः स्यात् शपः किल जुहोतिमुखेभ्य एव
श्लौ द्वे च झस्य किल चात्तु परस्य पूर्वात्॥
वाम्भ्र्यादिकेभ्य उ लिटि श्लुपरे तथास्य
जादाविगन्तपदतो जुसि वै गुणोपि ॥ २८८ ॥

हु दानादनयोः। होमकरना, खाना। जुहोत्यादि अर्थात् हु आदि गण के धातुओं से परे के शप् को श्लु होता है। श्लु विषयक धातु को द्वित्व होता है। यथा जुहोति। जुहुतः। झि के अवयव झ के स्थान में अत् होता है। उसका अपवाद होकर अभ्यस्त संज्ञक धातु के झ को अत् होता है। यथा जुह्वति। भी-ह्री-भृ-और हु इन धातुओं से परे लिट् हो तो विकल्प से आम् होता है और श्लुवत् कार्य होता है। यथा जुहवांचकार। जुहाव। अजादि जुस् परे हो तो इक् अन्तवाले अंग को गु

आ होता है । यथा अजुहवुः ॥ २५८ ॥

इत्वं भियः क्ङिति वार्तिपिपर्तिपद्ये
इः स्यादुदोष्ठ्यप्रथमस्य उतर्णयस्य ।
दीर्घो हलीक उ लघुर्लिटि शृपृद्वानां
वाच्छत्यृतां लिटि गुणो लिटि वृति दीर्घः ।२५९।

हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से भी धातु को विकल्प से इकार होता है । ञिभी भये । डरना । यथा बिभीतः, बिभयांचकार । बिभाय । ह्री लज्जायाम् । लाजना । यथा, जिह्रेति । जिह्रीतः । पॄ पालनपूरणयोः । पालना पूर्णकरना । श्लुविषयक ऋ तथा पॄ धातु के अभ्यास के अच् के स्थान में इ होता है । यथा, पिपर्ति । जो अंग के अंत में ऋ हो और उस ऋ के अंग का पूर्व अवयव ओष्ठस्थानीय वर्ण हो तो उस को उत् होता है । हल् परे होने से रेफान्त अथवा वकारान्त धातु के उपधा के इक् को दीर्घ होता है । पिपूर्तः । पिपुरति । पपार । शॄ-दॄ-पॄ-इन धातुओं से परे कित् लिट् प्रत्यय हो तो उसको विकल्प से ह्रस्व होता है । यथा पप्रतुः । लिट् परे होने से तौदादिक ऋच्छ धातु तथा ऋ धातु और ॠदन्त धातु को गुण होता है । यथा पप्रुः । वृङ्-वृञ्-तथा ॠदन्त धातु से परे इट् हो तो उस को विकल्प से दीर्घ होता है, परन्तु लिट् में नहीं होता है । यथा परीष्यति परिष्यति ॥ २५९ ॥

पे नेट एव सिचि दीर्घ इडत्र हाके
राहल्यघोः क्ङिति किलात इतो हि लोपः ।
श्नाऽभ्यस्तयोरिति च हौ तु किलात्वमित् स्या

दीतूयीति लोप इत् चात्र भृञां किलातः।२६०।

वृङ् वृञ् और ऋकारान्त धातु से परे परस्मैपद सिच् हो तौ इट् को दीर्घ नहीं होता है। यथा अपारिष्टाम् ओहाक्त्यागे, त्यागना। जहाति। हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो हा धातु को इ हो ता हैं। हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से अभ्यस्त संज्ञक घु से भिन्न धातु के आकार को तथा श्ना प्रत्यय के आकार के स्थान में ईत् आदेश होता है। यथा, जहीतः। कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे होने से श्ना प्रत्यय का तथा अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार का लोप होता है। यथा, जहति। हि परे होने से हा धातु के आकार को आकार वा इकार, वा ईकार होता है। यथा, जहाहि। जहिहि। जहीहि। य आदि क सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तौ हा धातु के आकार का लोप होता है। यथा, जह्यात्। भृ मा और हा ये धातु श्लु विषयक हों तब उनके अभ्यास के अच् के स्थान में इकार होता है। माङ् माने। मिमीते। मिमाते। ओहा ङ् गतौ॥ जिहिते, जिहाते, जिहते॥ डुभृञ् धारण पोषणयोः॥ बिभर्ति, बिभृते॥ बिभरांचकार, बभार, बिभरां चक्रे॥ बभ्रे। डुदाञ्दाने॥ ददाति॥ २६०॥

दाधाघ्वदाप् किदिति चेत्तु दधस्तथोर्भष्

श्लौ वै गुणो भवति चात्र णिजां त्रयाणाम्॥

नाभ्यस्तकस्य च गुणोपि लघूपधस्य

पेऽङ्वेरितः किल दिवादिगणो दिवुः स्यात्।२६१।

दाप् दैप् इन दो धातुओं को छोडकर शेष दा-दो-दे-तथा धा धे ये धातु घु संज्ञक होते हैं॥ यथा देहि॥ आत्मने

पद में स्था धातु तथा घु संज्ञक धातु के अन्त वर्ण के स्थान में इकार होता है॥ और सिच् की कित् संज्ञा होती है यथा अदित। डु धाञ् धारणपोषणयोः॥ जिसको द्वित्व होता है ऐसे झषन्त धातु के बश् प्रत्याहार को भष् होता है, जो त् या थ् और स् या ध्व परे होतौ यथा, धत्तः। धत्ते। दधाति। णिज्-विज्-विष्-इन तीन श्लुविषयक धातुओं के अभ्यास को गुण होता है। यथा, नेनेक्ति। अजादि पित् सार्वधातुक परे होने से अभ्यस्त संज्ञक धातु की लघु उपधा को गुण नहीं होता है। यथा, नेनिक्ताम्। जिस धातु में इर इत्संज्ञक हो उस धातु के परस्मैपद च्लि के स्थान में विकल्प से अङ् होता है। यथा, अनिजत्। अनैक्षीत्॥ इति जुहोत्यादिगण संपूर्ण ॥

अब दिवादि गण के प्रारंभ में दिवु क्रीडा-विजिगीषा व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु॥२६१।

श्यन्प्रत्ययस्तु भवतीह दिवादिकेभ्यो
वेट् स्यात् कृदादिकमुखेभ्य इतीह सादेः॥
वाऽभ्यासलोप इति चैत्वमिहैव जॄणा
मोतः श्यनीति सिच एभ्य इहापि लुग्वा॥२६२

दिव आदि धातु से परे शप् का अपवाद करके श्यन् प्रत्यय होता है। य शेष रहता है। यथा, दीव्यति। इसी प्रमाण (षिवु तंतुसन्ताने का रूप समझ लेना। नृती गात्रविक्षेपे, नाचना। यथा नृत्यति। ननर्त। कृत्-कतरना, चृत् मारना-गूंथना, उछृदिर् दीपना-क्रीडाकरना उतृदिर मारना-अनादरकरना और नृत् नाचना इन धातुओं से परे सिच् भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्र

त्यय हो तो उसको विकल्प से इट् होता है। यथा, नर्तिष्यति। नर्त्स्यति। त्रसी उद्वेगे। त्रस्यति। त्रसति। तत्रास। जॄ जीर्ण होना, भ्रम् भ्रमण, और त्रस् इन धातुओं से परे कित् लिट् अथवा इट् युक्त थल् आवे तो उस धातु के आकार के स्थान में विकल्प से एकार होता है और अभ्यास का लोप होता है। यथा, त्रेसतुः। श्यन् परे होने से आकार का लोप होता है। यथा, शो तनूकरणे, पतलाकरना। श्यति। शशौ। घ्रा सूंघना, धेट् पीना, छो छेदन करना और षो नाशकरना इन परस्मैपद विषयक धातुओं से परे के सिच् का विकल्प से लुक् होता है। यथा अशात्। अशाताम् ॥२६२॥

सग्वै सिचस्त्विति किलेट् च यमादिकानां
स्यात् संप्रसारणमिह ग्रहिधातुकानाम् ॥
वेट् वै वलादिकमतस्य रधादिकेभ्यो
नुम् स्यात्तयोरपि च मस्जिनशोर्झलीह २६३

यम् निवृत्त होना रम् क्रीड़ा करना णम् नमस्कार करना इन धातुओं को तथा आकारान्त धातुओं को सक् आगम होता है. तथा परस्मैपद में उनसे परे के सिच् को इट् का आगम होता है। यथा, अशासीत्। अशासिष्टाम्। छो छेदने। छ्यति। षोन्तकर्मणि नाशकरना। यथा स्यति। ससौ। दो अवखंडने। यथा द्यति। व्यध् ताडने। ग्रह-ज्या-वय्-व्यध्-वश्-व्यच्-व्रश्चु-प्रच्छ और भ्रस्ज इन धातुओं से परे कित् अथवा ङित् प्रत्यय हो तो उन धातुओं को संप्रसारण होता है। यथा विध्यति। विव्याध। पुष् पुष्टौ। पुष्यति। पुपोष। शुष् शोषणे। शुष्यति। शुशोष। णश् अदर्शने। नश्यति। ननाश.

रध् आदि धातुओं से परे वल् आदि आर्धधातुक प्रत्यय हो तौ उसको इट् आगम विकल्प से होता है॥ नश् धातु भी रध् आदि के अंतर्गत है। यथा नेशिथ । झल् आदि प्रत्यय परे होने से मस्ज और नश् धातु को नुम् आगम होता है। यथा ननंष्ठ॥ २६३॥

दीङस्तथा युडचि कित्ङितिचात्वमेषां
स्याज्ज्ञाजनोः शिति च जा चिण् च्लेश्च वैभ्यः॥
तस्यैव लुक् चिण् इहैव तयोर्न वृद्धि
श्च्लेश्चिण्पदः सृजिदृशोरम् स्याज्झलादौ २६४

दीङ धातु से परे अजादि कित् अथवा ङित् आर्धधातुक प्रत्यय हो तो उस धातु को युट् होता है। मीञ्-डुमिञ्-दीङ्-इन धातुओं से परे ल्यप् प्रत्यय तथा अशित् एकार होने का हेतु हो तो उनको आकार होता है। दीङ् क्षये। दीयते। दाता। डीङ विहायसा गतौ। डीयते। डिड्ये। पीङ् पाने। पीयते। माङ माने। मायते। ममे। जनी प्रादुर्भावे. ज्ञा और जन इन धातुओं से परे शित् हो तौ उन धातुओं को जा आदेश होता है। यथा जायते। जज्ञे। दीप-जन-बुध्-पूर-ताय्-प्याय-इन धातुओं से परे च्लि के स्थान में विकल्प से चिण् प्रत्यय होता है जो एक वचन का त प्रत्यय परे हो तौ। चिण् से परे के प्रत्यय का लुक् होता है। जन-वध् इन धातुओं से परे चिण्-ञित् या णित् या कृत् प्रत्यय हो तौ उनको वृद्धि नहीं होती है। यथा अजनि। अजनिष्ट। दीपी दीप्तौ। दीप्यते। पद गतौ पद्यते। पद धातु से परे एकवचन का त प्रत्यय हो तौ च्लि को चिण् होता है। यथा अपादि। विद सत्तायाम्। विद्यते। बुध अवगमने। बुध्यते। युध् संप्रहारे। युध्यते। सृ

ज् विसर्गे। सृज्यते। सृज्-दृश्-इन धातुओं से परे झला-दि अकित् प्रत्यय हो तौ उनको अम् आगम होता है यथा स्रष्टा। मृष् तितिक्षायाम्। मृष्यति। मृष्यते। णह बंधने। नह्यति। नह्यते। ननाह। नेहे। इति दिवादिगण संपूर्ण॥ २६४

श्नुः स्वादिकेभ्य उ सिचः स्तुसुधूभ्य इट् पे धेर्वा कुरेव शर्पूर्वखयोवशिष्टाः॥ संयोगकादृत इङ्लिट् च विकल्पतः स्यात् नेट् वै किति श्र्युक इहैव तु गित्कितोर्यत् २६५

सु (षुञ्) अभिषवे, निचोड़ना। यह धातु उभयपदी है. सु आदि धातुगण से परे श्नु प्रत्यय होता है। यथा सुनोति। सुनुते। सुषाव। सुषुवे। स्तु स्तुतिवाचक, सु निचोड़ना, धू कंपवाचक इन धातुओं से परे के सिच् को परस्मैपद में इट् आगम होता है। यथा असावीत्। असोष्ट। चिञ् चयने, संग्रहकरना। चिनोति। चिनुते। सन् अथवा लिट् परे होने से अभ्यास से परे के चिञ् धातु के च के स्थान में विकल्प से कवर्ग होता है। यथा चिकाय। चिचाय। चिक्ये। चिच्ये। स्तृञ् आच्छादने। स्तृणोति, स्तृणुते। अभ्यास में खय से परे शर आवे तौ खय शेष रहता है और हलों का लोप होता है तस्तार। तस्तरे। जिस धातु के अन्त में ऋकार हो और आदि में संयोग हो तौ उससे परे लिङ् तथा सिच् को विकल्प से इट् आगम होता है॥ यथा स्तरिषीष्ट। स्तृषीष्ट। धूञ् कंपने। धूनोति॥ धूनुते। दुधाव। दुधुवे। श्रि धातु अथवा उक् प्रत्याहारान्त एकाच् धातु के परे जब कित् अथवा गित् प्रत्यय हो तौ उसको इट् आगम नहीं होता

है। यथा दुधुविन। दुधुविवहे. इतिस्वादिगणसमाप्त। २६५।

शो वै तुदादिकगणो रम्भ्रस्ज एव
वाम्चानुदात्तकपदस्य मुचादिकानाम् ॥
नुम् शे परे लिपि सिचिह्व इहाङ् विकल्पा
दङ् चात्मनेपदविधौ प्रभवेत् त्रयाणाम् २६६

तुद व्यथने। उभयपदी। तुद आदि गण से परे शप् का अपवाद होकर श प्रत्यय होता है। तुदति, तुदते ॥ तुतोद . तुतुदे। णुद प्रेरणे। नुदति, नुदते। भ्रस्ज पाके। भृज्जति। भृज्जते। आर्धधातुक प्रत्यय पर होने से भ्रस्ज धातु के रेफ को तथा स् उपधा स्थाने रम् आगम विकल्प से होता है। बभर्ज ॥ बभृज्ज ॥ कृष विलेखने। कृषति। कृषते। कित् भिन्न झलादि आर्धधातुक प्रत्यय पर होने से उपदेशकाल में अनुदात्त धातु के ऋकार उपधा को अम् आगम विकल्प से होता है ॥ यथा क्रष्टा, कर्ष्टा। क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यति। मुच्-लिप्-विद्-लुप-सिच्-कृत्-खिद और पिश इन धातुओं से परे श हो तौ उनको नुम् आगम होता है॥ मुच्लृ मोचने। मुञ्चति। मुञ्चते। मिल् संगमे। मिलति। मिलते। मिमेल ॥ मिमिले। लुप्लृ छेदने॥ लुम्पति। लुम्पते विद्लृ लाभे। विन्दति, विन्दते, विवेद, विविदे॥ षिच् सिच् क्षरणे॥ सिञ्चति ॥ सिञ्चते ॥ लिप-सिच्-ह्वेञ् इन धातुओं से परे च्लि के स्थान में विकल्प से अङ् आदेश होता है ॥ यथा असिचत। असिक्त। लिप उपदेहे। लिम्पति। लिम्पते। इति उभयपदी ॥ परस्मैपद धातु। कृति छेदने ॥ कृन्तति चकर्त। अकर्तीत्। खिद परिघाते। खिन्दति ॥ चिखेद पिश् अवयवे, पेसना। पिंशति। ओव्रश्चू छेदने॥ वृश्चति॥

यम्रश्च। अम्रश्चीत्। व्यच व्याजीकरणे, ठगना। विचति विव्याच। उछि उन्छे। उन्छति। ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलय मूर्तिभावेषु। ऋच्छति। उज्झ उत्सर्गे। उज्झति। लुभ वि मोहने। लुभति ॥ २६६ ॥

इट् वा त्विषादिषु निरः स्फुरति स्फुलत्योः
षो वा शदः शित इतीह तथा तङानौ ॥
धातोर्ऋतः किल तदित्किरतौ सुडूपात्
सुट्काच्च पूर्व इति वै लवने नितान्तम२६७

इष्-सह-लुभ-रुष्-रिष् इन धातुओं से परे तकारादि आर्धधातुक प्रत्यय हो तो उसको विकल्प से इट् होता है ॥ यथा लोभिता, लोब्धा। तृप् तृप्तौ। तृपति। ततर्प अतर्पीत्। तृम्फ तृप्तौ। तृम्फति। इष् इच्छायाम्। इच्छति। कुट् कौटिल्ये। चुकुटिथ। पुट संश्लेषणे, गलेलगाना. पुटति ॥ स्फुट विकसने ॥ स्फुटति। स्फुर संचलने। स्फुरति। स्फुल संचलने। स्फुलति। निर नि और वि उपसर्ग से परे स्फुर तथा स्फुल धातु हो तो उसके सकार के स्थान में षकार होता है॥ निष्फुरति। निष्फुलति। णू स्तवने। नुवति। नुनाव। टुमस्जो शुद्धौ। मज्जति। ममज्ज। रुजो भंगे। रुजति। भुजो कौटिल्ये। विश प्रवेशने विशति। मृश् आमर्शने। अम्राक्षीत्। षद्ऌ विशरणगत्य वसादनेषु। सीदति। शद्ऌ शातने, छीलना, भिन्नकरना. शद धातु से परे शित् प्रत्यय हो तो उससे परे तङ् तथा आन प्रत्यय होते हैं. यथा, शीयते. ऋकारांत धातु के अंग को इकार होता है. कॄ विक्षेपे. यथा, किरति. छेदन अर्थवाचक कॄ धातु उप उपसर्ग के परे हो तो उसको सुट् आगम होता है. यथा उपस्किरति। सुट् आगम

क से पूर्व होता है । हिंसार्थक कॄ धातु प्रति तथा उप उपसर्ग से परे हो तौ उसको सुट् आगम होता है। यथा, प्रतिस्किरति । गॄ निगरणे ॥ २६७॥

लत्वं च रस्य गिरतेरपि वात्वजादौ
तङ् स्यान्मृङो लुङलिङोश्च शितादू विजो ङित् ॥
श्नम्वै रुधादिकगणाच्च शपोपवादः
स्यात्पिद्धलि श्नमि तृहस्तदिमागमोवै ॥२६८॥

अजादि प्रत्यय परे होने से गॄ धातु के रेफ के स्थान में लकार विकल्प से होता है। यथा गिलनि । गिरति जगाल । जगार । पृच्छ ज्ञीप्सायाम् । पृच्छति । मृङ् प्राणत्यागे । लुङ लिङ् और शित् प्रत्यय परे होने से मृ धातु से परे तङ् तथा आन आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं ॥ म्रियते । ममार । पृङ् व्यायामे । व्याप्रियते । जुषी प्रीति सेवनयोः । जुषते । ओविजी भयचलनयोः । विज धातु से परे इडादि प्रत्यय हो तौ वह ङित्वत् होता है ॥ यथा उद्विजिता । इति तुदादि गण समाप्त ॥

रुधादि गण से श्नम् प्रत्यय होता है, शप् का अपवाद है। रुधिर आवरणे । रुणद्धि, रुन्द्धः ॥ रुन्धन्ति॥ भिदिर विदारणे । छिदिर द्वैधीकरणे । युजिर योगे। ये तीनों रुध धातुवत् हैं ॥ रिचिर विरेचने । रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिरेच । रिरिचे ॥ विचिर पृथग्भावे ॥ विनक्ति ॥ विङ्क्ते क्षुदिर संपेषणे । दलना ॥ क्षुणत्ति, क्षुन्ते । उच्छृदिर दीप्तिदेवनयोः। छृणत्ति, छृन्ते । उतृदिर हिंसानादरयोः। तृणत्ति । तृन्ते ॥ हलादि पित् प्रत्यय परे होने से श्नम् प्रत्ययान्त तृह धातु को इम् आगम होता है ॥ यथा तृणेढि ॥ तृण्ढः ॥ हिंसि हिंसायाम्॥ हिनस्ति । उन्दी क्ले

दने । उनत्ति ॥ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु ॥ यथा अनक्ति ॥ २६८ ॥

अञ्जेः सिचिट् श्नात्परस्य च नस्य लोपः
स्यातां भुजोऽप्यनवने सततं तङानौ ॥
उः स्यात्तनादिकृञभ्यश्च शपोपवादो
लुग्वा सिचस्तनुमुखेभ्य इतस्तथासोः ।२६९।

अंज धातु से परे सिच् हो तौ उसको नित्य इट् होता है ॥ यथा आञ्जीत् ॥ तञ्चू संकोचने। तनक्ति।ओविजी भयचलनयोः ॥ यथा विनक्ति, विङ्क्तः ॥ शिष्लृ विशेषणे ॥ शिनष्टि॥ पिष्लृ संचूर्णने। शिष धातुवत् ॥ भञ्जो आमर्दने ॥ श्नस् से परे के न् का लोप होता है ॥ भनक्ति। भुज पालनाभ्यवहारयोः॥ भुनक्ति भुज धातु से परे आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं पालन भिन्न हो तौ। भुङ्क्ते।अन्यथा महीं भुनक्ति। ञिइन्धी दीप्तौ इन्द्धे । इन्धाते ॥ इन्धते॥ इति रुधादिगण समाप्त हुआ॥ अथ तनादि गण प्रारंभ में तनु विस्तारे ॥ तनु आदि धातु तथा कृ धातु से परे उ प्रत्यय होता है ॥ शप् का अपवाद है । यथा तनोति, तनुते॥ त तथा थास् प्रत्यय परे होने से तनु आदि धातु से परे के सिच् का विकल्प से लुक् होता है ॥ यथा अतनीः। अतानीः। षणु दाने। सनोति । सनुते ॥ २६९ ॥

यादौ भवेत्क्विति ङितीह जनादिकानां
वात्वं भवेत्सनूझलोप्यत उत् कृञश्च ॥
दीर्घो भकुर्छुरुपधाविषयस्य न स्या
दोर्लोप एव मवयोः परयोः करोतेः ॥ २७० ॥

जन्-सन्-खन् इन धातुओं से परे यकार आदि कित् अथवा ङित् प्रत्यय हो तौ उसको आत्व होता है. यथा सायात् ॥ सन्यात्। पूर्वोक्त धातुओं से परे सन् प्रत्यय अथवा झलादि कित् वा ङित् प्रत्यय हो तौ उन धातुओं को आकार होता है॥ यथा असात, असानि, असनि ॥ क्षिणु हिंसायाम् ॥ क्षिणोति। तृणु अदने ॥ तृणोति। डुकृञ् करणे ॥ उप्रत्ययांत कृ धातु अर्थात् करु के अकार के स्थान में उकार होता है जो कित् या ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तौ, कुरुतः कुर्वाते ॥ कुर्वन्ति भ संज्ञक तथा कृ धातु और छुर धातु की उपधा को दीर्घ नहीं होता है ॥ कुर्वन्ति॥ कुर्वंत। मकार वकार परे होने से कृ धातु के प्रत्यय रूप उकार का नित्य लोप होता है ॥ यथा कुर्वः ॥ कुर्वहे ॥ २७० ॥

ये चाथ सुट् कृञ उ संपरिपूर्वकस्य
सुट् वै ह्युपात्कृञ इतो विकृतादिकेषु ॥
श्रा क्रादिकेभ्य इति नस्य तु मीञ्हिनोर्णः
श्नुः श्नाह्युभौ च विहितौ स्तम्भ्वादिकेभ्यः।२७१।

यकारादि प्रत्यय परे होने से कृ धातु से परे के उ का लोप होता है। यथा, कुर्यात्। सम् अथवा परि उपसर्ग पूर्वक भूषणार्थक कृ धातु को सुट् आगम होता है। सम् अथवा परि उपसर्ग सहित समूहवाचक कृधातु को भी सुट् आगम होता है। यथा संस्करोति। संस्कुरुते उप उपसर्ग से परे प्रतियत्न, वैकृत और अध्याहार अर्थ में कृ धातु को सुट् आगम होता है। यथा उपस्कृता कन्या। एधोदकस्योपस्कुरुते। वनु याचने। वनुते। ववने। मनु अवबोधने। मनुते। मेने। इति तनादिगण समास.

अथ क्रादि गण प्ररंभ में डुक्रीञ् द्रव्यविनिम ये । उभयपदी । क्री आदि धातु से परे श्ना प्रत्यय हो ता है, शप् का अपवाद है । यथा क्रीणाति । क्रीणीते. प्रीञ् तर्पणे । प्रीणाति प्रीणीते. । श्रीञ् पाके । श्रीणाति श्रीणीते । मीञ् हिंसायाम् । उपसर्गस्थ निमित्त से परे के हिनु तथा मिना शब्दों के न् के स्थान में ण् होता है । यथा प्रमीणाति । प्रमीणीते । ममौ । मिम्ये । षिञ् बंध ने । यथा सिनाति । सिनीते । स्कुञ् आप्लवने । स्तन्भ-स्कन्भ-स्कुन्भ और स्कुञ् इन धातुओं से परे श्नु प्र-त्यय होता है और पक्ष में श्ना होता है । स्कुनोति । स्कुनाति । स्कुनुते । स्कुनीते ॥ २७१ ॥

स्याद्धे हलः श्न इति शानज्भ्रौ तथैव
च्लेरङ् विकल्पत इतो जॄमुखेभ्य एव ॥
सूत्रे ष एव किल सस्य चतुर्नखानां
ह्रस्वः शितीति किल तत्र च पूमुखनाम् २७२

हि परे होने से हल् से परे के श्ना प्रत्यय के स्थान में शानच् आदेश होता है । जॄ-स्तन्भ्-म्रुच्-म्लुच्-ग्रुच्-ग्लुच्-ग्लुञ्च-और श्वि इन धातुओं से परे के च्लि के स्थान में विकल्प से अङ् आदेश होता है । यथा अस्त भत् । सूत्रोक्त स्तन्भ् धातु उपसर्गस्थ रेफ अथवा ष-कार रूप निमित्त से परे होतौ उसके सकार को षकार होता है । यथा व्यष्टभत् । युञ् बंधने । युनाति । युनीते क्नूञ् शब्दे । क्नूनाति । क्नूनीते । दॄञ् द्रूञ्-हिंसायाम् । य था दृणाति । दृणीते । द्रूणाति । द्रूणीते । पूञ् पवने । पूञ्-लूञ्-स्तॄञ्-कॄञ्-वॄ-धूञ्-शॄ-पॄ-वॄ-भॄ-मॄ-जॄ-झॄ-धॄ-नॄ-वॄ-कॄ-ॠ-गॄ-ज्या-री-ली-व्ली-प्ली इन २४ धातुओं से परे शित् प्र

त्यय होतो ह्रस्व होता है। यथा पुनाति। पुनीते। लूञ्छेदने। लुनाति। स्तृणाति। स्तृणीते। इत्यादि।।२७२।

वेट् लिङ्सिचोर्न लिङि दीर्घ इतीह वृतो
दीर्घो ग्रहेर्नतु लिटीह भवेत् चुरादौ ॥
सत्यापपूर्वकपदेभ्य इहापि णिच् स्यात्
स्यादात्मनेपदमितीह तथा णिजन्तात्॥२७३॥

वृङ्-वृञ्-और ॠदंत धातुओं से परे आत्मनेपद विषयक लिङ् तथा सिच् होतो उनको विकल्प से इट् आगम होता है. यथा स्तरिषीष्ट. लिङ् परे होने से वृङ् वृञ् अथवा ॠदन्त धातु से परे के इक् को दीर्घ नहीं होता है. स्तरिषीष्ट. स्तीर्षीष्ट. कृत् हिंसायाम्। कृणाति. कृणीते. चकार. चक्रे. वृञ् वरणे। वृणाति. वृणीते. धूञ् कंपने. धुनाति। धुनीते। ग्रह उपादाने। गृह्णाति। गृह्णीते। जग्राह। जगृहे। एकाच् ग्रह धातु से परे इट् आगम होतो उसको दीर्घ होता है परंतु लिट् में नहीं होता है। ग्रहीता॥ हि परे होने से हल् से परे के श्ना को शानच् आदेश होता है। गृहाण। गृह्णीष्व। कुष् निष्कर्षे। खेंचना कुष्णाति। अश् भोजने। अश्नाति। मुष् स्तेये। मोषिता। ज्ञा अवबोधने। जज्ञौ। वृङ् संभक्तौ, आत्मने पद। वृणीते। ववृषे। इति क्र्यादि गण समाप्त हुआ। अथ चुरादिगण के प्रारंभ में चुर स्तेये। सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोमन्-त्वच्-वर्मन्-वर्ण-और चूर्ण तथा चुरादि धातुओं से पेर स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होता है। यथा चोरयति। जबकि क्रिया का फल कर्त्ता को पहुँचे तब णिच् प्रत्ययान्त से परे आत्मनेपद प्रत्यय होता है। यथा चोरयते। कथ वाक्यप्रबंधे॥२७३॥

स्यात्स्थानिवत्पर उ पूर्वविधावचस्तु
पूर्वस्य चेच्चङ्परे गण एव णौ स्यात् ॥
कर्ता स्वतंत्र इति चात्र भवेत् णिजन्ते
हेतुश्च कर्तृकप्रयोजक एव कर्ता ।२७४।

कोई परवर्ण के निमित्त को मानकर जो आदेश हुआ है उस अच् के स्थान में हुआ हो उसके पूर्व अच् को कोई विधि करना हो तौ उसको स्थानिवद्भाव होता है ॥ यथा कथयति ॥ कथयाञ्चकार ॥ गण संख्याने । गणयति, गणयते ॥ चङ् है परे जिसके ऐसी णि परे हो तौ गण धातु के अभ्यास को दीर्घ ईकार होता है और चकार से अकार भी होता है ॥ इति चुरादिगण समाप्त.

अथ णिजन्त प्रक्रिया के प्रारंभ में जो क्रिया करने में स्वतंत्रता से विवक्षित हो उसकी कर्तृसंज्ञा होती है ॥ कर्ता को प्रेरणा करनेवाला हो उसकी हेतु तथा कर्तृसंज्ञा होती है ॥ २७४ ॥

णिज्झेतुमत्यपि पुयणाज्यपरे किलौरि
दत्यादिकेभ्य इति पुक् णौचङ्परेऽपि ॥
इत्तिष्ठतेर्लघुमितां तु घटादिकानां
सन्नन्त एतदिषिकर्मण एव धातोः ।२७५।

स्याद्वै समानकर्तृकाद्यदि वा स्पृहायां
सन् सन्यङोर्द्विरिति सस्य त एव सादौ ॥
दीर्घः किलाऽज्झनगमां सनि वै झलादौ
कित् झलूल्त्विको ग्रहगुहोर्न सनीडुगन्तात् ।२७६।

प्रयोजक व्यापार में प्रेरणा अध्येषणा और अनुमति

इन में से कोई भी प्रकार कहने को हो तब धातु से प परे णिच् प्रत्यय होता है। यथा. भावयति। अवर्ण परे का पवर्ग अथवा यण् जकार जो अंग से परे हो ऐसे सन् परवाले अंग के अवयव के अभ्यास के उकार स्थान में इकार होता है। यथा. अबीभवत्। ष्ठा गतिनिवृत्तौ ऋ-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्मायी-इन धातुओं से परे तथा आकारान्त धातु से परे णि हो तौ उन धातुओं को पुक् आगम होता है। यथा. स्थापयति। चङ् है परे जिसके ऐसा णि परे होने से स्था धातु के उपधा स्थान में इकार होता है। यथा. अतिष्ठिपत्। घट चेष्टायाम्। घट आदि तथा ज्ञप आदि धातु जो मित् हैं उन को णिच् मानकर जो दीर्घता हुई है उस के स्थान में ह्रस्व होता है। यथा घटयति। इति णिजन्त प्रक्रिया संपूर्ण। अथ सन्नन्तप्रक्रिया के प्रारंभ में। क्रिया का कर्ता और इच्छा करने वाला दोनों एक हो तव जो क्रिया करने की इच्छा हो उस धातु के दर्शावना हो उस धातु से परे जो वो धातु इच्छा रूपी क्रिया का कर्म हो तौ इच्छा अर्थ में विकल्प से सन् प्रत्यय होता है ॥२७५॥

सन् प्रत्ययान्त तथा यङ् प्रत्ययान्त धातु के एकाच्प्रथम भाग को द्वित्व होता है परंतु प्रथम भाग अजादि हो तौ द्वितीय एकाच् भाग को द्वित्व होता है। यथा. पिपठिषति। अद भक्षणे। इसको घस्लृ आदेश होता है। स आदि का सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से स् के स्थान में त् होता है। यथा. जिघत्सति। कृ धातु करना। अजन्त धातु, हन् धातु तथा अच् रूप धातु, इ, इण् इत्यादि स्थान में होने वाला गम् आदेश इन से परे झलादि सन् हो तो दीर्घ होता है। इक् अंतवाले धातु के

परे के झलादि सन् की कित् संज्ञा होती है। यथा चिकीर्षति। ग्रह-गुह-तथा उक् प्रत्याहारान्त धातु इन से परे सन् प्रत्यय हो तौ इट् नहीं होता है। यथा बुभूषति॥इति सन्नन्त प्रक्रिया समाप्त। अथ यङन्तप्रक्रिया के प्रारंभ में ॥ २७६ ॥

धातोर्हलो यङिति चातिशयप्रकाशे
भूयस्तरे गुण उ यङ्लुकि वै यङीह ॥
कौटिल्य एव च गतौ तु यङेव नित्यं
दीर्घोऽकितो हल इतीह च यस्य लोपः ॥ २७७॥

जब कि क्रिया को वार वार करना अथवा उसकी अत्यन्तता प्रकाश करनी हो तब आदि हल्वान् एकाच् धातु से परे यङ् प्रत्यय होता है॥ यङ् परे होने से अथवा यङ्लुक् होने पर अभ्यास को गुण होता है॥यथा बोभूयते। गत्यर्थक धातु से परे यङ् होता है वह कौटिल्यवाचक अर्थ में होता है। व्रज धातु जाना॥यङ् परे होने से अथवा यङ् का लुक् होने से अभ्यास कित् न होने से दीर्घ होता है। आर्धधातुक प्रत्यय परे होने से हल् से परे के य का लोप होता है। यथा-वाव्रजांचक्रे। वृतु वर्तने ॥ २७७ ॥

पूर्वस्य रीगृदुपधस्य च यङ्लुको वै
क्षुभ्नादिकेषु च न णत्वमिहैव तेषु ॥
लुग्वै यङोऽचि तु परस्य च सार्वधातो
र्वेङ्यङ्लुगन्तकपरस्य पितो हलादेः॥२७८॥

यङ् परे होने से अथवा यङ् का लुक् होने से जिस धातु की उपधा में ऋ हो उसके अभ्यास को रीक् का

आगम होता है। यथा वरीवृत्यते॥ नृत् धातु नाचना यथा नरीनृत्यते। क्षुभ्नोत्यादि गण में न को ण नहीं होता है। नरीनृत्यते। ग्रह धातु ग्रहण अर्थ में। यथा जरीगृह्यते॥ इति यङन्तप्रक्रिया समाप्त हुई॥ अथ यङ् लुगन्तप्रक्रिया के प्रारंभ में, अच् प्रत्यय परे होने से यङ् का लुक् होता है। चकार से अच् परे न हो तौ भी यङ् का लुक् कहीं कहीं होजाता है। जिस धातु से परे यङ् का लुक् हुआ हो उससे परे हलादि सार्वधातुक पित् प्रत्यय हो तौ उसको इट् आगम विकल्प से होता है। यथा बोभवीति, बोभोति। बोभवीतु, बोभोतु। अ बोभवीत्॥ इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया समाप्त हुई॥२७८॥

क्यच् वात्मनः सुप इतीह सुपो लुगेव
चेत्वं क्यचीह किल चास्य हि नामधातौ॥
न क्ये च वा क्यचक्यङोर्हल एव लोपः
काम्यच्च यत्तदुपमानककर्मणः क्यच्॥ २७९॥

आचार उ क्विति तथा क्विभलोर्हि दीर्घः
कष्टान्महे क्विति तूर्यविभक्तितोऽपि॥
शब्दादिकेभ्य इति वै करणे कृञोर्थे
कण्ड्वादिकेभ्य इह यक् खलु वै क्रियायाः २८०

परिवर्तने तदिह कर्तरि तङ् सदैव
हिंसार्थतो न गतितः किल नेर्विशः स्यात्॥
तङ्वै क्रियस्त्विति परस्य परिव्यवेभ्यो
जेरात्मनेपदमितो विपरीत्तरस्य ॥ २८१॥

अथ नामधातु प्रक्रिया के प्रारंभ में, जो सुबन्त की

इच्छा करनेवाले के साथ आत्मसंबंध हो, तथा इष् धा
तु का वह कर्म हो तौ ऐसे सुबन्त से परे विकल्प से क्य
च् प्रत्यय होता है। जो सुप् धातु का अथवा प्रातिपदि
क का अवयव हो उसका लुक् होता है। क्यच् प्रत्यय
परे होने से अवर्ण के स्थान में ई होता है। यथा पुत्री
यति। क्यच् और क्यङ् प्रत्यय परे होने से जो नकारा
न्त उसीकी पद संज्ञा होती है. अन्य की नहीं। यथा रा
जानं आत्मन इच्छति, राजीयति। गीर्यति। पूर्यति। इ
न्ध दीप्तौ। आर्धधातुक प्रत्यय परे होने से हल् से परे के
क्यच् तथा क्यङ् का विकल्प से लोप होता है। यथा
समिधिता। सामिध्यिता। इच्छावाचक अर्थ में काम्यच्
प्रत्यय होता है। यथा पुत्रकाम्यति। उपमान वाचक क
र्म संज्ञक सुबन्त से परे आचरण अर्थ में क्यच् प्रत्यय
होता है। यथा पुत्रीयति छात्रम्। विष्णूयति द्विजम्॥
क्विप् अथवा झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे होने
से अनुनासिकान्त की उपधा को दीर्घ होता है॥ चतु-
र्थ्यन्त कष्ट शब्द से परे उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो
ता है। शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ इतने शब्द ज
ब कर्म हों तब उनसे परे करणार्थ में क्यङ् प्रत्यय होता
है। यथा शब्दायते॥ इति नामधातु प्रक्रिया समाप्त हु
ई॥ अथ कण्ड्वादि गण के धातुओं से परे स्वार्थ में यक्
प्रत्यय नित्य होता है॥ कंडूञ् धातु खुजली अर्थ में। य
था कंडूयति। अथ आत्मनेपद प्रक्रिया के प्रारंभ में, जब
क्रिया का अदल बदल प्रकाश करना हो तब कर्ता अर्थ
में आत्मनेपद होता है। यथा व्यतिलुनीते। गति तथा
हिंसार्थक धातुओं से परे आत्मनेपद प्रत्यय नहीं होते
हैं। यथा व्यतिघ्नन्ति। व्यतिगच्छन्ति। नि पूर्वक विश

धातु से परे आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं। यथा निविशते। परि, वि अथवा अव उपसर्ग से परे क्री धातु हो तो उससे आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं। यथा परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते। वि अथवा परा उपसर्ग से परे जि धातु हो तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं। यथा विजयते, पराजयते ॥ २७९॥ २८० ॥२८१ ॥

स्थस्त्वात्मनेपदमथो समवप्रविभ्यो
ज्ञोऽपन्हवे तु तङऽकर्मकतो नितान्तम् ॥
उत्पूर्वकात्किल सकर्मतश्चरोपि
तद्वच्चरो भवति तत्र समस्तृतीया-
युक्ताच्चतुर्थिविषये च समस्तु दाणो
यत्पूर्ववत्सन इकः सन् किद्धलन्तात् ॥
तङस्याच्च गन्धनमुखेभ्य इतः कृञोपि
चाथो परस्मैपदस्य च प्रक्रियायाम् ।२८२।२८३।

सम्, अव, प्र, वि इन उपसर्गों युक्त ष्ठा धातु से आत्मनेपद होता है। यथा-संतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते। असत्य अर्थ में अप उपसर्ग युक्त ज्ञा धातु को जा आदेश और आत्मनेपद होते हैं। यथा-शतं अपजानीते। अकर्मक धातु से भी आत्मनेपद होता है। यथा-सर्पिषो जानीते। उत् उपसर्ग युक्त चर् धातु से आत्मनेपद होता है। यथा-धर्ममुच्चरते। सम् उपसर्ग जिसके पूर्व हो ऐसे तृतीयांत पद के योग युक्त चर धातु से आत्मनेपद होता है। यथा-रथेन संचरते। सम् उपसर्ग जिसके पूर्व हो ऐसा दाण् धातु चतुर्थी अर्थवाचक तृतीयांत पद से युक्त हो तो उससे परे आत्मनेपद होता है। यथा

दास्या संयच्छते कामी ॥ आत्मनेपद वाचक धातु से परे सन् प्रत्यय हो तौ उससे परे आत्मनेपद होता है। यथा एदिधिषते। इक् के समीप के हल् से परे झलादि सन् प्रत्यय होतौ उसकी कित्संज्ञा होती है। यथा-निर्विवित्सते। गंधन, अवक्षेपण, सेवा, बलात्कार, गुणवर्णन और उपयोग इन अर्थों में कृ धातु से परे आत्मनेपद होता है। यथा-उत्कुरुते। उपकुरुते हरिम्, इत्यादि। इति आत्मनेपद प्रक्रिया समाप्त हुई ॥ अथ परस्मैपद प्रक्रिया के प्रारंभ में ॥२८२॥१८३॥

पं कर्तृगे च फल एव तु गन्धनादौ
स्याद्वै कृञस्त्वनुपरोपपदाच्च नित्यम् ॥
पं स्यात्क्षिपोऽभ्यतिप्रतिभ्य इतः पमेव
स्यात्प्राद्वहः किल परेर्मृष एवमत्र ॥ २८४ ॥

जब क्रिया का फल कर्ता को पहुँचता हो, तथा गंधन आदि अर्थों में से कोई भी अर्थ होतौ अनु तथा परा उपसर्ग से परे के कृ धातु से परस्मैपद प्रत्यय होते हैं। यथा-अनुकरोति। पराकरोति। अभि, प्रति तथा अति उपसर्ग से परे के क्षिप् धातु से परस्मैपद होता है। क्षिप् धातु फैंकने अर्थ में स्वरितेत् है इसलिये उभयपदी है। यथा-अभिक्षिपति। प्र उपसर्ग से परे वह धातु होतौ उससे परे परस्मैपद प्रत्यय होते हैं। यथा प्रवहति। परि उपसर्ग से परे मृष् धातु हो तो उससे परे परस्मैपद होता है। यथा-परिमृषति ॥२८४॥

पं व्याङ्परिभ्य इह चाथ रमोप्युपाच्च
भावे च कर्मणि तथैव तु लस्य तङ् स्यात् ॥

यक् सार्वधातुक इतीह भवेच्चिणीवट्
वा स्यादिकेषु च हनादिकतोऽप्यजन्तात् २८५

वि, आङ् तथा परि इन उपसर्गों से परे रम् धातु होतौ उससे परस्मैपद होता है। यथा - विरमति। उप उपसर्ग से परे रम धातु हो तौ उससे परस्मैपद होता है। यथा उपरमति। इति परस्मैपद प्रक्रिया समाप्त हुई॥ अथ भावकर्म प्रक्रिया के प्रारंभ में, भाव अथवा कर्म अर्थ में लकार करना होतौ धातु से परे आत्मनेपद होता है। भाव अथवा कर्म वाचक सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से यक् प्रत्यय होता है। स्य, सिच्, सीयुट् अथवा तासि प्रत्यय परे होतो उपदेश में जो अजंत धातु, तथा हन् ग्रह दृश् इन धातुओं को भाव और कर्म अर्थ गम्यमान होतो अंगकार्य चिण् की नांईं विकल्प से होता है; और स्य आदि प्रत्ययों को इट् का आगम होता है। यह इट् जहां चिणवद्भाव होता है वहीं होता है। जहां चिणवद्भाव नहीं होता वहां यह इट् नहीं होता॥ २८५॥

च्लेर्वै चिणेव तपरे खलु चात्वमत्र।
यक्प्रत्यये सति च वात्र तनोतिधातोः॥
स्यात्कर्मकर्त्तरि न चिण् तु तपोऽनुतापे
आतोपियुक् चिणकृतोश्चिणि भञ्ज एवम्॥
वा नस्य लोप उ लभेर्नुम् चिणणमुलोर्वा
स्यात्कर्मकर्तृविषये किल कर्मणा वै॥
तुल्यक्रियो भवति कर्मवदेव कर्ता
भूतेप्यनद्यतन उ स्मृतिबोधने लृट्॥ २८६-७॥

भाव अथवा कर्मवाचक त प्रत्यय परे होने से च्लि के स्थान में चिण् होता है। यथा अभाविष्यत, अभविष्यत। अभावि ॥ अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेणत्वया मया च। ष्टु धातु स्तुति अर्थ में। स्तूयते विष्णुः। ऋ धातु गमन अर्थ में। अर्यते। स्मृ स्मरण करना। स्मर्यते। आरिता। स्मारिता। स्रंस धातु पतन अर्थ में। स्रस्यते। नदि आनंदपाना। नन्द्यते। यज् पूजा करना इज्यते। तन् फैलाना। तन्यते। तन् धातु से परे यक् प्रत्यय होता उसके न के स्थान में विकल्प से आकार होता है। यथा तायते। तप संताप और पश्चात्ताप करना। संताप वाचक तप धातु का कर्म स्वयं कर्ता हो ऐसे स्थान में अथवा तप का अर्थ पश्चात्ताप वाचक हो ऐसे प्रसंग में तप धातु से परे च्लि होतो उसके स्थान में चिण् नहीं होता है ॥ दा देना। धा धारण करना। यथा दीयत्ते। धीयते। चिण् अथवा ञित् कृत् अथवा णित् कृत् प्रत्यय परे होने से आकारांत धातु को युक् आगम होता है। यथा दायिता। भंज भांगना। भज्यते। चिण् परे होने से भंज धातु के न का लोप विकल्प से होता है। यथा अभाजि। अभञ्जि। लभ पाना। लभ्यते। चिण अथवा णमुल् प्रत्यय परे होने से लभ् धातु को विकल्प से नुम् होता है। यथा अलंभि। अलाभि ॥ इति भावकर्मप्रक्रिया समाप्त हुई ॥ अथ कर्मकर्तृ प्रक्रिया के प्रारंभ में, कर्मस्थित क्रियावान् धातु के व्यापारवाली क्रिया के फल सदृश जिसका फल हो ऐसा कर्ता कर्मवत् होता है, तहां कर्म के कार्य कर्ता को होते हैं। जैसाकि यक्, आत्मनेपद प्रत्यय, च्लि के स्थान में चिण्. तथा चिणवद्भाव और इट्। यथा पच्यते फलम्। भिद्यते काष्टम्

म् । इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥ अथ लकारार्थ प्रक्रिया के प्रारंभ में, स्मरणवाचक कोई शब्द धातु का उपपद हो तौ अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से परे लृट् होता है, वस् वसना इसके प्रयोग में यथा स्मरसि कृष्ण? गोकुले वत्स्यामः ॥ २८६ ॥ २८७ ॥

यद्योग एव न लृडत्र च लिट् स्मयोगे
भूते भविष्यति भवन्निकटे तदुक्ताः ॥
लिङ् हेतुहेतुमत एव विकल्पभावात्
धातोः परे किल तृतीयजप्रत्ययाः स्यु ॥ २८८ ॥

यद् शब्द के साथ स्मरण वाचक शब्द का योग होने से धातु से परे लृट् नहीं होता है ॥ अभिजानासि यद् वने अभुंज्महि । जब स्म शब्द का योग धातु के साथ हो तब उससे परे लट् होता है । यथा यजतिस्म युधिष्ठिरः । वर्तमान अर्थ में जो प्रत्यय स्थापन करने में आते हैं वे प्रत्यय वर्तमान के लगभग के भूत और भविष्यत् अर्थ में भी विकल्प से स्थापन कियेजांयगे । यथा कदा आगतोसि । अयं आगच्छामी । कदा गमिष्यसि । एष गच्छामि । जब कार्यकारणभाव प्रकाश करने को हो तब धातु से परे लिङ् विकल्प से होता है यथा कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात् । यथा हन्तीति पलायन्ते इत्यादि अष्टाध्यायी में धातोः इस सूत्र से प्रारंभ करके तीसरे अध्याय के अंत तक जितने प्रत्यय कहे हैं वे सब धातु से परे होते हैं, और उन प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है ॥ २८८ ॥

स्यात्प्रत्ययस्तदसरूप इहाऽस्त्रिया वा
कृत्याश्च कर्तरि कृदेव तु तव्यदत्रा ॥

नीयर्च तव्य इति प्रत्ययकाश्च धातोः
कृत्यल्युटो बहुलमित्यपि यत्त्वचः स्यात्।२८९।

'धातोः' सूत्र के अधिकार में किसी प्रत्यय का दूसरा कोई असदृश प्रत्यय अपवाद हो तौ वह स्त्री के अधिकारवाले को वर्ज कर बाध्य का विकल्प से बाध करता है। इस सूत्र के प्रारंभ से 'ण्वुल्तृचौ' इस सूत्र के पूर्व जितने प्रत्ययों का प्रसंग आचुका है वे सब कृत्य प्रत्यय कहलाते ह। कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्ता अर्थ में होता है। कृत्य प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में होता है। तव्यत् तव्य और अनीयर् ये प्रत्यय भाव तथा कर्म अर्थ में होते हैं। यथा त्वया एधितव्यम्. त्वया एधनीयम्. चेतव्यः, अथवा चयनीयः धर्मस्त्वया॥ कृत्य संज्ञक तथा ल्युट् प्रत्यय का व्यवहार बहु प्रकार से होता है. यथा स्नानीयम्। दा देना। दानीयो विप्रः। अजन्त धातु से परे यत् प्रत्यय होता है। यथा चेयम्॥ २८९॥

ईत्स्यात्परे यति च यत किल पोरदुपधा
द्देत्यादिकेभ्य इति वै क्यप् प्रत्ययः स्यात्॥
ह्रस्वस्य चेत्पितिकृतीह तुगागमोपि
शासस्तथेदङ्हलोश्च मृजेस्तु वा क्यप्॥२९०॥

यत् प्रत्यय परे होने से धातु के आकार के स्थान में ईकार होता है। यथा देयम्. ग्लेयम्. जो धातु पवर्गान्त हो और उसकी उपधा में अकार हो उससे परे यत् प्रत्यय होता है। यथा शप्यम्॥ लभ्यम्। इण, ष्टु, शास्, वृ, दृ और जुष् इन धातुओं से परे क्यप् प्रत्यय होता है. पकार जिसके इत्संज्ञक हो ऐसा कृत् प्रत्यय परे होने से

ह्रस्वांत धातु को तुक् आगम होता है। यथा इत्यः। स्तु स्यः। शास् अनुशिष्टौ। अङ् प्रत्यय अथवा हलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे होने से शास् धातु के उपधा को इकार होता है। यथा शिष्यः। वृञ् स्वीकार करना. वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः। मृज् धातु से परे क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है। यथा मृज्यः॥ २६०॥

शान्ताद्धलन्तत उत ण्यदितीह धातोः
कुत्वं चजोर्ण्यति घितीति मृजेश्च वृद्धिः॥
भक्ष्यार्थ एव किल भोज्यमिहापि कृत्ये
यत्कर्तरि ण्वुल्तृचौ कृत्प्रक्रियायाम्॥ २६१॥

ऋकारांत तथा हलंत धातु से परे ण्यत् प्रत्यय होता है। यथा कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। धातु के अंत के च् तथा ज् से परे घित् अथवा ण्यत् प्रत्यय हो तो च्-ज् के स्थान में कवर्ग होता है। सार्वधातुक अथवा आर्धधातुक प्रत्यय परे होने से मृज् धातु के इक् को वृद्धि होती है। यथा मार्ग्यः भक्षण करने के योग्य अर्थ में भुज् धातु का रूप भोज्यः होता है, अन्य अर्थ में भोग्यः होता है। इति कृत्यप्रक्रिया समाप्त हुई। अथ कृत् प्रक्रिया के प्रारंभ में, धातु से परे कर्ता अर्थ में ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय होते हैं॥ २६१॥

आदेशकौ भवत एव युवोरनाकौ
ल्युर्वै ल्युणिन्यच इहैव तु नन्दिकेभ्यः॥
ज्ञाप्रीकिरस्त्विगुपधात्क इहोपसर्गे
आतश्च हेश्च किल कर्तरि गेह एव॥ २६२॥

प्रत्यय के यु तथा वु के स्थान में अन तथा अक अनु

क्रम से होते हैं । यथा कारकः । कर्ता । नंदि आदि धा तुओं से परे कर्ता अर्थ में ल्यु प्रत्यय होता है । और ग्र ह आदि धातुओं से परे णिनि प्रत्यय, तथा पच् आदि धातुओं से परे अच् प्रत्यय होता है । यथा नन्दनः । ज नार्दनः । लवणः । ग्राही । पचः । जिस धातु की उपधा इक् हो उससे परे, तथा ज्ञा प्री कृ इनसे परे क प्रत्यय होता है । बुधः । कृशः । ज्ञः । प्रियः । किरः । उपसर्ग उ पपदवान् आकारान्त धातु के परे कर्ता अर्थ में क प्रत्य य होता है । यथा प्रज्ञः । सुग्लः । गेह अर्थ में ग्रह धातु से परे कर्ता अर्थ में क प्रत्यय होता है । यथा गृहम् ॥२६२॥

अण् कर्मणीह च किलात इतीह कः स्या
न्मूलादिकेभ्य इति कस्तु भवेच्चरेष्टः ॥
भिक्षादिकेष्विति ट एव हि हेतुकेषु
चार्थेषु वै कृञ इतीह च टो भवेद्वै ॥२९३॥

जब कोई भी धातु का उपपद कर्म हो तब उस धा- तु से परे कर्ता अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । यथा-कुम्भ कारः । जिस आकारान्त धातु के उपसर्ग भिन्न कर्म उ पपद होतौ उससे परे क प्रत्यय होता है । यथा-गां द दाति, गोदः । धनदः । कम्बलदः। मूलविभुज आदि ग ण पठित शब्दों से परे क प्रत्यय होता है। यथा-महीध्रः कुध्रः। जब अधिकरण अर्थात् सप्तम्यन्त उपपद हो त- ब चर धातु के परे ट प्रत्यय होता है । यथा-कुरुचरः॥ भिक्षा, सेना और आदाय ये शब्द चर धातु के उपप द होतौ उससे परे ट प्रत्यय होता है । भिक्षाचरः । ज ब हेतु अथवा ताच्छील्य अथवा अनुकूलता प्रकाश कर ता हो तब कृ धातु से परे ट प्रत्यय होता है ॥२९३॥

आदव्ययेतरभृतश्च कृआदिकेषु
नित्यं परस्य च विसर्गवरस्य सः स्यात् ॥
एजेश्च खश् मुमरुषादिकतः खिदन्ते
खच् प्रियवशे वद इतीह खशात्ममाने ॥ २९४ ॥

कृ-कमि-कंस-कुंभ-पात्र-कुशाकर्णी इनमें से कोई शब्द परे होतौ समास में अकार से परे का विसर्ग यदि किसी अव्यय का अवयव न होतौ उस विसर्ग के स्थान में सकार होता है। यथा-यशस्करी विद्या। एज़ धातु गयंत होतौ उससे परे खश् प्रत्यय होता है। अरुष्-द्विषत् तथा अजन्त शब्द को, जो अव्यय न होतौ खित् प्रत्ययांत धातु परे होने से मुम् आगम होता है। यथा-जनएजयति, जनमेजयः। वद् धातु के उपपद प्रिय अथवा वश होतौ उसको खच् प्रत्यय होता है। यथा-प्रियंवदः। वशंवदः। मन् धातु के उपपद सुबन्त हो तथा स्वकर्मक अर्थात् आत्मसंबंधी बोध का बोधक होतौ कर्ता अर्थ में उससे परे खश् प्रत्यय होता है। चकार से णिनि प्रत्यय भी होता है। यथा-पंडितंमन्यः। पंडितमानी ॥२९४॥

धातोर्मनिन् कनिप्विच्वनिपो भवन्ति
चात्रापि नेड्वशिकृतीत्यनुनासिकः स्यात् ॥
स्याद्विड्वनोः क्विबपि णिन्यपि सुप्यजातौ
धातोर्मनो णिनि लघुः खिति नाव्ययस्य ॥ २९५ ॥

मनिन्-कनिप्-वनिप् तथा विच् ये प्रत्यय आकारांत धातु वर्जित धातुओं के परे होते हैं। जो कृत् प्रत्यय के आदि में वश् प्रत्याहार में का वर्ण हो उसको इट् आगम नहीं होता है। सुशर्मा। प्रातरित्वा। विट् अथवा

वन् प्रत्यय परे होने से अनुनासिक के स्थान में आकार होता है। यथा-विजावा। ओण् धातु दूरकरना। अवावा। रुष् हिंसायाम्। रोट्। रिष् हिंसायाम्। रेट्। गण संख्यावाचक। सुगण्। कर्ता अर्थ में धातु से परे क्विप् होता है। यथा-उखास्रत्. पर्णध्वत्. वाहभ्रट्। जातिवाचक अर्थ वर्जित सुबन्त उपपद होने से स्वभाव प्रकाश करने अर्थ में धातु से परे णिनि प्रत्यय होता है। यथा उष्णभोजी। सुबन्त उपपद होने से मन् धातु से परे णिनि प्रत्यय होता है। यथा-दर्शनीयमानी। खित् प्रत्यय परे होने से धातु के अवयव विना उपपद को ह्रस्व होता है। यथा-कालिमन्या ॥२९५॥

करणे यजो णिनि दृशेः क्वनिबेव तत्र
तद्वच्च राजनि युधि कृञ उ सहे च ॥
डः स्याज्जनेरपि मुनौ७ कृति डेरलुग्वा
डोपसर्ग एव किल नाम्नि च निष्ठयात्तौ॥२९६॥
तौ क्तक्तवत्विति च भौतिकवृत्तिनिष्ठा
निष्ठात एव न इतीह च दो रदाभ्यम् ॥
आतोऽथ यणवत उ तस्य न एव धातो
र्ल्वादिभ्य इत्यपि हलश्च किलौदितश्च॥२९७॥

जो उपपद करणवाचक अर्थात् तृतीयांत होतौ भूत अर्थ में यज् धातु से परे कर्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है। सोमेन इष्टवान्, सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी। कर्म उपपद होतौ दृश् धातु से परे भूत अर्थ में क्वनिप् प्रत्यय होता है। पारं दृष्टवान्, पारदृश्वा। राजन् शब्द उपपद होतौ युध् तथा कृ धातु से परे क्वनिप् प्रत्यय होता है। यथा

राजयुध्वा । राजकृत्वा । सह उपपद होने से युध् तथा कृ धातु से परे क्वनिप् प्रत्यय होता है। सहयुध्वा । सहकृत्वा । जिसके सप्तम्यन्त उपपद हो ऐसे जन धातु से परे ड प्रत्यय होता है । यथा सरोजम् । तत्पुरुष समास के अंत में कृत् प्रत्यय हुआ होतो सप्तमी के एकवचन ङि का लुक् नहीं होता है । यथा सरसिजम् । उपसर्ग उपपद होने से जन् धातु से परे ड प्रत्यय होता है । ड प्रत्यय होकर सिद्ध हुआ शब्द कोई भी संज्ञावाचक होतो क्त तथा क्तवतु इन दोनों प्रत्ययों की निष्टा संज्ञा होती है । भूत अर्थ में धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय होते हैं । यथा स्नातं मया । स्तुत स्त्वया विष्णु : । विश्वं कृतवान् विष्णु : । र तथा द से परे निष्ठा के त को तथा निष्ठा के पूर्व के धातु के द को न होता है । शृ हिंसायाम् । शीर्ण : । भिद् धातु, भिन्न : । छिद्, छिन्न : । जो आकारांत धातु के आदि में संयोग हो, तथा धातु में यण् प्रत्याहार का कोईभी वर्ण होतो उससे परे के निष्ठा प्रत्यय के त के स्थान में न होता है ॥ द्रै शयने । द्राण : । ग्लान : । लू आदि २१ धातुओं के परे पूर्व कहा हुआ विधि होता है । यथा लून : । जिस अंग का अवयव हो ऐसे हल् से परे के संप्रसारण के अंत को दीर्घ होता है । यथा जीनः । जिस धातु के ओकर इत् हो उससे परे के निष्ठा के त को न होता है॥ यथा, भुजो कुटिलता करना । भुग्नः। टुओश्वि मारना, जाना । उच्छून : ॥ २९६ २९७ ॥

ज्ञेयः शुषः क इति तत्र पचो व एव
क्षायो म एव खलु सेटि च गो लुगेव ॥

स्थूले दृढो बलवतीह भवेच्च तादौ
हिर्वै दधातिविषये किति दोश्च ददूघोः॥ २९८॥

शुष धातु सूखने अर्थ में। धातु से परे निष्ठा के त को क होता है। यथा शुष्कः। पच् धातु से परे के निष्ठा के त को व होता है। यथा पक्वः। क्षै धातु से परे के निष्ठा के त को म होता है। यथा क्षामः। जब इट् सहित निष्ठा संज्ञक प्रत्यय परे हो तब णि का लोप होता है। यथा भावितः। भावितवान्। दृह धातु का रूप स्थूल बलवान् अर्थ में. दृढः ऐसा निष्ठा प्रत्य सिद्ध किया है॥धा धातु से परे तकारादि कित् प्रत्ययांत होतौ धा के स्थान में हि आदेश होता है। यथा हितम्। त जिसके आदि में हो ऐसे कित् प्रत्यय परे होने से घु संज्ञक दा धातु के स्थान में दद् आदेश होता है। यथा दत्तः ॥ २९८ ॥

कानच् लिटः क्वसुरु वा च न एव मो म्वोः
स्यातां लटश्च शतृशानच्प्रत्ययौ वा ॥
आने च मुक् शतुरपीह वसुर्विदेर्वा
तौ सल्लटः सादिति वा क्विमुखाः स्वशीले।२९९।

लिट् के स्थान में कानच् और क्वसु प्रत्यय विकल्प से होते हैं। यथा-चक्राणः। म अथवा व परे होने से मकारांत धातु को न होता है। जगन्वान्। प्रथमांत के साथ सामानाधिकरण्य न होतौ लट् के स्थान में शतृ तथा शानच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं। यथा-पचन्तम्। आन (शानच्-कानच्) प्रत्यय परे होने से अदंत अंग को मुक् आगम होता है। यथा-पचमानं चैत्रं पश्य। विद

धातु के परे शतृ के स्थान में वसु आदेश विकल्प से होता है। विद ज्ञाने। विद्वान्। शतृ तथा शानच् की सत् संज्ञा होती है। लृट् के स्थान में सत् संज्ञक प्रत्यय विकल्प से होते हैं। करिष्यन्तं अथवा करिष्यमाणं पश्य। यहां से लेकर क्विप् तक जितने प्रत्यय कहेजायंगे वे कर्ता का किसीप्रकार का स्वभाव प्रकाश करना हो, अथवा उसका धर्म प्रकाश करना हो, अथवा किसी काम की सुंदरता प्रकाश करनी हो उस अर्थ में होते हैं॥ २९९॥

तृन् जल्पकेभ्य इति षाकन् पः किलेस्या
दाशंसभिक्ष उ इतीह सनन्तके क्विप्॥
भ्राजादिकेभ्य इति रात् छ्वोः शूठ् च लुग्वा
दाबादिकेभ्य इति तत्करणो ष्ट्रनेव ॥३००॥

तच्छील आदि अर्थ में धातु से परे तृन प्रत्यय होता है। यथा-कर्ता कटम्। जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ठ और वृङ् इन धातुओं से परे तच्छील आदि अर्थ में षाकन् प्रत्यय होता है। प्रत्यय के आदि षकार की इत्संज्ञा होती है। यथा-जल्पाकः। मराकः। सन्नन्त धातु से परे तथा आङ् पूर्वक शंस धातु से परे तथा भिक्ष धातु से परे तच्छील आदि अर्थ में उ प्रत्यय होता है। यथा-चिकीर्षुः। भ्राज-भास-धुर्व-द्युत-ऊर्ज-पॄ-जु और ग्रावन् शब्द पूर्वक ष्टु धातु से परे तच्छील आदि अर्थों में क्विप् प्रत्यय होता है। यथा-विभ्राट्॥ क्वि प्रत्यय, अथवा झलादि कित्, अथवा ङित् प्रत्यय परे होने से रेफ से परे के छ अथवा व का लोप होता है। यथा-धूः। विद्युत्। ऊर्क्। पूः। जूः। ग्रावस्तुत्। दाप्-णी-शस्-यु-युज् ष्टु तुद

षिञ्-षिच्-मिह-पत-दश और णह इन धातुओं से प-
रे करण अर्थात् तृतीया अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है।
यथा-व्यत्यनेन दात्रम् ॥ ३०० ॥

त्याद्येषु कृत्सु किल नेडिति वार्तिकेषु
चेत्रः पुवोरपि गता कृतप्रक्रियात्र ॥
चोणादिकेभ्य उ भवेदुणा क्रादिकेभ्य-
श्चोणादयोपि बहुलं लटि नाम्नि चैव ॥३०१॥

तुमुन्ण्वुलौ तत्क्रियार्थमिति क्रियायां
कालादिषूत तुमुनेव घञत्र भावे ॥
नाम्नि ह्यकर्तरि च कारक एव घञ् स्या
द्भावे घञेव करणोपि न लुक्च रञ्जेः ।३०२।

क्तिन्-क्तिच्-तुन्-ष्ट्रन्-तन्-क्थन्-क्सि सूच-सरन्-कन्
तथा स इन प्रत्ययों को इट् नहीं होता है। यथा-शस्त्रम्
योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । मेढ्रम् ।
पत्त्रम् । ऋ-लू-धु-षु-खन्-षह और चर इन धातुओं से प
रे करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है । यथा अरित्रम् ॥
लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् इत्यादि । पू धातु से परे
संज्ञा अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है । पवित्रम् ॥ अथ उणा
दि प्रकरण के प्रारंभ में कृ-वा-पा-जि-डुमिञ्-स्वद्-सा
ध-अश इन धातुओं से परे उण प्रत्यय होता है । यथा
कारुः। वायुः। पायुः। जायुः। मायुः। स्वादुः साधुः। आशुः
वर्तमान काल में तथा संज्ञा अर्थ में उण आदि प्रत्य
यों का व्यवहार नाना प्रकार से होता है ॥ जब एक
क्रिया दूसरी क्रिया का उपपद हो तब भविष्यत् अर्थ
में धातु से परे तुमुन् तथा ण्वुल प्रत्यय होते हैं । यथा

कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्णं दर्शको याति । काल अथवा वेला इनमें से कोई भी उपपद हो तौ धातु से परे तुमुन् प्रत्यय होता है । यथा कालो भोक्तुम् । जब धातु का अर्थ सिद्ध अवस्था पायाहुआ दर्शाता हो तब उस धातु से परे घञ् प्रत्यय होता है । यथा पाकः । कर्ता से भिन्न कारक में धातु से परे संज्ञा अर्थ में घञ प्रत्यय होता है । भाव अथवा करण अर्थ में घञ प्रत्यय होता है । और जब वह रञ्ज धातु से परे हो तब उस धातु के नकार का लोप होता है । यथा रागः । ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥

घञ् को निवासप्रमुखेषु चिनोतिधातो
रेरजृदोरबिति च ड्वित उ क्रिरत्र ॥
क्त्रेर्मुम् ड्वितोऽथुजनङेव यजादिकेभ्यः
स्यान्नन्स्वपस्किरिति घोरुपसर्गतो वै।३०३।

निवास-चिति-शरीर-उपसमाधान इन चार अर्थवाचक चि धातु से परे घञ प्रत्यय होता है और चि धातु के आदि के च के स्थान में क होता है । यथा निकायः । कायः । इवर्णांत धातु से परे अच प्रत्यय होता है यथा चयः । जयः । ऋकारांत तथा उकारांत धातु से परे अप् प्रत्यय होता है । करः । गरः । यवः । स्तवः । लवः । पवः । जिस धातु का ड्ड इत् हो उससे परे क्रि प्रत्यय होता है । और क्त्रि प्रत्ययांत से परे सिद्ध अर्थ में मुम् प्रत्यय नित्य होता है । यथा पक्त्रिमम् । जिस धातु का टु इत् हो उससे परे अथुच् प्रत्यय होता है ॥ यथा वेपथुः । यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्ष इन धातुओं से परे नङ् प्रत्यय होता है । यज्ञः। याच्ञा । यत्नः । विश्नः। प्रश्नः । रक्ष्णः । ञिष्वप् धातु से परे नन् प्रत्यय होता है

यथा स्वप्नः ॥ उपसर्ग पूर्वक घु संज्ञक धातु से परे कि प्रत्यय होता है। यथा प्रधिः। उपाधिः ॥ ३०३ ॥

क्तिन्वै स्त्रियां भवति चोतिमुखा निपाता-
वस्य ज्वरप्रभृतिकस्य किलोपधायाः ॥
ऊठ् स्यान्निपातत उ प्रत्ययतस्त्व इच्छा
ह्यः स्याद्गुरोर्हल इतीह युजेवनित्यम्॥३०४॥
गयादिभ्य उ क्त इति भावविधौ च षंढे
ल्युट् चैव पुंसि घ इतीह तु नाम्नि तत्र ॥
छादेश्च वै लघु हि घेऽद्व्युपसर्गभाज
स्तृस्त्रोरवे घञ् हलश्च तथा खलेव॥३०५॥
ईषन्मुखोपपदकेषु सुदुःखजेषु
क्त्वा खल्वलं त्वुपपदे किल वै युजातः ॥
क्त्वा तुल्यकर्तृकजयोरपि पूर्वकाले
क्त्वा सेरान् कित्सन् रलो व्युपधाद्धलादेः३०६

जब स्त्रीलिंगभाव प्रकाश करना हो तब धातु से परे क्तिन् प्रत्यय होता है। ऊति-यूति-जूति-साति- हेति और कीर्ति ये निपात हैं। ज्वर-त्वर-स्रिव-अव-मव इन की उपधा को तथा व को ऊठ् आदेश होता है, परंतु अनुनासिक आदिवाले प्रत्यय अथवा क्विप्-क्विन् प्रत्यय वा झल् जिसके आदि में हो ऐसे कित् ङित् प्रत्यय परे हो तौ। ऊतिः। जूः। तूः। स्रूः। ऊः। मूः। इष् धातु से इच्छा शब्द निपात से सिद्ध हुआ है। प्रत्ययांत धातु से परे स्त्रीलिंग में अकार प्रत्यय होता है। यथा चिकीर्षा। पुत्रकाम्या। गुरुमत् हलन्त धातु से परे सिद्ध पद

स्त्रीलिंग हो तौ अ प्रत्यय होता है। यथा ईहा ॥ ३०४ ॥

जिन धातुओं के अंत में णि हो उनसे परे तथा आस-श्रन्थ इन से परे युच् प्रत्यय स्त्रीलिंग में होता है। यथा कारणा। हारणा। भाव प्रकाश करना हो और होनेवाला शब्द नपुंसक हो तौ धातु से परे क्त प्रत्यय होता है। जब होनेवाला शब्द नपुंसक हो तब भाव अर्थ में धातु से परे ल्युट् प्रत्यय होता है॥ यथा हसितम्॥ हसनम्। जब होनेवाला शब्द संज्ञावाचक हो तथा पुल्लिंग हो तब बहुधा धातु से परे घ प्रत्यय होता है। आदि दो उपसर्ग रहित छद धातु से परे घ प्रत्यय होने से उसको ह्रस्व होता है। यथा छदः। दन्तच्छदः। आकरः। अव उपसर्ग उपपद होने से तॄ तथा स्तॄ धातु से परे घञ् प्रत्यय होता है। अवतारः। अवस्तारः। हलन्त धातु से परे घञ् प्रत्यय होता है। यथा रामः। अपामार्गः। दुःख अर्थ में दुर् और सुख अर्थ में ईषद् अथवा सु इनमें से कोई भी उपपद होने से धातु से परे खल् प्रत्यय होता है। यथा दुष्पानः। ईषत्पानः। सुपानः॥ निषेध अर्थवाचक अलं तथा खलु उपपद हो तौ प्राचीन लोकों के मत में क्त्वा प्रत्यय होता है। यथा अलं दत्वा। खलु पीत्वा। बहुत धातुओं का एक कर्ता हो और वह धातु पूर्वकाल में हो तौ उससे परे क्त्वा प्रत्यय होता है। स्नात्वा व्रजति। भुक्त्वा पीत्वा व्रजति। इट् सहित क्त्वा कित् संज्ञक नहीं है। जिस धातु की उपधा इवर्ण अथवा उवर्ण हो तथा आदि में हल् हो और अंत में र-ल हो उससे परे इट् सहित क्त्वा तथा सन् विकल्प से कित् होते हैं। यथा द्युतित्वा। द्योतित्वा॥ लिखित्वा। लेखित्वा॥ ३०५॥ ३०६॥

वेट् तूदितः क्त्वि तु जहातिविधौ हिरेव
क्त्वो ल्यप्समासविषयेऽनञि चाऽव्यये वै ॥
आभीक्ष्ण्यके णमुलितीह भवेत्तथा क्त्वा
चाभीक्ष्ण्यके किल पदस्य च वीप्सितार्थे ।३०७।
द्वित्वं कृञो णमुलिहैव तथाप्ययासिद्धे
तत्रान्यथा सुखपदोपपदेषु तस्य ॥
पद्यात्मके मुनिमतेन मया प्रदिष्ट
श्चेत्थं कृदंत इति पूर्णतरो बभूव ॥ ३०८ ॥

जिस धातु में उ इत्संज्ञक हो उससे परे के क्त्वा को विकल्प से इट् आगम होता है। ओहाक् धातु को हि आदेश होता है॥ यथा हित्वा । समास होने से पूर्वपद नञ् से भिन्न अव्यय हो तो उससे परे के क्त्वा के स्था न में ल्यप् आदेश होता है॥ यथा प्रकृत्य । अकृत्वा ॥ परमकृत्वा । जब कोई क्रिया वारंवार प्रकाश करनी हो तब उससे परे अव्यवहित पूर्वसूत्र के विषय में क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं। जब कोई क्रिया वारंवार प्रकाश करनी हो अथवा वीप्सा बहु इच्छा प्रकाश क रनी हो तब पद को द्वित्व होता है॥ तिङंत तथा अव्य य संज्ञक कृदंत के विषय में वारंवारपन प्रकाश करना हो तौ द्वित्व होता है॥ अन्यथा-एवम्-कथम् और इत्थम् इतने शब्द जब उपपद हों तब कृञ् धातु से परे णमुल् प्रत्यय होता है, यदि वह कृञ् धातु सिद्ध अप्रयोग है जिसका ऐसा हो तौ। यथा अन्यथाकारं भुंक्ते॥ एवंकारं भुंक्ते। कथंकारं भुंक्ते। इत्थंकारं भुंक्ते। पक्षे शिरोऽन्य थाकृत्वा भुंक्ते॥ये सब प्रत्यय पतंजलि मुनि के मतानुकूल

मैंने इस पद्यव्याकरण में श्लोक रचकर लिखे हैं ॥ इति कृदंत प्रक्रिया समाप्त हुई ॥ २०७॥ २०८ ॥

ख्याताः स्त्रियां स्वसृननान्दृदुहितृयातृ
मात्रादयः किल भवन्ति सदैव पञ्च ॥
अन्यन्तका इति तथा मिनिप्रत्ययान्ता
वन्ह्यग्निवृष्णिमपहाय भवन्ति तद्वत् ॥३०९॥

अथ लिंगानुशासन के प्रारंभ में ऋकारांत शब्दों में स्वसृ ननांदृ दुहितृ यातृ मातृ ये पांच ही स्त्रीलिंगवाचक होते हैं । अनि प्रत्ययांत तथा ऊ प्रत्ययांत शब्द स्त्रीलिंग में होते ह । यथा अवनिः । चमूः ॥ अशनिः । भरणिः । अरणिः । ये तीन पुल्लिंगवाचक भी होते हैं । इयं अयं वा अशनिः । मि प्रत्ययांत और नि प्रत्ययांत शब्द स्त्रीलिंग में होते हैं । यथा भूमिः। ग्लानिः । परंतु वन्हिः। वृष्णिः। अग्निः। ये पुल्लिंगवाचक होते हैं ॥३०९ ॥

श्रोण्यूर्मियोनय इतीह च पुंसि तिस्रः
क्तिन्नन्त एव महिलाविषये नितान्तम् ॥
ऊङ्प्रत्ययान्तविषयोऽपि भवेत्स्त्रियां वै
चावन्तमेव च तथैव सदैव विद्यात् ॥३१०॥
गोपादिकान्खलु विहाय तथाऽऽमयान्वै
चाविंशतिर्नवतिरत्र च पूर्वरीत्या ॥
अन्तेषु दुन्दुभिरियं खलु नाभिरङ्ग
स्युर्वै स्त्रियामिति तलन्तमयाश्च शब्दाः ।३११।

श्रोणिः। योनिः । ऊर्मिः । ये पुल्लिंगवाचक भी हैं । इयं अयं वा श्रोणिः। क्तिन् प्रत्याहारांत शब्द स्त्रीलिंग वाचक

होता है। ईकारांत और ईप्रत्ययांत स्त्रीलिंग में होते हैं यथा लक्ष्मीः । ऊङ् प्रत्ययांत और आप् प्रत्ययांत शब्द स्त्रीलिंगवाचक होते हैं। आकारांत शब्दों में गोपा विश्वपा मधुपा ये पांत शब्द पुल्लिंग होते हैं। विंशतिः त्रिंशत् । चत्वारिंशत् । पञ्चाशत् । षष्टिः। सप्ततिः। अशीतिः। नवतिः। पर्यंत स्त्रीलिंगवाचक होते हैं. पासों के अर्थ में दुन्दुभिः और नाभिः शब्द अंगवाचक स्त्रीलिंग में हैं। इनसे अन्य अर्थ में पुल्लिंग होते हैं। तल् प्रत्ययांत शब्द स्त्रीलिंगवाचक होते हैं। यथा शुक्लस्य भावः शुक्लता। ब्राह्मणस्य कर्म, ब्राह्मणता। ग्रामाणां समूहो, ग्रामता। देव एव, देवता ॥३१०॥३११॥

विद्युत्सरिच्च वनितापि लता च भूमि
र्नार्यौ च भाः स्रुक्स्रजौ दिगुपानहुष्णिक् ॥
विप्रुट् च रुट् तु तृड्विट्त्विट्प्रावृडाद्याः
शान्यश्रिवेशिखनयः कृषिरित्यपि स्यात् ॥३१२॥

कट्योषधी च किल चांगुलिरत्र तद्व
द्वात्रिस्तिथी रुचिकिकी छविधूलिर्वीच्या--
द्याः केलिनालिप्रमुखाः कुटिनाडिशब्दौ
पंक्तित्रुटिभ्रुकुटयोपिच वर्तिराजी ॥३१३॥

ज्ञेयोऽशानिर्वलिरथापिच शष्कुलिः स्या
दापद्विपच्च किल संपदुषश्च संवित् ॥
संसच्छरत्परिषदत्र समिच्च पुन्मुत्
क्षुद्वै स्त्रियां च प्रतिपद्भवतीह नित्यम् ॥३१४॥

विद्युत् सरित् वनिता लता भूमि भाः स्रुक् स्रज् दिश

उष्णिक् उपानह् विप्रुष् रुष् तृष् त्विष् प्रावृष् दर्वि त्रिदि वेदि खनि शानि अश्रि वेशि कृषि ओषधि कटि अंगुलि, ये सब शब्द स्त्रीलिंगवाचक होते हैं ॥ यादः शब्द सरित् वाचक होने पर भी नपुंसक होता है। स्थूणा और ऊर्णा ये दोनों नपुंसक होते हैं। रात्रि नाडि तिथि धूलि किकि वीचि केलि छवि रुचि नालि, ये स्त्रीलिंग होते हैं। पंक्ति त्रुटि भ्रुकुटि वर्त्ति कुटि राजि अशनि बालि शष्कुलि आपत् विपत् संपत् उषः संवित् संसत् शरत् परिषत् समित् पुत् मुत् समिध् क्षुत् प्रतिपत्, ये सब शब्द स्त्रीलिंगवाचक हैं। अप् सुमनस् समा सिकता वर्षा, ये पांच शब्द स्त्रीलिंगवाचक हैं, और बहुवचनांत हैं ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

आशीः स्त्रियां भवति पूश्च तथैव द्वार्धूः
ज्योक्त्वक्तु वाक्स्फिगिति नौश्च भवेद्यवागूः॥
सीमाविधौ तृटिरथो महिलाभिधः स्या
च्छब्दास्त्वमी मुनिमते स्त्र्यधिकारभाजः॥३१५॥

आशीः गीः द्वाः धूः पूः ज्योक् त्वच् वाक् स्फिक् नौ यवागू वाचक तृटि चुल्लि वेणी खारी तारा धारा सीमा ज्योत्स्ना शलाका, ये शब्द नित्य स्त्रीलिंगवाचक हैं। इति स्त्रीलिंगाधिकार संपूर्ण हुआ ॥ ३२५ ॥

शब्दाः पुमांस इति चेत् घञबन्तवन्तो
घाजन्तवन्त इह शास्त्रमतेन तद्वत् ॥
तद्वन्मता बुधवरैर्नङ्प्रत्ययान्ताः
क्यन्तो घुरत्र विदिता खनकेशदन्ताः॥३१६॥
देवाऽसुरात्मगिरिकगठभुजस्तनाश्च

स्वर्गस्तु खड्गशरपंकसमुद्रशब्दाः ॥
ये गुल्फमेघपुरुषक्रतवः कपोलो
वन्तास्तु पुंसि विहिता मुनिना नितान्तम् ।३१७।

घञ् और अप् प्रत्ययांत शब्द, तथा घ और अच् प्रत्ययांत शब्द पुल्लिग में होते हैं । नङ् प्रत्ययांत और कि प्रत्ययांत घुसंज्ञक पुल्लिग में होते हैं। घञन्त-पाकः, त्यागः। घाजन्त-विस्तरः, गोचरः,चयः, जयः। नङन्त-यज्ञः यत्नः। घुसंज्ञक आधिः, निधिः । नख केश दंत दैत्य असुर आत्मन् गिरि कण्ठ भुज स्तन स्वर्ग खड्ग शर पंक समुद्र गुल्फ मेघ पुरुष क्रतु कपोल, ये सब पुल्लिगवाचक होते हैं। उकारांत शब्द पुल्लिगवाचक मुनियों ने कहा है३१६।३१७

रुत्वन्तशब्दनिचयाश्च भवंति तद्व
त्यक्त्वा कसेरुजतुवस्तुमुखान्सदैव ॥
आंतश्च कोपध इतीह टणोपधस्तु
तद्वत्थनोपध इहैव तु पोपधोपि ॥ ३१८ ॥
तद्वच्च मोपध उताथ हि योपधः स्या
द्वो रोपधोपि किल षोपधसोपधौ च ॥
घस्त्रो मयूख इति मानमुखाश्च तद्व
न्नाड्यादिपूर्वविषयाः प्रभवन्ति पुंसि ।३१९।

रु और तु अंतवाले शब्द पुल्लिगवाचक होते हैं । यथा मेरुः, सेतुः। परंतु दारु कसेरु जतु वस्तु मस्तु इनको छोड़कर; क्योंकि ये नपुंसक हैं. क है उपधा में जिसके ऐसा अकारांत शब्द भी पूर्ववत् होता है। यथा स्तबकः, कल्कः । टकार उपधा में हो अथा णकार उपधा में हो ऐसे

अकारांत शब्द भी पूर्ववत् होते हैं। यथा घटः, पटः गुणः,गणः,पाषाणः। तैसेही थ और न जिसकी उपधा में हो वह प्राग्वत् होता है। यथा रथः,इनः, फेनः। प कार उपधा में होतौ पूर्ववत्। यूपः,दीपः,सर्पः। भोपधोपि। कुंभः,स्तंभः। मोपधः। सोमः,भीमः। रोपधः। क्षुरः,अंकुरः। षोपधः। वृषः,वृक्षः। सोपधः। वत्सः, वायसः, महानसः। दिवस के पर्याय नाम पुल्लिंग में होते हैं। दिवसः,घस्रः। मान के पर्याय नाम पुल्लिंग में होते हैं। यथा कुडवः, प्रस्थः। नाडि से आदि लेकर व्रणादिकों के उपपद होतौ पुल्लिंग में होते हैं ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥

ज्ञेयो मरुत् किल गरुत्व तरत्किलर्त्विक्
ग्रन्थिक्रिमिध्वनिबलिहतिराशिमौलि-
कौल्यादयो रविरथर्षिकवीन्द्रमुख्याः
तद्वन्मुनिः कपिरितीह च पुंसि नित्यम् ॥३२०॥

कुन्तान्तहस्तनदनूतमुहूर्तसूता
व्रातश्च वात इह दूतसुधूतसंज्ञौ ॥
पाषण्डखण्डमयमण्डकरण्डशब्दा
ज्ञेयाः शिखण्डयुतगण्डसुमुण्डशब्दौ॥३२१॥

वंशांशपूगपथिबुद्बुदकन्दकुन्दा
निर्व्यूहपल्वलकटाहकफार्घगन्धाः ॥
ख्याता ऋभुक्षिमथिपल्लवरेफपुंखाः
स्तम्बो मृदङ्गमणिसंगसमुद्रमानाः ॥३२२॥

कन्धस्तुरङ्गमठरंगतरंगलेखाः

पाणयञ्जली च तिथिकुक्षिनितम्बसंघाः ॥
सारथ्यातिथ्यसिमुखाश्च तथैव वस्तिः
सर्वे पुमांस इह शास्त्रकृता प्रयुक्ताः ॥३२३॥

मरुत् गरुत् तरत् ऋत्विक् ग्रंथि क्रिमि ध्वनि वलि दृति राशि मौलि कौलि रवि ऋषि कवि मुनि कपि ये शब्द पुलिंग में होते हैं। कुंत अन्त हस्त नूत मुहूर्त मून व्रात वात दूत धूत पाषंड खंड मंड करंड शिखंड गंड मुंड वंश अंश पूग पथिन् बुद्बुद कंद कुंद निर्यूह पल्वल कटाह कफ अर्घ गंध ऋभुक्षिन् मथिन् पल्लव रेफ पुंख स्तंब मृदंग मणि संग समुद्र मान स्कन्ध तुरंग मठ रंग तरंग लेख पाणि अंजलि तिथि कुक्षि नितंब संघ सारथि अतिथि वस्ति, ये सब शब्द पुल्लिंग में शास्त्रकार ने लिखे हैं॥ इति पुल्लिंगाधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥

लिङ्गे नपुंसकविधाविति शास्त्ररीत्या
भावे ल्युडन्तविषया विहिताश्च विद्धिः ॥
निष्ठामयाश्च किल भावविधौ तु शब्दाः
क्लीबे द्विजादिगुणवाक्यजकर्मणीह ॥३२४॥

भाव में ल्युडंत शब्द नपुंसक होते हैं। यथा हसनम्। भाव में निष्ठा प्रत्ययांत नपुंसक होते हैं॥ यथा हसितम्॥ कर्म में ब्राह्मणादिक गुणवचन संज्ञक नपुंसक होते हैं। यथा ब्राह्मणस्य कर्म, ब्राह्मण्यम् ॥ ३२४॥

स्युर्यंध्यढग्यगञणा वुञछौ तु भाव-
कर्मण्यलं किल नपुंसक एव सर्वे ॥
राजामनुष्यपदपूर्वसभापदेपि
पुण्याहकापथपदेपि तथा त्रिरात्रम् ॥३२५॥

यत् य ढक् यक् अञ् वुञ् छ, ये प्रत्यय जिनके अंत में हों ऐसे शब्द भावकर्म में नपुंसक होते हैं ॥ यथा स्तेयम् ॥ सख्यम् । राजा मनुष्य पूर्वक सभा शब्द नपुंसक होता है । अपथ पुण्याह ये नपुंसक होते हैं । संख्या पूर्वक रात्रि शब्द नपुंसक होता है । त्रिरात्रम् ॥ ३२५ ॥

नेत्रं मुखं हलवने रुधिरान्नलोह-
कोदण्डधान्यविवराणि धनं च मांसम् ।
पर्यायनामान्यपि भवन्ति जलादयोपि
तूलोपलौ तरलकम्बलदेवलादीन् ॥ ३२६ ॥
त्यक्त्वा च लोपधमिहैव नपुंसकत्वे
क्वचूको मनन्तविषयश्च तथैव शास्त्रे ॥
त्रान्ता भवन्ति किल लिंगविधावपीह
यात्रादिकांश्च खलु पुत्रमुखान् विहाय ॥३२७॥

नेत्र मुख हल वन रुधिर अन्न लोह कोदंड धान्य विवर धन मांस जल, ये शब्द और इनके पर्याय शब्द नपुंसकलिंग होते हैं । तूल उपल तरल कंबल देवल ताल कुमूल वृषल, ये शब्द पुल्लिंग वाचक हैं. इनको छोड कर लोपध शब्द नपुंसक वाचक होते हैं ॥ मन् प्रत्ययांत और क्वचुक शब्द नपुंसक होते हैं, परंतु कर्ता में नहीं । त्र जिनके अंत में हो वे शब्द नपुंसकलिंग में होते हैं, परंतु यात्रा मात्रा भस्त्रा दंष्ट्रा वरत्रा और पुत्र भृत्र अमित्र छात्र मंत्र वृत्र मेढ़ उष्ट्र इनको छोडकर ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥

स्युः शुल्बपत्तनबलानि रणं च पराडे
संग्रामपुष्पमिति नामविधायकानि ॥

शब्दो नपुंसकमयः फलजातिवाची
तद्वद्वियत्किल जगत्सकृदत्र विद्यात् ॥३२८॥
तद्वत्पृषद्यकृदुदश्विदितीह शब्दाः
कुण्डाङ्गवित्तमृतचित्तनिमित्तपित्त—
वृत्तानि दैवदधिसक्थ्यनृतानि षण्ढे
चाङ्गाङ्गकण्वनवनीतनभोमुखानि ॥३२९॥
धान्याज्यशस्यकुलिशानि च रूप्यपण्य-
वर्ण्यानि धूष्यबडिशाक्षिकुटुम्बभानि ॥
बिम्बं च पिच्छकवचे किल बर्हदुःख—
हव्यानि कव्यमिति काव्यमिदं च सत्यम् ।३३०।

शुल्व पत्तन बल रण संग्राम पुष्प, ये शब्द और इनके पर्यायवाचक शब्द नपुंसक होते हैं। फलजाति वाचक शब्द नपुंसक होते हैं॥ वियत् जगत् सकृत् पृषत् यकृत् उदश्वित् ये नपुंसकलिंग हैं। कुंड अंग वित्त मृत चित्त निमित्त पित्त वृत्त दैव दधि सक्थि अनृत अंगांग कण्व नवनीत नभस् धान्य आज्य सस्य कुलिश रूप्य पण्य वर्ण्य धूष्य बडिश अक्षि कुटुम्ब भ विंब पिच्छ कवच वर्ह दुःख हव्य कव्य काव्य इदम् सत्य, ये सब शब्द नपुंसकलिंग में होते हैं॥ इति नपुंसकाधिकार समाप्त हुआ॥ ३२८॥ ३२९॥ ३३०॥

स्त्रीपुंसयोरिति च शाल्मलिमृत्युसीध्वो
यष्टिश्च मुष्टिरिति पाटलिबास्तिशब्दौ ॥
स्युर्गोमणित्रुटिमसिप्रमुखा द्वयोर्वै

कर्कन्धुकण्डुप्रमुखाश्च तथैव किष्कुः ॥ ३३१ ॥

मरीचि शाल्मलि मृत्यु सीधु यष्टि मुष्टि पाटलि व स्ति गो मणि त्रुटि मसि किष्कु कण्डु कर्कन्धु, ये शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंगवाचक होते हैं ॥ यथा इयं अयं वा गौः । इत्यादि जानलेना ॥ ३३१ ॥

पुत्रार्थतद्धितपदेषु तथैव विद्या
त्स्त्रीपुंसयोरथ नृपगढकयोर्विधानम् ॥
ऐरावतश्च घृतभूतसुमुस्तबुस्ता
ये पुस्तकार्घदृढलोहितशृंगसंज्ञाः ॥ ३३२ ॥

पुच्छव्रजौ च कुथकूर्चनिदाघशल्य
कुञ्जार्भप्रस्थशबसैन्धवपार्श्वशब्दाः ॥
अष्टापदाम्बुदगृहाः ककुदश्च मेह
देहौतु पट्टपटहावुभयोर्भवान्ति ॥ ३३३ ॥

अपत्यार्थ तद्धित में भी दोनों होते हैं । यथा औपग वः। औपगवी । इति स्त्रीपुंसाधिकार समाप्त हुआ । अथ पुंनपुंसकलिंगवाचक शब्द विषय को सुनिये । ऐरावत घृत भूत मुस्त बुस्त पुस्तक अर्घ दृढ लोहित शृंग पुच्छ व्रज कुथ कूर्च निदाघ शल्य कुंज अर्भ प्रस्थ शब सैंधव पार्श्व अष्टापद अंबुद गृह ककुद मेह देह पट्ट पटह, ये शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंगवाचक होते हैं ॥ इति पुं नपुंसकाधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३२, ३३३ ॥

ग्रन्थेऽत्र शब्दविषये किल सूत्रवृत्ति
वाक्यानुरोधाविषयाच्छ्रुतभंगयोगम् ॥
दृष्ट्वा कचिद्विनिमयः स्वरवर्णयोर्वै

साहित्यशास्त्रविहितोत्र मयाप्यकारि ॥ ३३४ ॥

कुत्रापि दीर्घविषयं लघुना विरच्य
निर्वाहमत्र कृतवान् गुरुणा लघोर्वै ॥
कुत्रापि सस्वरविधौ खलु निस्वरत्वं
कृत्वा सुवृत्तविषयं कृतवान् विशल्यम् ।३३५।

याचेऽहमत्र विदुषः शिरसा प्रणम्य
ग्रन्थे मदीयरचितेप्युदितं विलोक्य ॥
संत्यज्य पक्षमिति तैः सुदलं प्रदेयं
मुद्रापणे पुनरपीह समाहरिष्ये ॥ ३३६ ॥

पद्यात्मकं च मरुनीवृति योद्धपौरे
श्रीरामदत्ततनुजेन विदां जनेन ॥
विद्याविभावसुवृहत्कविना बुधेन
यल्लालचन्द्रकविना रचितं मयेदम् ॥३३७॥

अस्मिन् रसे६षु५निधि९चन्द्र१मितेऽब्दवर्ये
चैत्रस्य शुक्लदशमीदिवसे गुरौ च ॥
पद्यात्मकं मनुजभाषितभाष्यजुष्टं
शास्त्रं मुनीन्द्ररचितं सुगमं व्यकारि ॥३३८॥

इतिश्री पद्यव्याकरणंमनुजभाषोदितभाष्यसहितं तच्च श्रीमत्षट्शास्त्रवित्पण्डितरामदत्तात्मज वृहत्कवि विद्याभस्कार पंडित गुरु लालचंद्र वैयाकरणकेसरिविरचितं संपूर्णम् ॥

इस पद्यव्याकरण ग्रन्थ में सूत्र, वृत्ति और वार्तिक

के अनुरोध से किसी २ जगह पर वाक्यांतर रखने से परिवर्तन देखकर मैंने किसी २ स्थल में, जब कि वैसा ही पद रक्खाजावेगा तौ छंदोभंग होजावेगा ऐसा विचार करके कहीं दीर्घ को लघु मान कर वा लघु को दीर्घ मान कर और किसी २ स्थान में स्वर सहित वर्ण को निस्वर करदिया है, और किसी २ स्थल में निस्वर की जगह केवल अकार उच्चारणार्थ रखकर वसंततिलका छंद के श्लोकों को विशल्य किया है। मैं मस्तक से प्रणाम करके विद्वान् महात्माओं की याचना करता हूं कि जो ऊपर लिखेहुए वृत्त मेरे रचित पद्यव्याकरण में देखकर प्रथमतः यह विचारना योग्य है कि इस पाणिनीय व्याकरण का श्लोकबद्ध होना ही दुःसाध्य है और जिस पर शब्दों को पर्याय में रखना तौ सुवच ही है परन्तु पद विकृत करना अयोग्य है, इसलिये रागद्वेष को दूर करके कोई असमीचीन लेख होतौ पत्र द्वारा कृपा कर फरमावेंगे, ताकि दूसरी वार छपाने में वह पत्रलेखों का विषय यथास्थान सुधार दियाजायगा॥ यह पद्यात्मकव्याकरण मारवाड़ देश में योधपुर नगर निवासी श्रीमान् सकल सद्गुण भूषित, प्रभुभक्त पंडित श्री रामदत्तजी शास्त्री के पुत्र बृहत्कवि विद्याभास्कर पण्डित गुरु लालचन्द्र वैयाकरणकेसरी सर्व भारतवर्ष के विद्वानों के दास ने बनाई है॥ सम्वत् १९५६ चैत्र सुदि ९ गुरुवार के दिन पद्यात्मकव्याकरण मानुषी भाषा युक्त बना कर जोधपुर नगर में मैंने सम्पूर्ण की है।२३४-२३८।

इति श्री पद्यव्याकरण भाषा भाष्य सहित जोधपुर निवासि श्रीमद्विद्वच्छिरोमणि सकलसद्गुणजुष्ट पंडितवर श्रीरामदत्तजी शास्त्री के पुत्र बृहत्कवि विद्याभास्कर पंडित लालचंद्र वैयाकरणकेसरी का बनाया संपूर्ण हुआ॥

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२२	प्यथेत्प	प्यथेत्य
,,	२५	केपा	केपां
४	१६	मथस्तु	मथं तु
५	१३	यत्तह्य	यत्तह्य
७	२	रक्षा०	रक्षादयः किल पतञ्जलिनात्र पञ्च
,,	२४	सूत्रचयानि	सूत्रवराणि
१०	१४	मथं लघुत्वं	मथानुदात्तं
,,	१७	मुनिभिः पूणीतं	किल संवृतं स्यात्
१३	४	वर्णावसानमिति	ख्यातोवसानमितिवर्ण
,,	५	या	सा
,,	६	संज्ञं	मत्र
,,	१२-१३	चानन्तरा०	संयोगको हल इहायमनन्तराश्च ह्रस्वं लघु प्रभवतीह परे गुरु स्यात्
,,	१४	संज्ञं	शाब्दे
१४	१८	आक्रोश०	नाक्रोश आदिनि परेपि च पुत्रकस्य
,,	१९	वा	वै
१५	६	परस्हात्परतो०	किल परश्च रहात्परस्य
१५	७	स्वाद्ध हल०	लोपो मोय यमि हलस्तु भवे द्विकल्पात्
१५	१७	चाऽय् किलाऽव्	चाऽऽय् किलाऽऽव्
१५	१८	दयाव्	दवाव्
१६	७	परतोऽचि गुणो०	त इहाचि गुणो नितान्तम्
,,	१६	पर	किल
,,	१८	स्त्वे जाद्यवर्ण०	स्त्वे जादियेधि च तथोढि भवे दवर्णात्
१८	१९	लोकार्पयोर्भवति गो०	लोकार्पयोः प्रकृतिभावं इहाति गोवा
१९	१८	पदविधावभि	भवति प्रत्यभि
,,	२०	दूरवाक्यात्	दूरतोपि
२०	५	ऋदभिन्नसंज्ञ०	वदभिन्नकस्य च गुरोस्तदनन्त्यकस्य
,,	१५	शब्द उपसंस्थित एव	संज्ञक इतीह रवश्च तस्मिन्
,,	१६	प्लुत ईक्षणीयः	तं भये त्प्लुतोपि
२१	२३	त्वोदूदजन्तसहिते	त्वोदूदजन्तपदकं

पृष्ठ	पंक्ति		
२२	१	पद्ये	पद्य
,,	१०	शात्परतवर्गपदस्य	शात्किल तवर्गमयस्य
,,	२३	तोश्चेत्पकार पर एव०	तोर्वै षकार इति चात्र परे तथैव
२३	१०	तु सवर्णपूर्वः	खलु पूर्वतुल्यः
२३	२३	पूर्वः सवर्ण	पूर्वेण तुल्य
२४	१५	परः सवर्णः	परेण तुल्यः
२५	३	पद्ये	योगे
,,	६	नादौ	नान्ते
,,	७	डात्पर	डात्किल
,,	८	चच्छे परे किल	नात्सस्य शे
२६	६	पदान्तपद्यं	पदं तदन्तं
,,	११	विसर्जनीयः	विसर्गकस्य
२७	८	नृन्वा परेपि कि०	पे वा परे स्वरिह नृनिति शब्दकस्य
,,	१	कुप्वोः परे रस०	≍क≍पौ विसर्गकतनोः परयोश्च कुप्वोः
,,	२२	ऋते तु सः स्यात्	तनोर्ऋते सः
२८	१२	विसर्जनीयः	विसर्गकस्य
२९	११	सः स्यात्तयोश्च०	सस्स्यादगतौ किल नमस्पुरसोस्तथैव
२९	१२	संधौ	कुप्वोः
३०	१	कृत्वोर्थं पति०	कृत्वोऽर्थ एव प इहापि भवेद्‌द्विरादेः
,,	२	पोवा तयो०	षो वै तयोस्तदिसुसोः परयोश्च कुप्वोः
,,	१८	कुप्वोः स	स्याद्धै स
,,	२०	परे तथैव	इतः परे वै
,,	२३	पदयोः	सततं
,,	२४	परतस्तु	परकस्य
३१	२६	भगोसदिति	भगोस इति
३२	१२	ओकारतः पर	ओकारतः किल
,,	१६	तदिति लघ्व०	स इतिपूर्वलघूदितस्य स्याच्चालघोस्तु
३४	७	सस्तथैव	लुक्तथैव
,,	८	तदास्यादि	लुकीह चे
,,	२१	कथितो भव तो	कथितोच इतो
३५	१८	कृते तु कार्ये	कृतं तु कार्यम्
३६	३	मतेतरः	मतेतरत्
,,	११	मुक्तं	युक्तं

पृष्ठ	पंक्ति		
३८	१	पद्ये	मध्ये
,,	१६	पत्रं सरूपवृति०	चाकौ द्वयोरचि च पूर्वसवर्णदीर्घः
३९	१२	पद्ये	शब्द
,,	१३	शब्दस्वरूप इति०	रूपं भवेदिह परे किल प्रत्ययेङ्कं
४०	८	मलितैश्च	मिलितैश्च
४०	१०	समानपद्ये	समानरूपे
४०	१२	तेपा	तेषां
४१	४	इतीहच ङ्येकारोः	इतीह च ङ्येकारो
४१	१	इहैत्वमितीह	शब्द इह चैत्वमुपैति
४२	१	स्याञ्चरः	स्युश्चरः
,,	४	नुट् स्याद	नुट् नाम्य
,,	१५	कृत स्य	कृतस्य
४५	२०	च तदंतभलोप आस्ते	किल भस्य च लुक्तु धातोः ।
,,	२१	लघोर्वें	लघोर्धौ
,,	२२	सख्येतरौ	सख्या विना
४७	१	ङ्यात्र तदीर्घ विपयात्	ङ्यापोह् लः किल गुरोः
,,	२	च खलु	लुगिह
	३	चावोधने णिदिति	चाधौ तु सर्वगृहमेव णिदत्र
४९	१३	ङे पर आम्	ङेः किल चाम्
५०	५	कृतोपि	भवेच्च
,,	६	भवेदु	च साधु
,,	७	स्यादभृतां०	दीर्घाभ्भृतां भवति सर्वगृहे स्ववुद्धौ
५१	४	तृजूवा नृतो	तृजिवा ऋतो
,,	५	वृड् भोः	वृड्भ्योः
,,	७	तिनित्यम्	ति रायः
५३	२२	अस्यात्वियङ्	ज्ञेयः स्त्रियास्त्वियङ्जादिषु चा
५४	११	वतु पुमांश्चभवेत्	किल पुंवदिह
५५	१	भविधौ	च तथा
५६	२२	अल्लोप इत्थमन०	अल्लोपकोऽन इह भे किल
,,	२३-२४	रिग्घ्रस्व एच इति०	स्याद्वा गुणादिषु च भाषितपुस्कमेव पुंवद्भवेदिगिति चैच इहापि ह्रस्वे
५८	१४-१५	वृद्धिः स्यादाम्०	पूर्वरूपं तथाम् च
,,	१७	दस्यत्र सु	दो ध्यत्र सु

पृष्ठ	पंक्ति		
६०	१७	मिस	भिस
,,	१८	टौस्वे नः	टौस्स्वे नः
,,	१९	ऽथ सुप् तुक्०	स्वरसुपोः कृति तुग्विधौ च
,,	२०	शास्त्र	नाम
६२	७	सौ चेति दीर्घ इह	शार्विन्मुखस्य गुरु
,,	९	चान्ते मघोन इह०	चान्तो मघोन इह वा तृरचो
६३	६	परे	उ वै
,,	२०	ष्णान्ताश्च०	ष्णन्ता च पट् तु गुरु
,,	२२	किञ्चत्वंजां	किनिहत्विंजां
६४	२०	कृदतिङ्०	कृत्तिङ्विभिन्न इह वे लुंग
६४	२१	रसमस्यमाने	रसमास एव
६४	२२	जछशा इतीह दीर्घो	झलि प श्छशयोश्च वश्चां
६४	२३	नित्यम्	दीर्घः
६५	१६	पदस्थकाद्योः	मुखस्थयोः स्यात्
६५	१७	सुपर एव	किल हि सौ च
६६	८	वाच्यत्	वाच्चे
६७	१३-१४	वांनौ पट् चतुर्थ०	पट् चतुरक्षिमध्ये वांनौ ह्रिआच्य उ बहुत्वज
६८	२	तथा	हलो
६८	२५	नाचञेः	नाञ्चेः
६९	३	भ्यसत एव	भ्यस्तमेव
७०	७	धा	धेक्
७१	३	सिद्धः	सिद्धिः
७२	५-६	पदान्तविधौ०	नपुंसककस्य नुम्वा आच्छ्यां शतुः खलु नुमेव तथैव नद्याम्
,,	२१	ते वै०	स्याद्वै स्वरादिकनिपातमथाव्ययंतत्
७२	२३	सुनः	सुनौ
७६	१७	टाञ्च	टाप्स
७८ [७४]	१	वर्णानुदात्तविपयात्	वर्णादुदात्तरहितात्
७८	१४	पणात्तु ङीप् स्यात्	पदात्तु क्रीतात्
८० [७६]	१	पधज	पधन्
,,	२०	पद्य	शब्द
,,	२२	पदयुताद्रुपमोदिताच्च	किल पदाद्रुपमानपूर्वात्
८१ [७६]	१८	जवाक्यखंडे	कवाक्यमात्रे

पृष्ठ	पंक्ति		
८२[७८]	१०-११	संज्ञं कर्ता०	कर्ता स्वातंत्र्यवान् करणमेव सुसाधकं स्यात
८३ [७९]	१४	विवेचयित्वा	विविच्य चोक्ता
८४ [८०]	११	पञ्चमी	पञ्चमीं
८९	२४	द्विसंज्ञं	द्वितीया
९०	८	भवेत्	कृता
९१	४	या तद्धितार्थ०	यां तद्धितार्थविषयोत्तरशब्दसंघे
,,	५	श्चामचादेः	श्चामथादेः
९२	१४	वदेव	इहैव
,,	१५-१६	द्विगु पूर्वसंख्यः०पि च	पूर्वसंख्यः स्याद्वै द्विगुस्तु हि किलैकवचो
,,	१८१९	साम्येचौपम्यतन्नर०	सामान्यमात्रवचनैश्च
९४	१२-१३-१४	स्थमुपपद्य०	स्थमिह चोपपदं तु चातिङ् संख्याद्यचांगुलिपरस्य तथाहरादेः । रात्रे रिहाच् नरविधौ खलु रात्रमुख्या रा
,,	१५ १६	शब्दजनराग्म०	शब्दत उ टच् महतश्च जातीये स्यात्समाधिकरणेपितथात् किलाच्च
,,	२२	भाजि	भाक् चेत्
९६	११-१२	स्त्रियाः समविधौ०	समाधिकरणे खलु चोक्तपुंस्कानूङः स्त्रिया भवति योपिति न प्रियादौ
९७	४	सुराद्भ्याम्	गुणाद्भ्याम्
९८	१२	एव च	एव स
,,	१३	स स्याच्च	निष्ठा च
९९	१५	मुखपद्यभृतां०	कटकावयवादिकानां
१००	४	धुराक्ष	धुरोऽक्ष
१०१	२३	प्राधान्यतोभय०	द्वन्द्वे तु चोभयपदार्थप्रधानता स्यात्
१०२	२०	यानपि	या अपि
१०४	११	स्यातां तदा नञ्स्नञौ	वै नञ्स्नञौ भवत आ
,,	२५	सूचकेन	सूचकं स्यात्
१०५	२०	स्युर्नित्य	स्युश्चैव
१०७	२३	चार्थ	तेन
११०	२२ २३	इहात्र चास्ति०	इहास्ति देशेऽण् तन्नाम्नि यद्
१११	१३	त इमे भवन्ति	च भवेदणेव
११२	१	नडयुतवेतसेभ्यो	वेतसयुङ् नडाच्च
,,	१४	समूहात्	च ग्रामात्

पृष्ठ	पंक्ति		
११३	२२	स्यातां त्यमौ च०	वै प्रत्ययोत्तरपदे उभयो स्त्यमो च
११५	३	तु	द्वि
,,	४	जिह्वादिकेंगुलिपदे छ	जिह्वादिकांगुलिपदाच्छ
,,	२२	केभ्य इति	योगत उ
११७	३	विकारजे	विकारके
,,	४	संततिप्रत्ययो	चैव विकारके
,,	५	भक्ष	भक्ष्ये
११९	६	दीर्घं	दीर्घो
,,	२१	यत्तु	यस्तु
१२०	११	केभ्य इति खस्तु०	तः ख उ किलात्ममुखौ प्रकृत्या
,,	१२	पण्यम्	क्रीतम्
;;	१३	भुवि सर्वभूभ्याम्	भुवि सर्वभूम्याः
१२३	१	तारकेभ्यः	तारकाभ्यः
,,	१५	प्रामाण्य इत्यपि०	यत्तन्मुखेभ्य उ वतुप्परिमाणकेऽर्थे
;;	१६	किमिदंद्वयोर्वतु०	शास्त्रे वतुप् किमिदमः किल
,,	१७	वतुप्परत ईशि	वतुप्सु किल चेशि
१२५	४	रेत्र	रस्ति
;;	५	विकल्पात्	किलाद्वा
,,	२३ २४	दन्तोन्नते०	स्यादुन्नते रद उरच् खलु वश्चकेशाद्वा
१२६	१०	चार्शमुखेभ्य एव	चैवमथार्शसादेः
;;	११	पूर्वदिशः सदैव	चैव दिशस्तथा प्राक्
;;	१२	च पूर्वम्	द्विकान्न
;;	२५	पदेषु	पदाच्च
१२८	१०	तरेपि	रथोऽच
१२९	१	प्रकाशो	प्रकाशे
,,	१५	किलाऽऽच तस्मात्	किलेयसौ स्यात्
१३०	८	ईषद्विद्यावित०	ईषत्समाप्तिविगमे किलकल्पयाद्याः
;;	२४	कोपि तथाज्ञकेर्थे	कोऽनवबुद्धकेर्थे
१३१	१६	प्रकृतो	प्रकृते
१३२	१ १०	एव किल०	उदह्यजवराधेत एव शास्त्रेऽव्यक्तानकार उ डाजनितो भवेच्च
१३३	२२	लः स्यात्परस्मैपदं०	पं स्याल्लकार इह शास्त्र उ धातुयोगे
;;	२३	रमतेपि	रमतो मे

पृष्ठ पंक्ति

१३४ १४ आ परस्मै एव पं स्यात्

१३४ १६ १७ १८ स्वरितेत एव० ञितकात्तथा स्वरितकेत उ त्रीणि त्रीणि स्युर्वै तिङः पृथममध्यमकोत्तमाख्याः तान्येककद्विबहुसंज्ञकवाक्यकानि

,, १९ युष्मन्मयेऽपि स्याद्युष्मदीह

,, २१ च शेष इहैक एवम् तथा पृथमश्च शेषे

१३६-११ १२परे तदचः परस्य परस्य भवेदजादे

१३६ १३ चाभ्यासपू० रभ्यास आदिरिह पूर्व उ हल् च शेषः

१३७ २३ लोप एव लुक् च सादौ

१४० ८ ग्क्ङिति न स्तः नो ग्क्ङिति स्तः

,, ९ लङ् च लुङुत्तरस्मे च स्मपरे च लङ् लुङ्

१४० १० मुखे मुखात्

१४१ ६ हेतुमये० चैव क्रियातिपत्तौ

१४१ ८ मोडेव तत्र मोट् स्याद्धलश्च

१४२ ३ ह्रस्वं लघु० चाभ्यस्ततो विदिसिचश्च ङितः परस्य

१४३ ४ ५ णो नोपसर्गत० णो णोपदेश उपसर्गत आऽसमासे नस्य

,, २३ आदय एव० ञिपूमुखा इतः स्युः

,, २४ अनुट् स्यात् नुडस्मात्

१४४ १ चिजागृणि० णिजागृषु वृद्ध्यभावः

,, २५ तत्र च लिट० कृञ् प्रमुखा लिडन्ता

१४५ १ स्याद्वा उरत० योज्या उरत् द्विरचि नाच

,, ५ नेट० नेट् तासिवत्थल इहानिड

१४६ १८ प्यकृत्सार्व० य उ न वै कृति सार्वधातौ

,, १९ उ परस्मैपद० अपि भवतीह

,, २० श्यन् श्यनु

१४७ १३ परस्मैपद एव च पं भवतीह

,, १४ शादौ पिवादय० तद्वत् पिवादय उ वै शिति

,, १६ जादेस्तथै० लिड्स्येर्जुसात इह झे रसि चात्परत्वम्

१४८ १० द्विकपदस्य द्यवयवस्य

१४९ २ यण् हुश्नुवोर्वै चि तु हुश्नुवोर्यण्

१४९ २१ स्यात् पे

,, २२ किलैटित आत्मनेटेः तथा टित आति टेरेः

१५० १८ णः किल चयोध्वम्० णो लिट उ पोध्वम उत् लुङो ढः

पृष्ठ	पंक्ति		
१५१	२३	णेश्चङ् श्यादिकेभ्यो	णेः श्रिमुखादभवेच्चङ्
१५२	१-२	दिहात्र णौ वै तद्य	दनग्लुकि स्याण्णौ च
;;	२१	आम् स्याल्लिटीह०	लिट्याम् दयादित इहापि विभाषेटः स्याद्धस्तु
;;	२२	वा द्युद्भ्योऽयं०	पं खलु वा द्युतादेः
;;	२३	पं सनशूयोर्नहि०	वृद्भ्यः सनि श्य उ चतुर्भ्य इङ्न्न
१५३	२३	कभ्य प	कानामे
;;	२४	केभ्य इ	कानामि
;;	२५	उश्चैव किज्झलि०	उलिङ् सिचौ झलि कितौ लघुतः सिचो लुक्
;;	२६	स्यात्सप्रसारणमिहैव०	अभ्याससंप्रसरणं लिटि चोभयेषाम्
१५४	२३ २४ २५	हस्याद्धस्तथोः०	हाधोधस्तथोर्ध प इहेत् सहतेत्र हेश्च ढलोपेऽस्य पूर्ण इह भूप्रमुखो गणोत्र लुक् स्याच्छपोऽदिमुखतो लिटि वत्ल वादः
१५५	१६	हेधि	हेधि
१५७	१ १०	तु लोटिचाथउः०	कृञः प्रयोगः कृञस्तनादित उरस्य तदुच्च दोरुः
१५८	३	त्वण	त्विण
;;	२२	रुडेव लिटि०	रुडुत्विङ उ गाङ् लिटि
१५९	२३	पित्	पि
१६०	२१	लुङ् परे वा	वै विकल्पात्
;;	२२	किल	पिति
;;	२४	दय	दिक
१६१	१६	श्लु परे तथाभ्य	श्लुरिवेह चाथा
;;	१७	पदतो जुसि०	पदकस्य गुणो जुसि स्यात्
१६२	२	पद्य इः	पूर्वस्येः
;;	४	शृमुखानां	वा च शॄणां
;;	५	वाच्छ स्य तां लिटि०	ऋतां गुणो लिटि च घेट गुरुत्रवृत
१६३	२१	किदिति चेत्तु	किदिह घोश्च
;;	२३	गुणोपि	गुणोऽचि
१६४	१७	मुखभ्य इतह	गणादसिचश्च
१६६	७	जोच्चिण् च्लेश्च०	जैभ्य उ चिण् भवेत् च्लेः
;;	८	चिण्	च्चिण

१८७।११ णोह च किलात० | णि ह्यनुपसर्ग इहात आकः मू
१८८ ४ प्रियवशे वद इतीह | स्याद्वदः प्रियवशे च
,, १९ कः स्यात् | कस्यात्
,, २० स्याद्विड्वनोः क्विपि० | क्विप् विड्वनोर्णिनि मनोऽपि च
,, २१ धातोर्मनो | ताच्छील्य आ
१८९।१२ करणे यजो णिनि० | णिन्स्याद्यजश्च करणे च दृशः क्वनिप्स्यात्
,, १३ उ सहे | उत्सहे
,, १५ डोपसर्ग एव किल० | स्यात्तन्तरेडउपसर्गक एव नाम्नि
,, १६ तौ क्तक्तवत्विति० | निष्ठा क्त उ क्तवतु रित्यपि सा च भूत
१७ इतीह च दो रदाभ्याम् | उ पूर्वकदो रदाभ्याम्
१८ आतोश्च यण्वत० | धातोश्च तस्य न उसंयुजि पूर्व आतो ल्वा
२६ णे लुगेव | णेलुगेव
१९०।१६ स्यातां लटश्च० | भूस्या समाधिकरणे न लटः शता
शानच् मुक् तथान उ शतुश्च
१९ सनन्तके | सनन्ततः
२० छोः शूठ् च लुग्वादा | लुगिहैव शूठ्छ्वोर्दा
१९३ ५ पुवोरपि गता | श्च नाम्नि पुवोपि भवे तथैव
,, ६ चोणादिकेभ्य उ | चोणादयोऽथ किल क्तादिकतो भवेदुण् चो
,, ८ तुमुन्ण्वुलौ० | ण्वुल्स्यात्तुमुन् भवति चेत्तु क्रिया क्रियार्था
,, ११ घञेव | घञीह
१९४ १२ थुञ | थुञ्
,, १३ स्वपस्कि | स्वपः कि
१९५ १० यञ् हलश्च० | यञ् हलश्च तयोः
,, ११ ईषत्सुखोपपदकेषु० | ईषत्सुदुस्सु सुखदुःखमयार्थकेषु
,, १६ सन् | सनु
१९७ २ क्त्वौ | क्त्वो
१९८ ५ अन्यत | अन्यत्र
१९९ १३ नार्यां च भाः | भाः लुक्त्वजौ च युवतौ
,, १४ वृड्० | वृड् विट् त्विड्
२००।१३ ह्राघ्रूः | घूर्धीः
२४ खन | नख
२०३।२२ गजणा | गजणो
२०४ ३ मनुष्य | अमनुष्य
२०७।११ विदा | विदां
,, १३ रचित | रचितं
,, २० भस्कार | भास्कर

१६६	९	रम् स्याज्झलादौ	झलि चामकित्त्वे
१६७	७	रेव शपूर्वखयो०	शप्रथमकाः खय एव शेषाः
	८	इत इष्टे च०	दित ऋतश्च विभापयेट्
	९	इहैवतु	उकश्च हि
१६८	२	शो वो तुदादिक०	शः स्यात्तुदादित उ रम् खलु वेह भ्रस्जः
१६९	५	इड्वा त्विषादिषु	षंपेश्च इड् ति हि
,,	८	तम	तम्
१७०	५	लुङ लिङोश्च शितोद्	लुङि लिङोह शितोट्
१७१	३	सिचिट् श्नात्परस्य०	सिचोट् श्नम उ लुक् न उ तिप्यनस्ते र्वा सिपीत्यपि भजोऽनवने तङानौ ॥
१७१	५	उः स्या०	कृञ्तस्तनादित उरत्र
	२३	सन् झलोप्यत	सनि झलीत्यत
१७२	१६	क्रादि	क्र्यादि
,,	१७	श्नुः श्ना०	स्तम्भां श्नुरित्ययमथो भवतीह चातश्ना
१७३	१२	शानज्झौ तथैव	शानजिहैव झौ च
,,	१३	इतो जृमुखस्य एव	उज्जृमुखतो नितान्तम्
,,	१४	सूते	स्तम्भे
१७४	३	इतोह	इटश्च
१७५	२	च्चे चङ् परे	चङ् पर इहेत्
	१७	एक णौ चङ् परेऽपि	णौ पुगु चङ् परे णौ
	१९	स्याद्वै समान कर्तृ०	स्याद्वेपिणा तु समकर्तृकतः
१७७	६	धातोह०	धातोः क्रियासमभिहार उ यङ् हलादेरेकाच उत्
	२२	तु परस्य च	च भवेदिह
१७८	१४	न क्ये च वा क्यच०	नः क्ये क्यङः क्यच ट वा ह
	१७	तूर्य विभक्तितोऽपि	च तूर्यविभक्तितः क्यङ्
	१८	कृञऽर्थे	क्यङेव
,,	२०	परिवर्तने तदि०	जायेत वै विनिमये तङ् कर्तरीह
१८०	११	चतुर्थीविषये च	चतुर्थ्यर्थक इहैव
,,	१३	मुखेभ्य इतः	मुखेषु ततः
१८०	१४	चाथो परस्मै०	इत्यात्मनेपदमथो खलु प्रक्रिया पम्
१८२	१	वट्	वेट्
१८४	६	लिट्	लट्
१८४	२५	स्त्रिया	स्त्रियां
१८५	११	सास	शास
१८६	१०	कृतमक्रियायाम्	भवतः कृदन्ते